आत्मनि कर्मण स्वशक्त कारणवशादनुद्भूतिरुपशम । यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशम ॥ क्षय आत्यन्तिकी निवृत्ति ॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते पङ्कस्यात्यन्ताभाव ॥ उभयात्मको मिश्र । यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बधात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्ति ॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणा फलप्राप्तिरुदय ॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुक परिणाम ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित प्रथम सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश: हिंदी अनुवाद ॥

आत्मनि ,' कर्मण:।" स्वशक्ते: ।॰ कारणवशात ,' =आत्मा में कर्म की निज सामर्थ्य के निमित्त के वश से या आश्रय से

अनुद्भूति ।" उपशम ।' यथा ॰ कतकादिद्रव्यसम्बन्धात् ,' =उदय न होना(सो)उपशम है। जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से

अम्भसि ," पङ्कस्य ।' उपशम ।' =जलमें कीचका शान्ति या समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ जाना ऊपर से जल का निर्मल होना सो उपशम है

क्षय: ।' आत्यन्तिकी ।" निवृत्ति ।॥ =कर्मोंका अत्यंत नाश सो क्षय है (कर्मका सत्ता से उठ जाना सो क्षय है)

यथा॰तस्मिन् ,।" एव॰अम्भसि," शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते," =जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में लेनेपर

पङ्कस्य ।' अत्यन्ताभाव ।' उभयात्मक ।' मिश्र: ।' =कीचड़ का अत्यन्त अभाव होजाता है। उपशम क्षयका मिलाहुआस्वरूप मिश्रहै

यथा॰ तस्मिन् ,।॥ अम्भसि ।" कतकादिद्रव्यसम्बधात् । =जैसे उसी जल में निर्मली आदि वस्तु के संयोग से

पङ्कस्य ।' क्षीण-अक्षीण वृत्ति ।॥ =कर्दम की क्षीण अक्षीण स्थिति होजाती है अर्थात् कुछ कीचड़ पैंदे में बैठ जाती है कुछ गदली रह जाती है। कुछ बाहर निकल जाती है

(जैसे क्षयोपशम है) भावार्थ कोदों एक जाति का धान्य विशेष है वह मादक पदार्थ है। जिस समय उसे जल से धो दिया जाता है उस समय धान से कुछ मादकशक्तिके क्षीण हो जाने पर और कुछ के तदवस्थ रहने पर जिस प्रकार कोदो पदार्थ मिश्र मादक शक्ति का धारक कहा जाता है। उसी प्रकार कर्मों के क्षय करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति के नष्ट हो जाने पर और कुछ के सत्ता में मौजूद रहने पर एवं कुछ के उदय रहने पर जो आत्मा की (दही गुड़ के समान) मिली हुई भावों की अवस्था होती है उस अवस्था का नाम मिश्र है ॥

द्रव्यआदिनिमित्तवशात् ,। कर्मणाम् ।" फल प्राप्ति: ।' =द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कारण वश से कर्मों के रसका लाभ

उदय ।। द्रव्यात्म लाभमात्र हेतुक । परिणाम: ॥ =सोउदय है वस्तुकेनिजस्वरूप(आत्म)की प्राप्तिमात्रमेंनिमित्तकसोपरिणामहै

¹एतानिवासी मगरूसराय वकील कृत पदच्छेद और ...

उपशम प्रयोजनमस्येत्यौपशमिक । एवं क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिकश्च ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहण क्रियते । तदनन्तर क्षायिकग्रहणतस्य प्रतियोगित्वात्

अर्थात् जिससे द्रव्य के निज का पावना होय सो पारिणामिक है।

उपशमः¹ प्रयोजनम् ²॥ अस्य॥ इति॰औपशमिकः॥ =उपशम है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है।
एवम्॰क्षायिकः॥ क्षायोपशमिक ,। औदयिक॥ =उसी प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक
पारिणामिक ॥च॰ =और पारिणामिक है अर्थात् इन सब में प्रयोजन अर्थ में इक् प्रत्यय है।
ते ॥ एते ॥ पञ्च ,। भावाः॥ असाधारणाः॥ जीवस्य॥ =ये पांचों भाव असाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होते हैं अन्यकिसीमें नहींहोते हैं
स्वतत्त्वम् ॥ इति ॰ उच्यन्ते । =निज भाव हैं ऐसे कहेगये हैं।
सम्यग्दर्शनस्य ॥ प्रकृतत्वात् ,॥ तस्य ॥ त्रिषु ॥ =सम्यग्दर्शन का प्रकरण वा अधिकार होन से तिससम्यग्दर्शन के तीन
विकल्पेषु ॥ औपशमिकम् ॥ आदौ ॥ लभ्यते । =भेदोंमें औपशमिक आदि में वा पहिले प्राप्ति किया जाता है
इति तस्य ॥ आदौ ,। ग्रहणम् ॥ क्रियते । =इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान(ग्रहण) किया गया है
अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले यही कहा गया है
तदनन्तरम् ॥ क्षायिक ग्रहणम् ॥ तस्य ॥ =तिस(औपशमिक)के अत्यन्त समीप क्षायिकका ग्रहणहै क्योंकि तिसऔपशमिककी
प्रतियोगित्वात् ॥ =(निर्मल ताई में)प्रतियोगी है बराबरी होड़ वा स्पर्धा करने वाला क्षायिक है
भावार्थ मिथ्यात्व,सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ये सम्यग्दर्शन
की विरोधी प्रकृतिये हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होन पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है अतः क्षायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता
उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्रमें औपशमिक के पश्चात् क्षायिक का ग्रहण किया है।

(१) लभ -इत्यादि प्रथम गण का सकर्मक आत्मने पदी धातु है कर्मणि प्रधान प्रयोग में यक् (=य) प्रत्यय जोड़ कर ते प्रथम पुरुष एक

ससार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तर मिश्रग्रहण तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येय गुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्ते क्रियते ।

संसारापेक्षया ¦ द्रव्यतः ० तत ० असंख्येय गुणत्वात् = और संसारी जीव की विवक्षाकरि द्रव्य अपेक्षा तिस औपशमिक-वाले जीव से (क्षायिक वालजीव) असंख्यात गुणे भी हैं

तत ० उत्तरम् ¦ मिश्र ग्रहणम् ¦ तदुभयात्मकत्वात्, =तिस(क्षायिक)सेपीछे (=उत्तरम्)मिश्रका ग्रहणहै वा क्षायोपशमिकाग्रहणहै क्योंकि उस (मिश्र) के दोनों (क्षायिक और उपशम) स्वरूप हैं

तत ० असंख्येयगुणत्वात्, च ० =और उस (क्षायिक) से असंख्यात गुणे जीव भी हैं।

तेषां ¦ सर्वेषाम् अनन्तगुणत्वात्, =तिन सब(औपशमिक क्षायिक, मिश्र) के अनन्त गुण (जीव) होने से

औदयिक पारिणामिक-ग्रहणम् अन्ते क्रियते । =औदयिक पारिणामिक का ग्रहण अन्त में किया गया है

---

(१) उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त मात्र है जिस से जीव अल्प ही इकट्ठे होने पाते हैं और क्षायिक सम्यक्त्व का काल तेतीस सागर से कुछ अधिक है अर्थात् उपशम से क्षायिक का काल असंख्यात गुणा है । जिस से उस में जीवों की संख्या भी असंख्यात गुणी हुई । क्षायोपशमिक का काल छयासठ सागर है तिन क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से द्रव्य अपेक्षा से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुण हैं । कारण यह कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि द्रव्य की अपेक्षा असंख्यात गुण हैं भाव की अपेक्षा नहीं क्योंकि विशुद्धी की अधिकता से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व अनन्त गुणा माना है इस लिए भाव की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात गुण नहीं माने जा सकते । तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का संचय काल छ्यासठ सागर प्रमाण है और उस में प्रथम समय से आदि लेकर समय समय काल की समाप्ति पर्यन्त इकट्ठे होने वाले बहुत से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते रहते हैं इस लिए यहां पर भी आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणा कार मानने से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उस गुणकार प्रमाण हैं । इस प्रकार द्रव्य की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के अधिक होने से सूत्र में क्षायिक के पीछे मिश्र शब्द का उपन्यास है । (पं० जयचंद पत्रसिद्धि २४)

अत द्वन्द्वनिर्देश कर्तव्य । औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैव शक्यम् । अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये पुन सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकर्ष कृतो भवति ॥

अत ॥ द्वन्द्व निर्देश ॥ कर्तव्य ॥ औपशमिक-क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका ॥ इति ॥	=(प्रश्न) अत: द्वन्द्व समासका उच्चारण(=निर्देश)करना चाहिये। औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका ऐसा (सूत्र) होता
तथा ॥ सति ॥ द्वि ॥ चशब्द ॥ न कर्तव्य ॥ भवति ।	=ऐसा होने पर दो 'च' शब्द न करने होते अर्थात् सूत्र में दो चकार न्यून होजाते
न एवं शक्यम् ॥ — अन्य गुण-अपेक्षया ॥ मिश्र ॥ इति प्रतीयेत ।	=(उत्तर) एसी शंका न करो (औपशमिक और क्षायिकसे)अन्य (दो)भावोंकी अपेक्षासे मिश्र ऐसा निर्णय वा प्रतीति कियाजाय (यदि मिश्र शब्द के पश्चात् सूत्र में च शब्द न होता तो)
वाक्ये ॥ पुन ॥ सति ॥ च ॥ शब्देन ॥ प्रकृत ॥ उभयानुकर्ष ॥ कृत ॥ भवति ।	=और "चशब्द" सहित सूत्र (=वाक्ये) होने पर (=सति) =अधिकार किये गये वा विषयभूत दोनों(औपशमिक क्षायिक)का ग्रहणकियाहै

इस समस्तप्रश्नोत्तरकाभाव यह है(प्रश्न)सूत्रकारने 'औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पढा है परन्तु उतने लम्बे चौड़े सूत्रके स्थान पर 'औपशमिक क्षायिक मिश्रौदयिक पारिणामिका' ऐसा सूत्र बनाना ठीक था। ऐसे सूत्र के बनाने में दो जगह दो च शब्द कहने पड़े हैं वे भी न कहने पड़ते बड़ा भारी लाघव होता जोकि सूत्र कारों के मत में महान लाभ माना गया है इसलिए वैसा लम्बा चौड़ा सूत्र नहीं बनाना चाहिए (उत्तर) औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्चेत्यादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पढा है उस में च शब्द से पहिले कहे गये औपशमिक और क्षायिक भावों का अनुकर्षण होता है और उस से औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था मिश्रभाव लिया जाता है किंतु अब वैसा सूत्र न कह कर यदि औपशमिक क्षायिक मिश्रेत्यादि द्वंद्वगर्भित सूत्र किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशमिक और क्षायिक का अनुकर्षण न होने पर औपशमिक और क्षायिक की मिली हुई अवस्था तो मिश्र मान कभी नहीं जायगी ॥

प्रतीयेत। प्रति उपसर्ग है। इ=अदादिगणका धातु आता अर्थ में है प्रति+इ=प्रती कर्मणि प्रयोगका य जोड़ कर और विधिलिङ्ग अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी ईत प्रत्यय जोड़ कर प्रती+य+ईत=प्रतीयेत रूप बना जिस का अर्थ "जानाजाय" है

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥ मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य ही दो भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी क्योंकि विरुद्ध है इसलिए इंद्वगर्भित सूत्र न करकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही स मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणम् एव कर्तव्यम् इति चेत् = (मगर) तो (सूत्र में) क्षायोपशमिक (शब्द) का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका हो

न ० = (उत्तर) (मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण) (नहीं करना चाहिए)

गौरवात् ॥ मिश्रग्रहणम् ॥ मध्ये ॥ = क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता या बढ़जाता। मिश्र (शब्द) का आदान बीचमें

उभयापेक्षार्थम् ॥ क्रियते भव्यस्य ॥ = दोनों (पहिले पिछले) की विवक्षाके लिए कियागया है। भव्य (जीव) के

औपशमिकक्षायिकौ ॥ भावौ ॥ = औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं

मिश्रः ॥ पुनः अभव्यस्य ॥ अपि भवति ॥ = बहुरि मिश्र (भाव) अभव्य के भी होता है

औदयिकपारिणामिकाभ्याम् ॥ सह भव्यस्य ॥ = औदयिक पारिणामिक (भावों) सहित भव्य (जीव)

अपि इति = भी है (अभव्य भी है) तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे हैं कि औपशमिक और क्षायिक यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल, इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही प्रयोजन समझ लेना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात् (१) औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२) क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र (३) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एवं क्षायोपशमिक चारित्र (४) औदयिक और (५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यजीवके होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्ग स्वतत्त्वस्येति चेन्न । उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात् ॥ तद्भावस्त
त्त्वम् । स्व तत्त्व स्वतत्त्वमिति ॥ अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त
उताभेदा इति । अत्रोच्यते भेदवन्त । यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—

क्षायोपशमिक भावों में भी ज्ञान और दर्शन दो ही भाव होसकते हैं ज्ञान दर्शन से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दर्शन समझना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान आदि नहीं होते ॥

भावापेक्षया ॥ तत् ॥ लिङ्गसंख्या-प्रसङ्गः ॥ स्वतत्त्वस्य ॥ इति चेत् ॥ =(प्रश्न) भाव(शब्द)की अपेक्षासे उस(भावशब्द) के लिङ्ग और संख्या का संयोग =स्वतत्त्व (शब्द) के होता है ऐसी शंका है (=चेत्) प्रश्न का भावार्थ यह है कि भावशब्द पुल्लिङ्ग है इसलिए स्वतत्त्व शब्द भी पुल्लिङ्ग चाहिए और भावों की गणना बहुत है इसलिए स्वतत्त्व शब्द के भी बहु वचन चाहिए, स्वतत्त्व शब्द नपुंसकलिङ्ग और एक वचन है सो न चाहिए

न उपात्तलिङ्ग संख्यात्वात् ॥ =(उत्तर) नहीं होता ॥ क्योंकि (स्वतत्त्व शब्द के) गृहीतलिङ्ग संख्या है अर्थात् स्वतत्त्व शब्द की लिङ्ग और संख्या पलटती नहीं है यह भाववाची होनेसे एक वचन और नपुंसकलिङ्ग होता है ॥

तद्भावः ॥ तत्त्वम् ॥ स्वम् ॥ तत्त्वम् ॥ स्वतत्त्वम् ॥ इति =जिसका भाव सो तत्त्व है । निजभाव(सो) स्वतत्त्व ऐसे (स्वतत्त्व शब्दकी व्युत्पत्ति है)

अत्र आह ॥ तस्य ॥ एकस्य ॥ आत्मनः ॥ =यहां (शिष्य) पूछता है (कि) उस एक चेतन के

ये ॥ भावाः ॥ औपशमिक आदयः ॥ ते किम् भेदवन्त =ये (पांच) भाव औपशमिक आदिक हैं वे भेद सहित हैं

उत अभेदाः ॥ इति अत्र उच्यते भेदवन्तः ॥ =अथवा (=उत) भेद रहित हैं (उत्तर) यहां कहा जाता है कि भेद सहित हैं

यदि एवम् भेदाः ॥ उच्यन्ताम् ॥ इति अतः आह =(प्रश्न) जो ऐसे हैं (तो उनके) भेद कहा जाना चाहिये । अतः कहते हैं कि

नहि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥ मिश्रग्रहण मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्र पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्या सह भव्यस्यापीति ॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य दो तीन भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी जोकि विरुद्ध है इसलिए ईष्टगर्भित सूत्र न करकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही से मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणम् एव कर्तव्यम् इति चेत् =(प्रश्न)तो(सूत्र में) क्षयोपशमिक (शब्द)का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका है

न = (उत्तर)(मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण)(नहीं करना चाहिए)

गौरवात् ।॥ मिश्रग्रहणम् ।॥ मध्ये । =क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता या बढ़जाता। मिश्र(शब्द) का आदान बीचमें

उभयापेक्षार्थम् ।॥ क्रियते भव्यस्य । =दोनों (पहिले पिछले) की अपेक्षाके लिए कियागया है। भव्य(जीव) के

औपशमिकक्षायिकौ । भावौ । =औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं

मिश्रः ॥ पुनः अभव्यस्य । अपि भवति । =फिर मिश्र(भाव) अभव्य के भी होता है

औदयिकपारिणामिकाभ्याम् ॥ सह भव्यस्य । =औदयिक पारिणामिक(भावों) सहित भव्य(जीव)

अपि इति =भी है(अभव्य भी है) तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे है कि औपशमिक और क्षायिक

यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल,इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही नयामन समझलना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात्(१)औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२)क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र(३)क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एव क्षायोपशमिक चारित्र(४)औदयिक और(५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यके होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा वृत्तिर्हि नवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीना द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति ॥ यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते। औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥ यथाक्रमवचन यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ औपशमिको द्विभेद । क्षायिको नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेद । औदयिक एकविंशतिभेद । पारिणामिकस्त्रिभेद

द्वौ॥ च॰नव॥ च॰अष्टादश॥ च॰एकविंशतिः॥ च =क्रमसे दो और नव तथा अठारह और इक्कीस
त्रयः॥ त॰द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः॥ =और तीन दो-नव-अठारह इक्कीस और तीन (ये द्वन्द्वसमास हुआ)
ते॥ एव भेदाः॥ येषाम्॥ इति॰वा॰वृत्ति॥ =वे ही हैं भेद जिनके ऐसी (अन्यपदार्थवृत्ति हुई) अथवा
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः॥ इति॰ =दो-नव-अठारह-इक्कीस तीन भेद ऐसे हैं (स्वपदार्थवृत्ति हुई)
यदा॰स्वपदार्थे॰वृत्ति॥ तदा॰औपशमिकादीनाम्॥ =जब स्वपदार्थमें वृत्ति है तब औपशमिक आदिकों के
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः॥ भेदाः॥ =दो-नव-अठारह इक्कीस-तीन भेद हैं
इति अभिसम्बन्धः॥ क्रियते॥ =ऐसा सम्बन्ध किया गया है (अर्थात् भेद शब्द संख्यादि का सम्बन्धी हुआ और पांचों भावों का बहुवचन षष्ठीविभक्तिकरि कहना जो ये भेद पांच भावों के हैं
अर्थवशात्॥ विभक्ति परिणामः॥ इति॰ =अर्थ के आधारसे वा प्रयोजन के आश्रय से विभक्ति का भिन्नपनाका परिणमन है
यदा॰अन्यपदार्थे॥ वृत्तिः॥ तदा॰निर्दिष्ट =जब अन्यपदार्थ में वृत्ति है (जैसे वे ही हैं भेद जिनके) तब (सूत्रमें) कही हुई
विभक्त्यन्ताः॥ एवाभिसम्बध्यन्ते॥ =अन्तवाली विभक्तिसम्बन्धी भाव है अर्थात् भावोंके यही विभक्ति रही जो सूत्रमें कही
औपशमिकादयः॥ भावाः॥ द्विनवाष्टादश- =औपशमिक आदि भाव हैं दो-नव-अठारह
एकविंशतित्रिभेदाः॥ इति॰यथाक्रमवचनम्॥ =इक्कीस तीन ऐसे (=इति) भेद हैं॥ (सूत्रमें) यथाक्रम वचन
यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम्॥ औपशमिकः॥ =संख्यानुसारकी प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक
द्विभेदः॥ क्षायिकः॥ नवभेदः॥ मिश्रः॥ अष्टादशभेदः॥ =दो भेद रूप है क्षायिक नो भेद रूप है क्षायोपशमिक अठारह भेद रूप है
औदयिकः॥ एकविंशतिभेदः॥ पारिणामिकः॥ त्रिभेदः॥ =औदयिक इक्कीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है

॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

द्व्यादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

=औपशमिकादीनां भावानां द्विनवाष्टादशैकविंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद =औपशमिकादीनां भावानां द्वि-नव-अष्टादश-एकविंशति - त्रिभेदा: यथाक्रमम् भवन्ति

भावार्थ =औपशमिकादीनाम् ॥ भावानाम् ॥ =औपशमिक क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विनव-अष्टादश-एकविंशति-त्रिभेदा: ॥ =दो, नव, अठारह इक्कीस और तीन भेद

यथाक्रमम् * भवन्ति ॥ =अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार का है क्षायिक भाव नव प्रकार का है मिश्र भाव अठारह प्रकार का है औदयिक भाव इक्कीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दश हिन्दी अनुवाद

द्व्यादीनाम्॥ संख्याशब्दानाम्॥ कृतद्वन्द्वानाम् ॥ =दो आदिक गिनती शब्दों का बनाहुआ द्वन्द्व समास (कृतद्वन्द्वानांवृत्ति) भेदशब्देन॥ सह ॥ स्वपदार्थे॥ अन्यपदार्थे॥ वा * =और भेद शब्द के सहित(=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में वृत्ति ॥ वेदितव्या ॥ =वृत्ति मानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का द्वन्द्व =समास और सूत्रमेंभेदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति या अन्यपदार्थवृत्ति मानना

इस सूत्र का शब्दों श्वेताम्बर आम्नाय और दिगम्बर आम्नाय में पाठ और रूप एकसा है।

दर्शनमोहस्य त्रयोभेदाः सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकसम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः। काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात् ॥ तत्र काललब्धिस्तावत्-कर्माविष्ट आत्मा भव्यकालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ।। त्रय ।। भेदा[1] ।। सम्यक्त्वम् ।।।	=दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् ।।। सम्यङ् मिथ्यात्वम् ।।। इति ०	=मिथ्यादर्शन और सम्यक्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ।।। सप्तानाम् ।।। प्रकृतीनाम् ।।। उपशमात् ।।	=इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् ।।। सम्यक्त्वम् ।।। अनादि मिथ्यादृष्टेः।।	=औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य।। कर्म + उदय + आपादित + कालुष्ये, ।।। सति।।।	=भव्यजीवके कर्मके उद्रेककरि कलुषताहोतेसंते
कुतः ० तद् + उपशम ।।	=क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि-आदि निमित्तत्वात् ।।।	=(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धि ।।। तावत् ०	=वहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
कर्म + आविष्ट ।।। आत्मा ।। भव्य ।।	=कर्मकरि दबायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ,। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ।। अवशिष्टे ।।	=संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ।।।। योग्य ।। भवति ।	=पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदयसे सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हों जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है ॥

इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—

॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे ॥ औपशमिकत्वं कथमिति चेदुच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः,

इति ०	=ऐसे (यथासंख्य या क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्यायें औपशमिक क्षायिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)
यदि ० एवम् ० औपशमिकस्य ॥ कौ ॥ द्वौ ॥ भेदौ ॥	=(प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो) औपशमिकके कौनसे दो भेद हैं
इति ० अतः ० आह ॥	=इसलिये कहते हैं कि

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वावौपशमिकौ भावौ भवतः ॥३॥

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ द्वौ औपशमिकौ ॥ भावौ ॥ भवतः ॥	=सम्यक्त्व तथा चारित्र दो औपशमिक भावहैं-औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

व्याख्यातलक्षणे ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥	=पूर्व जिन के लक्षणकहे हैं ये सम्यक्त्व और चारित्र हैं
औपशमिकत्वम् ॥ कथम् ० इति ० चेत् ० उच्यते ॥	=औपशमिकपना कैसे है ऐसा(=इति) संदेह(=चेत्)होनेपर कहागयाहै(=उच्यते) कि
चारित्रमोहः ॥ द्विविधः ॥ कषायवेदनीयः ॥	=चारित्रमोह दो प्रकारका है कषायवेदनीय
नोकषायवेदनीयः ॥ च ० इति ०	=और नोकषायवेदनीय इस प्रकार है। (किंचित् कषाय=ईषत्कषाय)
तत्र कषायवेदनीयस्य ॥ भेदाः ॥ अनन्तानुबन्धिनः ॥	=तहां कषायवेदनीयके भेद अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान माया लोभाः ॥ चत्वारः ॥	=क्रोध–मान–माया–लोभ चार हैं ॥

(१) इस सूत्रका ऐसा दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों में पाठ और अर्थ एकसा है (२) आत्माको कषे या हिंसितरूप करे उसे कषाय कहते हैं (३) आत्मामें पहिले सम्यक्त्व पर्याय की प्रकटता होती है पीछे चारित्र पर्याय का उदय होता है इस लिए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र से पहिले होने के कारण सम्यक्त्व चारित्र इस सूत्र में सम्यक्त्व शब्द का पहिले प्रयोग किया गया है ॥

दर्शनमोहस्य त्रयो भेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकसम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः । काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात् ॥ तत्र काललब्धिस्तावत्-कर्माविष्ट आत्मा भव्यः कालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ॥ त्रयः ॥ भेदाः ॥ सम्यक्त्वम् ॥	=दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् ॥ सम्यङ्मिथ्यात्वम् ॥ इति ॥	=मिथ्यादर्शन और सम्यक्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ॥ सप्तानाम् ॥ प्रकृतीनाम् ॥ उपशमात् ॥	=इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ अनादि मिथ्यादृष्टेः ॥	=औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य ॥ कर्म+उदय+आपादित+कालुष्ये, ॥ सति ॥	=भव्यजीवके कर्मके उदयकरि कलुषताहोतेसंते
कुतः ॥ तद्+उपशमः ॥	=क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि-आदि निमित्तत्वात् ॥	=(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धिः ॥ तावत् ॥	=वहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
कर्म+आविष्टः ॥ आत्मा ॥ भव्यः ॥	=कर्मकरि दबायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ॥ अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ॥ अवशिष्टे ॥	=संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ॥ योग्यः ॥ भवति ॥	=पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदयसे सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हों जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है।

नाधिके इति इयमेका काललब्धि ॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धि । उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति॥क्व तर्हि भवति ?। अन्त कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः सरूयेयसागरोपमसहस्रोनायामन्त कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति ॥

न०अधिके १। इति० इयम् ३॥ एका ३॥ काललब्धि १॥ =न कि अधिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि है

अपरा १॥ कर्मस्थितिकाललब्धि १॥ =दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् यह काल लब्धि जिसका नाम कर्मोंकी विशेषस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति नाम कहते हैं

उत्कृष्टस्थितिकेषु ७॥ कर्मसु ७॥ जघन्यस्थितिकेषु ७॥च० =उत्कृष्टस्थितिवाले कर्मों में तथा (=च) जघन्यस्थिति वाले कर्मों में

प्रथमसम्यक्त्वलाभ १॥ न० भवति I =प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिवाले या जघन्य स्थितिवाले कर्मोंके विद्यमान रहते प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण की योग्यता नहीं होती ।

क्व०तर्हि०भवति I अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु ७॥ =(प्रश्न) तो (प्रथम सम्यक्त्व की लब्धि, कहां होती है (एक) कोटी कोटी सागरोपमके भीतर २ (=अन्त) स्थितिलिये

कर्मसु ७॥ बन्धम् २॥ आपद्यमानेषु ७॥ =कर्मोंके बन्धभाव को प्राप्त होने पर (आपद्यमानेषु)

विशुद्धपरिणामवशात् ५॥ सत्कर्मसु ७॥च०ततः० =और (वहां) निर्मल परिणाम के आश्रय से सत्तामें संचित कर्मोंकी स्थिति

संख्येयसागरोपमसहस्र + ऊनायाम् ७॥ =संख्यातहजारसागरोपमहीन

अन्त कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ७॥ स्थापितेषु ७॥ =अन्त कोड़ाकोड़ी सागरोपमस्थितिमेंसे) रह जानेपर (स्थापितेषु)

प्रथमसम्यक्त्वयोग्य १॥ भवति I =प्रथम सम्यक्त्व के (ग्रहण) योग्य (जीव) होता है

(भावार्थ) आयुकर्मके बिना पूर्वाचार्यसे अंत कोटिकोटिसागरप्रमाणकर्म

अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया । भव्य पञ्चेन्द्रिय सञ्ज्ञी पर्याप्तक सर्वविशुद्ध प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति ॥ आदिशब्देन जातिस्मरणादि परिगृह्यते ॥ कृत्स्नस्य मोहनीयस्योपशमादौपशमिकचारित्रम् ॥ तत्र सम्यक्त्वस्यादौ वचन तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥

य क्षायिको भावो नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

उसी काल में बंध हाय और पहिले के सत्ता में विद्यमान समस्तकर्म परिणामोंकी विशुद्धतासे संख्यात् हजार सागरोपम घाटि अंतः कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होगये हैं उस समय प्रथम सम्यक्त्व की योग्यता होती है

अपरा ॥ काल लब्धि ॥ भव-अपेक्षया ॥ =अन्य काल लब्धि भवकी अपेक्षासे है

भव्य ॥ पञ्चेन्द्रिय ॥ संज्ञी ॥ पर्याप्तक ॥ सर्वविशुद्ध ॥ =भव्य जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त अवस्था वाला सबसे विशुद्ध परिणामवाला

प्रथमसम्यक्त्वम् ॥ उत्पादयति । =प्रथम सम्यग्दर्शनको उपजाता है ॥

आदिशब्देन ॥ जातिस्मरणादिः ॥ परिगृह्यते । =(काल लब्ध्यादि वाक्यमें) आदि शब्द करि जाति स्मरणादिकका ग्रहणकियागयाहै

कृत्स्नस्य ॥ मोहनीयस्य ॥ उपशमात् ॥ औपशमिकम् ॥ =समस्त मोहनीय कर्मके उपशमसे उपशम

चारित्रम् ॥ तत्र सम्यक्त्वस्य ॥ आदौ ॥ वचनम् ॥ =चारित्रहोताहैवहां(सम्यक्त्वचारित्रसूत्रमें)सम्यक्त्वकीआदिमेंवापहिलेकथन(=वचन)है

तत्-पूर्वकत्वात् ॥ चारित्रस्य ॥ =क्योंकि चारित्रका होना उस सम्यक्त्व के निमित्त से है अर्थात् आत्मा प्रथम सम्यक्त्व अवस्थारूप होताहै फिर चारित्र अवस्थारूप

यः ॥ क्षायिकः ॥ भावः ॥ नवविधः ॥ उद्दिष्टः ॥ तस्य ॥ =जो क्षायिक भाव नौ प्रकार कहा गया है तिस (क्षायिक भाव) के

भेदस्वरूप-प्रतिपादन+अर्थम् ॥ आह । =भेद स्वरूप के कहने के लिए (=कहते) हैं कि

(१) नारकियोंके जातिस्मरण धर्मश्रवण वेदनासे पीड़ित होकर प्रथमउपशमसम्यक्त्व उपजावें हैं। चौथे नरक से सातवां नरक तक वेदना और जातिस्मरण दो ही कारण हैं। पशुओं जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनबिंब दर्शन तीन कारण हैं यही मनुष्य के हैं। भवनवासी देवों से लेकर बारहवां स्वर्गतक जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनबिंब दर्शन देवोंकी ऋद्धिका देखना चार कारण हैं। तेरहवेंस्वर्गसे सोलहस्वर्गतक देवर्द्धि बिना तीन ही कारण हैं। इससे ऊपर जातिस्मरण धर्मश्रवण दो कारण हैं॥

॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

चशब्द सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थ ॥ ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानक्षायिक तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्य तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकर क्षायिकमभयदानम्॥लाभान्तरायस्याशेपस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४॥

=ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

=ज्ञान दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि, सम्यक्त्व-चारित्रे च ते एव क्षायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति

ज्ञान-दर्शन- =क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, क्षायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,

दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि ॥॥ च =क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और

सम्यक्त्व-चारित्रे॥॥ ते॥ एव॥क्षायिकभावस्य ॥ =क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, ये क्षायिकभावके

नव भेदा ॥ भवन्ति । =नव भेद होते हैं। ये ही नव जीवके निज क्षायिक भाव हैं।

चशब्दः॥ सम्यक्त्वचारित्र-अनुकर्षण-अर्थः॥ =(सूत्रमें) चशब्द सम्यग्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के ग्रहणके लिये है॥

ज्ञान-आवरणस्य॥॥अत्यन्त-क्षयात्॥ केवलज्ञानम् ॥॥=ज्ञानावरणीयकर्म के अतिशय नाशसे केवलज्ञान

क्षायिकम् ॥॥ तथा ० केवलदर्शनम् ॥॥ =क्षायिक होता है दर्शनावरणीयकर्म के (अत्यन्तनाशसे)केवलदर्शन(क्षायिक होताहै)

दान+अंतरायस्य॥अत्यन्त-क्षयात्॥अनन्तप्राणिगण=दान अन्तराय के अतिशय नाश (होने) से अनन्तजीवोंका

अनुग्रहकरम् ॥॥क्षायिकम्॥॥ अभयदानम् ॥॥ =उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है।

लाभ+अन्तरायस्य॥अशेषस्य॥निरासात्॥परित्यक्त=लाभ अंतराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहीं है(परित्यक्त)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और भाव एकसा है॥

कवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतः शरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाः सूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः ॥ कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्यन्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः । यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाः प्रादुर्भवन्ति ॥ निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः । यतः सिंहासनचामरच्छत्रत्रयादयो विभूतयः ॥ वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम् ॥

कवल+आहारक्रियाणाम् ॥ केवलिनाम् ॥ =कवलाहार की क्रिया जिनके ऐसे केवली भगवानके (=केवलिनाम्)
यतः शरीरबलाधानहेतवः ॥ अन्य मनुज+असाधारणाः ॥ =जिससे (यतः) शरीर बलाधानके कारण अन्य मनुष्योंमें न रहन वाली
परमशुभाः ॥ सूक्ष्माः ॥ अनन्ताः ॥ प्रतिसमयं ॥ =अत्यन्त शुभ सूक्ष्म समय समय प्रति अनन्ते
पुद्गलाः ॥ सम्बन्धम् ॥ उपयान्ति ॥ =पुद्गल के परमाणु (पुद्गलाः) सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं
सः ॥ क्षायिकः ॥ लाभः ॥ कृत्स्नस्य ॥ भोगान्तरायस्य ॥ =सो क्षायिक लाभ है । समस्त भोगान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त–अभावात् ॥ आविर्भूतः ॥ अतिशयवान् ॥ अनन्त– =क्षयोपशम से प्रगटरूप अतिशयवान अनन्त
भोगः ॥ क्षायिकः ॥ यतः –कुसुमवृष्टि–आदयः ॥ =क्षायिक भोग है अर्थात् जिससे (=यतः) पुष्प वृष्टि आदिक
विशेषाः ॥ प्रादुर्भवन्ति ॥ निरवशेषस्य ॥ उपभोग– =विशेष प्रगट होते हैं वे समस्त उपभोग
अन्तरायस्य ॥ प्रलयात् ॥ प्रादुर्भूतः ॥ अनन्तः ॥ =अन्तराय नामा कर्म के नाशसे प्रकाशरूप अनन्त
उपभोगः ॥ क्षायिकः ॥ यतः ॥ सिंहासन–चामर– =क्षायिक उपभोग है अर्थात् जिससे सिंहासन चामर
छत्रत्रय–आदयः ॥ विभूतयः ॥ वीर्यान्तरायस्य ॥ कर्मणः ॥ =छत्रत्रय आदिक विभूतियें (प्रगट) होती हैं । (और) वीर्यान्तराय नामा कर्म के
अत्यन्त क्षयात् ॥ आविर्भूतम् ॥ अनन्तवीर्यम् ॥ क्षायिकम् ॥ =अत्यन्त नाशसे क्षायिक अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है ।

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिक सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥ य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ।।। सप्तानाम् ।।।प्रकृतीनाम् ।।। अत्यन्तक्षयात्,।= पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् ।।। सम्यक्त्वम् ।।। चारित्रम् ।।। अपि॰तथा॰ =क्षायिकसम्यग्दर्शनहोता है वैसेही(चारित्रमोहकर्मअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै
यदि॰क्षायिकदानादिभावकृतम् ।।। अभयदानादि ।।। =(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि किये हुए अभयदानादिक है।
सिद्धेषु ।। अपि-तत्-प्रसङ्गः।। न एष ।। दोषः।। =तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नहीं है
शरीरनामतीर्थकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् । =(अरहंतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थकरनामकर्मके उद्देककी अपेक्षा से है
तेषाम् ।। तद्॰अभावे ।। तत्-अप्रसङ्गः ।। =तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मों)का अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)कापसङ्गनहीं
कथम्॰तर्हि॰तेषाम् ।। सिद्धेषु ।। वृत्तिः ।।। =(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावों की)सिद्धोंमें प्रवृत्ति अवस्थिति है
परम॰अनन्तवीर्य-अव्याबाध-सुखरूपेण ।।। =(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य्य अव्याबाध आनन्दस्वरूपसे
एव॰तेषाम् ।। तत्र॰वृत्ति ।।। =तिन(अभयदानादिक भावों की)यहां (सिद्धों में) प्रवृत्ति है।
केवलज्ञानरूपेण ,।।। अनन्तवीर्य्य वृत्तिवत्॰ =केवल ज्ञानरूपकरि अनन्तवीर्य्य प्रवृत्तिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहैं)
य ।।उक्त ।।क्षायोपशमिकः।। भाव ।।अष्टादशविकल्पः।। =जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्॰भेद-निरूपणार्थम् ।। आह ।। र कहने के लिए(आचार्य ... सूत्र)कहत हैं कि

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपचभेदा सम्यक्त्वचारित्रसयमासयमाश्च ॥५॥

=ज्ञान।अज्ञा दर्श व ल्ब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदा।यथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमा (इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिका भावा चभवन्ति)॥५॥

पदच्छेद–ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धय चतुस्त्रि–त्रि–पंच भेदाः(यथाक्रमम् इसअध्यायकेदूसरेसूत्रसे लियागयाहै)सम्यक्त्व–चारित्र–संयमासंयमा इति एते अष्टादश क्षायोपशमिका भावा भवन्ति च ॥५॥

ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धय ॥चतुर्–त्रि–त्रि–पञ्च–भेदा ॥ =ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, चार,तीन,तीन और पांच प्रकार

यथाक्रमम्॥सम्यक्त्व,–चारित्र– =अनुक्रमसे है क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र (सराग चारित्र)

संयमासंयमा॥इति॥एते॥अष्टादश॥च॥ =संयमासंयम (देशव्रत) ऐसे ये अठारह भी (=च–जीवके)

क्षायोपशमिका ॥भावा॥ ॥भवन्ति ॥ =क्षायोपशमिक भाव है अर्थात् मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,अवधिज्ञान,

मनःपर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान कुमति कुश्रुत,कुअवधि ये तीन अज्ञान,चक्षु दर्शन,अचक्षु दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, और क्षायोपशमिकदान,क्षायोपशमिकलाभ,क्षायोपशमिकभोग,क्षायोपशमिकउपभोग,क्षायोपशमिक–वीर्य ये पांचप्रकार लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, क्षायोपशमिक सयमासयम ये सर्व अठारह भाव भी आत्मा में कर्मों के क्षयोपशम से होते है ॥ स्मरण रहे कि सूत्रमें च शब्द समुच्चयके लिये है इस लिये जितने क्षायोपशमिक भावों का सूत्र में उल्लेखनहीं किया गया है इस च शब्दसे उनका समुच्चय करलेना चाहिये ॥ अतः हमने च शब्द का अनुवाद 'भी' ऐसा किया है ॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो यह पांचवा सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवां सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञान दर्शन' वाक्य के लगता ही 'दानादि' वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक है। 'दानादि' शब्द के अधिक होने पर भी अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायों में नहीं है क्योंकि हमारे यहां 'लब्धयः' शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि क्षायोपशमिक लाभलब्धि क्षायोपशमिक भोगलब्धि क्षायोपशमिक उपभोगलब्धि क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दानादि लब्धयः वाक्यका यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका। अतः दोनों में अर्थ भेद कुछ भी नहीं रहा। दानादि शब्द के न होने से सूत्र लघु हो जाता है॥

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बन्ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिः स्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः ॥ च त्रयः ॥ च त्रयः ॥ च पञ्च ॥ च चतुस्त्रि = चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन त्रि-पञ्चभेदाः ॥ यासाम् ॥ ताः ॥ चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः = तीन पांच हुआ । ये हैं भेद जिनके वे चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥

यथाक्रमम् ॥ इति अनुवर्तते । तेन ॥ = यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे) निकलती है तिस (यथाक्रमअनुवृत्ति) के

अभिसम्बन्धात् ॥ चतुरादिभिः ॥ = संबंधसे चार तीन तीन पांच (ये संख्याओं के साथ)

ज्ञानादीनि ॥ अभिसम्बध्यन्ते । = ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं

चत्वारि ॥ ज्ञानानि ॥ = अर्थात् चार ज्ञान हैं (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)

त्रीणि ॥ अज्ञानानि ॥ त्रीणि ॥ दर्शनानि ॥ = तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुति, कुअवधि) हैं तीन (चक्षु, अचक्षु, अवधि) दर्शन हैं,

पञ्च ॥ लब्धयः ॥ इति = पांच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य) लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)

सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् ॥ उदयक्षयात् ॥ तेषाम् ॥ एव = सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे (=विना रसदीये खिरजाना) और तिनहीके

सत् उपशमात् ॥ देशघाति-स्पर्द्धकानाम् ॥ उदये ॥ = सदवस्थारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर

क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥ भवति । तत्र = क्षायोपशमिक भाव होता है तहां

ज्ञानादीनाम् ॥ वृत्तिः ॥ स्व-आवरण-अन्तराय- = ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-

क्षयोपशमात् ॥ व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्व ग्रहणेन ॥ = क्षयोपशमसे वर्णन की गई है वा कही गई है (सूत्रमें) सम्यक्त्व कहनेसे

वेदकसम्यक्त्वम् ॥ गृह्यते । = वेदकसम्यक्त्व (=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व) ग्रहण किया गया है

अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य ॥ = अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायो दयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणाम आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्या नकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकषायोदये सञ्ज्वलनकषायदेशघातिस्पर्द्धकोदयेनोक षायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरतपरिणामः क्षायोपशमिकः संयमासंयम इत्याख्यायते ॥

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः॥॥च॰ उदयक्षयात् ।। =और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वोंके उदयक्षयसे
सत्॰उपशमात् ।। च॰ सम्यक्त्वस्य ॥॥ =तथा सत्तारूप उपशमसे और सम्यक्त्व प्रकृतिके
देशघातिस्पर्द्धकस्य ॥ उदये ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानम् ॥॥ =देशघाति स्पर्द्धकका उदय होनेपर (जो)तत्त्वार्थ श्रद्धान (होता है)
क्षायोपशमिकं॥॥सम्यक्त्वम्॥॥अनन्तानुबन्धि—अप्रत्याख्यान=(वो)क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है॥ बहुरि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान
प्रत्याख्यानद्वादशकषाय—उदयक्षयात् ॥ =प्रत्याख्यान बारह कषायोंका उदयाभावी क्षयसे औरइनही बारह कषायोंका
सत्॰उपशमात् ॥ च॰संज्वलन कषायचतुष्टयअन्यतम— =सत्तारूप उपशमसे और संज्वलन कषायके चतुष्क में से किसी एक कषायके
देशघाति-स्पर्द्धक उदये ॥ च॰नो कषाय नवकस्य ॥॥ =देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय होने पर बहुरि नवनोकषायोंके
यथासम्भव—उदये ॥ च॰ निवृत्तिपरिणामः॥ आत्मनः॥ =यथासम्भव उदय होनेपर(जो)आत्मा का त्यागरूप परिणाम(है सो)
क्षायोपशमिकं॥॥ चारित्रम्॥॥ अनन्तानुबन्धि- =क्षायोपशमिक चारित्र है (और) अनन्तानुबन्धी
अप्रत्याख्यानकषाय—अष्टक—उदयक्षयात् । =अप्रत्याख्यान कषायोंके आठके उदयाभावीक्षयसे(=बिना रस दिये खिरना)
सत्॰उपशमात् ॥ च॰प्रत्याख्यानकषाय—उदये ॥ =सत्तारूप उपशमसे और प्रत्याख्यान कषायके उदय होने पर
सञ्ज्वलनकषाय देशघातिस्पर्द्धक उदये॥नोकषायनवकस्य॥=(और)संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्द्धकके उदय होनेपर व नोकषायकेनवकका
यथा सम्भव उदये ॥ च॰विरत—अविरत—परिणामः॥ =यथासम्भव उदय होने पर (आत्मा के) विरत विरत परिणाम (होय है सो)
क्षायोपशमिकः॥ संयमासंयमः॥ इति आख्यायते । =क्षायोपशमिक संयमासंयम है ऐसा वर्णन किया गया है

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्च भेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिः स्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः ।। च त्रयः ।। च त्रयः ।। च पञ्च ।। च चतु-त्रि =चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन त्रि-पञ्चभेदाः ।। यासाम् ।। ताः ।। चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः =तीन पांच हुआ । ये हैं भेद जिनके ते चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥

यथाक्रमम् इति अनुवर्तते । तेन ।। =यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे) निकलती है तिस (यथाक्रम अनुवृत्ति) के

अभिसम्बन्धात् ।। चतुरादिभिः ।। =संयोग से चार तीन तीन पांच (ये संख्याओं के साथ)

ज्ञानादीनि ।।। अभिसम्बध्यन्ते । =ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं

चत्वारि ।।। ज्ञानानि ।।। =अर्थात् चार ज्ञान हैं (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)

त्रीणि ।।। अज्ञानानि ।।। त्रीणि ।।। दर्शनानि ।।। =तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुति, कुअवधि) हैं तीन (चक्षु, अचक्षु, अवधि) दर्शन हैं,

पञ्च ।। लब्धयः ।।। इति =पांच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य) लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)

सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् ।। उदयक्षयात् ।। तेषाम् ।। एव =सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे (=बिना रसदीये निरजाना) और तिनहीके

सत् उपशमात् ।। देशघाति-स्पर्द्धकानाम् ।। उदये ।। =सत्तारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर

क्षायोपशमिकः ।। भावः ।। भवति । तत्र =क्षायोपशमिक भाव होता है तहां

ज्ञानादीनाम् ।। वृत्तिः ।। स्व-आवरण-अन्तराय- =ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-

क्षयोपशमात् ।। व्याख्यातव्या ।। सम्यक्त्व ग्रहणेन ।।। =क्षयोपशमसे वर्णन की गई है या करी गई है (सूत्रमें) सम्यक्त्व जानेसे

वेदकसम्यक्त्वम् ।।। गृह्यते । =वेदकसम्यक्त्व (=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व) ग्रहण किया गया है

अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य ।। =अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगति-र्देवगतिरिति॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमि-तरत्रापि॥ कषायश्चतुर्भेद, क्रोधो मानो माया लोभ इति ॥ तत्र क्रोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्क्रोध औदयिक । एवमितरत्रापि॥ लिङ्ग त्रिभेद, स्त्रीवेद पुंवेदो नपुंसकवेद इति॥ स्त्रीवेदकर्मण उदया-त्स्त्रीवेद औदयिक । एवमितरत्रापि ॥ मिथ्यादर्शनमेकभेद,

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम् ॥इति॰ अनुवर्तते — =(यथाक्रमम्) ऐसी अनुवृत्ति (इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे) आती है ॥
तेन॥ अभिसम्बन्धात्॥ गतिः॥ चतुर्॰भेदा॥ =तिस (अनुवृत्ति) द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥
नरकगतिः॥ तिर्यग्गतिः॥ मनुष्यगतिः॥ देवगतिः॥ =नरकगति–तिर्यचगति–नरगति–देवगति
इति॰तत्र नरकगतिनामकर्म उदयात् नारकः॥ =ऐसे है वहां नरकगतिनामा नामकर्मके उदयसे नरकका
भावः॥ भवति॥ इति नरकगतिः–औदयिकी ॥ एवम्॰ =भाव होता है ऐसे नरकगति नाम औदयिक भाव है
इतरत्र॰अपि॰कषायः॥ चतुर्–भेदः॥ =ऐसे अन्यभी हैं (तिर्यचगति इत्यादि)। कषाय चार भेद है
क्रोधः॥ मानः॥ माया॥ लोभः॥ इति॰ =क्रोध–मान–माया–लोभ–इस प्रकार है
तत्र॰क्रोधनिर्वर्तनस्य॥ कर्मणः॥ उदयात्॥ =वहां क्रोध सम्पादन कर्मके उदयसे
क्रोधः॥ औदयिकः॥ एवम्॰इतरत्र॰अपि॰ =क्रोध औदयिक भाव है इस प्रकार अन्यत्र भी है (अर्थात् मान माया लोभ)
लिङ्गम् त्रिभेदम्॥ स्त्रीवेदः॥ पुंवेदः॥ नपुंसकवेदः॥ इति=लिङ्ग तीनभेद स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इस प्रकार हैं
स्त्रीवेदकर्मणः॥ उदयात्॥ स्त्रीवेदः॥ औदयिकः॥=स्त्रीवेद कर्मके उद्रेक से नारीवेद औदयिक भाव है
एवम्॰इतरत्र॰अपि॰ =ऐसे अन्यत्र भी हैं (अर्थात् पुरुषवेद और नपुंसक वेद कर्मों के उदयसे क्रमानुसार पुरुष वेद और नपुंसक वेद औदयिक भाव हैं)
मिथ्यादर्शनम्॥ एकभेदम्॥ =मिथ्यादर्शन एक प्रकार है ॥

य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते ॥

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदा ॥ ६ ॥

यः ॥एकविंशतिविकल्पः॥ औदयिकः॥भावः॥ उद्दिष्टः॥ =जो इक्कीस भेदरूप औदयिक भाव कहा है

तस्य॥ भेदसंज्ञासङ्कीर्तन-अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यते =उसके भेद और नाम कहनेके लिए यह कहा जाता है कि

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदा ॥ ६ ॥

=गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड् भेदाः(यथाक्रमम् इत्यते एकविंशतिऔदयिक भावाःभवन्ति ॥

सूत्रार्थः-गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शन-अज्ञान- =गति,कषाय, भावलिङ्ग(भाववेद), मिथ्या दर्शन,अज्ञान,

असंयम-असिद्ध-लेश्याः॥ चतुः-चतु -त्रि-एक- =असंयम असिद्धत्व तथा लेश्या चार,चार तीन तथा एक

एक-एक-एक-षट्-भेदाः॥ यथाक्रमम् इति एवं॥ =एक,एक,एक और छः प्रकार(=भेदाः) क्रमसे इस प्रकार ये

एकविंशति ॥ औदयिक भावाः॥ भवन्ति =इक्कीस औदयिक भाव होते हैं अर्थात् मनुष्यगति, देवगति

नरकगति, और तिर्यञ्चगति ये चार गति,क्रोध,मान,माया,लोभ,

ये चार कषाय, स्त्रीवेद पुरुष,नपुंसक वेद, ये तीन लिङ्ग,मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण, नील, कापोत पीत,

पद्म, शुक्ल ये छः लेश्या। असिद्धत्व ये भाव समस्त आठों कर्मोंके उदय से होवे हैं ॥

---

(१) इसीप्रकार आचार्यके समान्यमें असिद्धत्व है हमारे यहां पाठ में असिद्ध है शेष पाठ एक है। हमारे यहां असिद्धका अर्थ असिद्धत्व लिया है अतः अर्थ एक है (२) आत्मा की कष विपरिणतिका नाम कषाय है ॥ (३) कषायोदयसे अनुरंजित योगों की प्रवृत्तिका नाम लेश्या है ॥ (४) जो आदि पदों के उदयसे स्त्रीको पुरुषके साथ पुरुषको स्त्रीके साथ और नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करनेकी जो इच्छा हो उसका नाम लिंग है। यह लिंग दो प्रकारका है एक द्रव्यलिंग दूसरा भाव लिंग। नाम कर्म के उदयसे होनेवाले बाह्य रचना विशेषका नाम द्रव्य लिंग है यह पुद्गलका परिणाम है और यहां पर आत्माके परिणामों का प्रकरण चल रहा है इसलिये जो सूत्रमें लिंग शब्दका ग्रहण किया गया है उसका अर्थ द्रव्य लिंग नहीं लिया जा सकता किंतु आत्मा का परिणाम स्वरूप भावलिंग है। यह भाव लिंग स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों का आपसमें रमणकरनेकी इच्छा रूप है और यह कषायरूप चारित्र मोहकर्मके उदयसे एवं स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसक वेदके उदयसे इसकी प्रकटता होती है इसलिए भावलिङ्ग औदयिक भाव है

सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्याऽस्तीत्यागम तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते॥ नैषदोष। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया याऽसौ योगप्रवृत्ति कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते।

सयोग केवलिनि। च। शुक्ललेश्या।। अस्ति। इति॥ =और सयोग केवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) में शुक्ललेश्या है। ऐसा

आगम।। तत्र॥ कषाय-अनुरंजन-अभावात्।। =शास्त्रका वचन है। (उपरोक्त गुणस्थान में) कषायमें लिप्तपनाके न होनेसे

औदयिकत्वम्।।। न॥ उपपद्यते। न॥ एष।। दोषः।। =औदयिकपना नहीं पाया जाता है (=उत्तर) यह दूषण नहीं है

पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया।। या असौ।। योगप्रवृत्ति।। =(यहां) पहिले भाव जतावने की विवक्षाकरि जो यह योगप्रवृत्ति

कषाय अनुरञ्जिता।। सा।। एव॥ इति॥ =कषायों करि अनुरञ्जित (पहिले या पूर्व) थी सो(=सा) ही(=एव) इसप्रकार(इति)

उपचारात्।। औदयिकी।। इति उच्यते। =उपचार से औदयिक (लेश्या) कही जाती है यहां ऐसा भावार्थ जानना

कि उपरोक्त गुणस्थानोंमें कषायनिका अभाव होते भी शुक्ल लेश्या कही है वह पूर्व भावों की अपेक्षा से कही है पहिले कषायनकरि संयुक्त योग थे तहां समस्त कषायनिकातो इन तीनों गुणस्थानों में अभाव हुआ परन्तु योग ग्यारहवां और बारहवां गुण स्थान में नहीं रहे और तेरवें में ७ योग रहे इसलिए उपचार करि औदयिक लेश्या कही है जैसे कसूम करि रंगा हुआ वस्त्र धोने पर भी कसूमला कहलाता है वैसे ही कषायों के दूर होने पर भी लेश्या कहलाती है॥

(१) आगपउक्ती कस्मा कसाय उदयाणु रंजिया हाइ =योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरञ्जिता भवति

कसाय-उदयाणु-रंजिया। जोग पउत्ती। लेस्सा। हाइ =कषायके उदयसे अनुरक्त जो योग प्रवृत्ति सो लेश्या है।

(२) अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्सा दु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु॥

असयत। इति यह। लेस्या। शुभत्रयलेस्या। हि। देशविरत त्रये। तत शुक्ला। लेस्या। अयोगिस्थानम्। अलेस्यं। तु॥ =असयत चौथे गुण स्थान तक छहों लेश्याएं। पीत-पद्म-शुक्ल ये शुभ लेश्या देशविरत प्रमत्तविरत अप्रमत्तविरत, तीन गुण स्थानोंमें हैं अप्रमत्त से तरह सयोगी तक शुक्ल ही अयोगी लेश्या रहित है (३) नैगमनयका एक पूर्वभाव प्रज्ञापन भेद माना है और जो बात पहिले थी किंतु वर्तमान में नहीं है उस का वर्तमान में होना मान लेना यह उस नयका विषय है। यद्यपि उपर्युक्त तीनों गुण स्थानोंमें योगों की प्रवृत्ति कषायोंसे अनुरंजित नहीं है तथापि पूर्व भाव प्रज्ञापननयकी अपेक्षा जो पहिले योगों की प्रवृत्ति कषायों से अनुरंजित थी वह अब भी है ऐसा उपचार से मान लिया जाता है इस रीति से उपशान्त कषाय क्षीण कषाय और सयोग केवली गुण स्थानों में होने वाली शुक्ल लेश्यामें भी जब लेश्या का लक्षण घटजाता है तब कोई बाध नहीं। चौदहवें अयोग केवली गुण स्थान में लेश्या का अभाव है क्योंकि वहां पर योगों की प्रवृत्ति नहीं है॥

मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम् ॥ ज्ञानावरणकर्मण उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम् ॥ चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्धकस्योदयादसंयत औदयिक ॥ कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिक ॥ लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति ॥ जीवभावाधिकाराद्द्रव्यलेश्या नाधिकृता। भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते ॥ सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या चेति ॥ ननु च उपशान्तकषाये क्षीणकषाये

मिथ्यादर्शनकर्मण ॥ उदयात् ॥ =मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे (अर्थात् मिथ्यात्वनामा मोहनीयकी प्रकृति उदयसे
तत्त्वार्थ-अश्रद्धान-परिणाम ॥ मिथ्यादर्शनम् ॥ =तत्त्वोंके स्वरूपका अश्रद्धानरूप परिणाम न होना सो मिथ्यादर्शन
औदयिकम् ॥ ज्ञानावरणकर्मण उदयात् ॥ पदार्थानाम् ॥ =औदयिक भाव है। ज्ञानावरणनामा कर्मके उदयसे पदार्थका
अनवबोधः ॥ भवति । तद् ॥ अज्ञानम् ॥ औदयिकम् ॥ =ज्ञान नहीं होने पाता है वह अज्ञाननामा औदयिक भाव है
चारित्रमोहस्य ॥ सर्वघाति-स्पर्द्धकस्य ॥ उदयात् ॥ =चारित्रमोहके सर्वघातिक स्पर्द्धकनिके उदयसे
असंयत ॥ औदयिक ॥ कर्म-उदय-सामान्य- =असंयम (भाव है वह) औदयिक भाव है (बहुरि) सामान्य कर्मनिके उदयकी
अपेक्ष ॥ असिद्ध ॥ औदयिक ॥ =अपेक्षारूप असिद्धत्व औदयिक भाव है
लेश्या ॥ द्विविधा ॥ द्रव्यलेश्या ॥ भावलेश्या ॥ च इति =लेश्या दो प्रकार है द्रव्यलेश्या और भाव लेश्या
जीवभाव-अधिकारात् ॥ द्रव्यलेश्या ॥ न अधिकृता ॥ =जीवके भावके प्रकरण (होने) से द्रव्यलेश्या अधिकृत नहीं है वा विषयभूत नहीं है
अर्थात् द्रव्यलेश्याका अधिकार वा प्रकरण नहीं है इसकारण भाव लेश्याप्रयाणकी
भावलेश्या ॥ कषायउदयरञ्जिता ॥ योगप्रवृत्तिः ॥ इति कृत्वा =भावलेश्या कषायके उदयकरि रञ्जित योगनिकी प्रवृत्ति है इसप्रकार (प्रवृत्ति) करके
औदयिकी ॥ इति उच्यते ॥ सा षड्विधा ॥ कृष्णलेश्या ॥ =औदयिकी कहलाती है सो छह प्रकार की है (अर्थात्) कृष्णलेश्या
नीललेश्या ॥ कापोतलेश्या ॥ तेजोलेश्या ॥ पद्मलेश्या ॥ =नीललेश्या—कापोतलेश्या—पीतलेश्या—पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या ॥ च इति ननु च उपशान्तकषाये । क्षीणकषाये । =और शुक्ललेश्या ॥ (प्रश्न) ॥ उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय [illegible]

अन्यद्रव्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्या ॥ कुत पुनरेषां पारिणामिकत्वम् । कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात् ॥ जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः ॥ ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । कृतमेव । कथं चेत् चशब्देन समुच्चितत्वात् ॥ यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुध्यते । न विरुध्यते ।

अन्यद्रव्य-असाधारणा । आत्मनः । वेदितव्या । = अन्यद्रव्यसे असाधारण वा भिन्नद्रव्यसे असमान आत्माको जानना चाहिए

कुतः पुनः एषाम् । पारिणामिकत्वम् । = बहुरि इन (तीनों भावों)के कहांसे पारिणामिकपना है (इन तीनों भावोंमें)

कर्मोदय-उपशम-क्षय-क्षयोपशम-अनपेक्षित्वात् । = कर्मका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम की विवक्षा नहीं है

जीवत्वं । चैतन्यं । इति अर्थः । सम्यग्दर्शनादि-भावेन । = (वहां) जीवत्व चैतन्य है ऐसा आशय है । सम्यग्दर्शनादिक भावकरि

भविष्यति इति भव्यः । तद्-विपरीतः । अभव्यः । = होएगा अर्थात् परिणमेगा ऐसा भव्य है उससे विरुद्ध अभव्य है
अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक जिसके न होवेंगे सो अभव्य है

ते । एते । त्रयः । भावाः । जीवस्य । पारिणामिकाः । = ते इतने तीन भाव जीवके पारिणामिक हैं

ननु च अस्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयः । अपि = (प्रश्न) अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व आदिक भी

भावाः । पारिणामिकाः । सन्ति । तेषाम् । इह = भाव पारिणामिक हैं तिनका इस जगह में (=इह) अर्थात् इस सूत्रमें

ग्रहणम् । कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । = ग्रहण करना योग्य है । (तिन दशभावोंका इससूत्रमें) ग्रहण करना योग्य नहीं

कृतम् । एव = (इससूत्रमें अस्तित्व नित्यत्व आदिक दशभावोंका ग्रहण) किया भी = (एव) है

कथम् चेत् चशब्देन । = सो (चेत्) कैसे वा किसप्रकार (=कथम्) किया है । (सूत्रमें) चशब्दके

समुच्चितत्वात् । यदि एवम् त्रयः । इति संख्या । = समुच्चितहोनेसे (आनेसे) । (प्रश्न) यदि ऐसा है तो तीन ऐसी गिन्ती

विरुध्यते । न विरुध्यते । = विरोधी भाव है (उत्तर) (उपरोक्त तीनकी संख्या) नहीं विरोधी भाव है

---

(१) अत्रासाधारणवचनं-अस्तित्वादि साधारणपारिणामिकभावापेक्षम्

अत्र असाधारण-वचनम् । अस्तित्व- = यहां (संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें) असाधारण वाक्य (=शब्द) कहेजानेवाले
अस्तित्व आदि-साधारण-पारिणामिक-भाव-अपेक्षम् = अस्तित्व आदिक (दश) साधारण वा समान पारिणामिक भावों की अपेक्षा है ।

सर्वार्थ ४ सिद्धि २४

तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते॥ य पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्व भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिका

तद् अभावात्॥ अयोगकेवली ॥	=(और)उस (योग)के न होने से अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती)
अलेश्य ॥इति॥निश्चीयते यः॥पारिणामिक भावः	=लेश्या रहित है निश्चय कीजिए है जो पारिणामिक भाव
त्रिभेद ॥उक्त ॥तद्–भेदस्वरूपप्रतिपादनअर्थम्॥आह	=तीन प्रकार कहा है उसके भेद और स्वरूप के जानके अर्थ कहते हैं कि

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ —जीवभव्याभव्यत्वानि ॥च	=जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व भी(च) पारिणामिक भाव जीवके हैं अर्थात्, ये तीन भाव भी अन्य द्रव्यसे असाधारण जीवके पारिणामिक भावहैं जहां कर्म की अपेक्षा नहीं द्रव्य का आत्म स्वरूप हो, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है
जीवत्वम् ॥ भव्यत्वम् ॥ अभव्यत्वम् ॥	=जीवपना वा चेतनपना भव्यपना अभव्यपना।
इति॰त्रय ॥ भावाः॥ पारिणामिकाः॥	=इस प्रकार तीन भाव पारिणामिक हैं

जीवभव्याभव्यत्वादीनि (सभाष्य॰ अध्याय २ सूत्र ७) दोनों पाठोंके मिलानेसे ज्ञात पड़ता है कि इस सातवां सूत्रमें हमारे यहांके सूत्रसे "आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी दोनों आम्नायों में अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य॰ के पाठ में आदि शब्दकरि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंका जैसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व आदि (देखो टिपणी अध्याय १० सूत्र ३) का ग्रहण किया है हमारे यहां आपके साधारण पारिणामिक भावोंका ग्रहण च शब्द करि किया है॥ असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव जीव के वे हैं जो केवल जीव में ही पाए जावें अन्य किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व हैं अधिक नहीं हैं। ये तीनों भाव अनादिकाल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष रहित पारिणामिक भाव वो हैं जो जीव में होते हैं और अचेतन अन्यद्रव्य जैसे धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य इत्यादिक में भी होते हैं वे समस्त पारिणामिक गुण अनेक हैं और अनादिकाल सिद्ध हैं॥

नायमेकान्त अमूर्ति रेवात्मेति। कर्म बन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्त। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः॥ यद्येव कर्म बन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेक-प्राप्नोति। नैष दोष। बन्धं प्रत्येकत्वे(ऽविवेके) सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते॥ उक्त च-बन्धपडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं। तम्हा अमुत्तिभावोऽणेयतो होइ जीवस्स॥ १॥ इति॥ यद्येव तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयत। इत्यत आह—

न॰अयम् ।एकान्तः।।अमूर्तिः।एव॰आत्मा।।इति॰ =यह(=अयम्)एकान्त नहीं है कि केवल अमूर्तीक ही (=एव) है
कर्म-बन्धपर्याय-अपेक्षया।।तद्-आवेशात्।। =कर्म बन्धनरूप पर्यायकी विवक्षाकरि उस (कर्म बन्धन) के प्रवेशहोनेसे
स्यात् मूर्तः।शुद्ध स्वरूप-अपेक्षया।।स्यात्। अमूर्तः।। =कथंचित् मूर्तीक है (और) शुद्ध स्वरूपकी विवक्षाकरि कथंचित् (स्यात्)अमूर्तीक है
यदि॰एवम्॰कर्म बन्ध-आवेशात्॰।अस्य।। =(प्रश्न)जो इस प्रकार है तो कर्म बन्धनके बन्धनसे उस (आत्मा)के
एकत्वे।।।सति।।।अविवेक॰।प्राप्नोति। न एषः।दोषः।। =एकपना होनेपर अज्ञानपना प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
बन्धम् ॰प्रति॰एकत्वे।।।(अविवेके।)सति।।।अपि॰ =कर्म बन्धन पर्यायप्रति अपेक्षासे एकपना(=एकत्वे)अर्थात् अविवेकपना होनेपर भी
लक्षण-भेदात्।।अस्य।नानात्वम्।।।अवसीयते। =लक्षण भेदसे उस(चेतन)के अनेकपना निश्चय किया जाता है
उक्तम्।।।च॰बन्धं॰पडि॰(-बन्धं प्रति॰) =और कहा भी है। बन्धकी अपेक्षासे
एयत्तं।।।लक्खणदो ।।। (एकत्वम्।।।लक्षणतः॰) =(जीव और कर्मके) एकत्व वा एकता है और लक्षण (भेद) से
हवइ। तस्स ।णाणत्तम् ।।।(भवति तस्य नानात्वम्)=तिस(जीव)के अनेकपना है
तम्हा॰अमुत्तिभावो ।(तस्मात्॰अमूर्तिभावः।।) =तिस कारणसे (तस्मात्-तम्हा)अमूर्तीकभाव
अणेयतो।होइ। जीवस्स।(अनेकान्तः भवति जीवस्य)=अनेकान्त (नय)से जीवके होय है अर्थात् जीवके अमूर्तीक भाव सिद्ध होता है
इति॰ =इस प्रकारसे सात सूत्रोंकरि जीवके पांच भाव वर्णन किये।
यदि॰एवम्॰ =(प्रश्न)जो इसप्रकार है अर्थात् बन्धप्रति (जीव और कर्मके)एकत्वपना है तो
तद्।।।एव॰लक्षणम् ।।।उच्यताम्। येन।।।नानात्वम्।।।=वही(-तद्एव) लक्षण कहेजाने योग्य है किजिस(लक्षण)द्वारा अनेकपना
अवसीयते। इति॰अतः॰आह। =निश्चय किया जाता है इसलिए(आचार्यनिम्न सूत्रमें) कहते हैं कि

एगनिरामी नगरसराय बलीलकत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अध्याय २ सूत्र ७

असाधारणा जीवस्य भावा पारिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादय पुनर्जीवाजीवविषयत्वा-त्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते ॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वादात्मन । कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावा । न चामूर्तेः कर्मणा बन्धो युज्यत इति ॥ तन्न, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः । जीवस्य । भावाः ।	=(क्योंकि) असमान या जो औरमेंनपाएजावें सो जीवके भाव
पारिणामिकाः । त्रय । एव । अस्तित्वादयः । पुनर्	=पारिणामिक तीन ही हैं। बहुरि (=पुनर्) अस्तित्व, आदिक (दशभाव)
जीव—अजीव-विषयत्वात् । साधारणाः ।	=चेतन और जड़ विषैं होनेसे साधारण हैं (अर्थात्जीवमें और अजीवमेंभीपाएजाते हैं)
इति । चशब्देन । पृथक् । गृह्यन्ते । आह ।	=इसप्रकार चशब्दकरि न्यारे ग्रहणकियेगये हैं (शिष्य)प्रश्नकरता है कि
औपशमिकादिभावानुपपत्तिः । अमूर्तत्वात् आत्मनः	=औपशमिक आदिभावोंकी चेतनके अमूर्तीक होन(के कारण)सेसिद्धिनहींहोतीहै
कर्मबन्ध-अपेक्षा । हि ।	=क्योंकि(=हि) कर्मबन्धकी अपेक्षारूप
ते । भावाः । न । च । अमूर्तेः ।	=वे(औपशमिक आदि)भाव हैं। बहुरि(=च) नहीं है अमूर्तीकके
कर्मणाम् । बन्धः । युज्यते । इति । तत्	=कर्मोंका बन्धन युक्त वा उचित (उत्तर) वह(आत्मा)
न । अनेकान्तात् ।	=अनेकान्त(नयकी अपेक्षा) से(प्रत्येक अवस्थामें)अमूर्तीक नहीं है

अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रदेशत्वमगुरुलघुत्वं नित्यत्वं प्रमेयत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं चेते दशभावाः ॥

(१) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो उसको अस्तित्व गुण कहते हैं (२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उस को वस्तुत्व गुण कहते हैं जैसे—घड़ेकी अर्थक्रिया जल धारण है (३) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे और जिसकी पर्यायें (अवस्थाएं) सदा पलटती रहती द्रव्यत्व है (४) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञानका विषय हो उसको—प्रमेयत्व गुण कहते हैं (५) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमें और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक या अनन्त गुण बिखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघु गुण कहते हैं। (६) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उस को प्रदेशत्व गुण कहते हैं ॥

(७) मूर्तत्व=साकारता (८) अमूर्तत्व=निराकारता या अमूर्तपना—(९) चेतनत्वम्=चेतनता=(१०) अचेतनत्वम्=अचेतनता अथवा जड़ता ॥

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥

स उपयोगो द्विविध । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः। मतिज्ञानं, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञानं, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभङ्गज्ञान चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विध । चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति॥ तयो कथ भेद ?। साकारानाकारभेदात्। साकार ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद ॥९॥

सूत्रार्थः—सः॥द्विविधः॥अष्टचतुर्भेदः॥ =वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है

वृत्त्यनुवादः—सः॥उपयोगः॥द्विविध ॥ज्ञान–उपयोगः॥ =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग

दर्शन–उपयोगः ॥ च॥ इति॥ज्ञान–उपयोगः ॥ =और (च) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग

अष्टभेदः॥ मतिज्ञानम् ॥श्रुतज्ञानम् ॥ =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञानम् ॥मन पर्ययज्ञानम्॥ केवलज्ञानम् ॥ =अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)

मत्यज्ञानम् ॥श्रुताज्ञानम् ॥विभङ्गज्ञान॥ च॥ इति =मतिअज्ञान या कुमति, श्रुतअज्ञान या कुश्रुत और विभंगज्ञान या कुअवधि इसप्रकार है

दर्शन–उपयोगः॥चतुर्विधः॥चक्षुर्दर्शनम् ॥ =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन

अचक्षुर्दर्शनम् ॥अवधिदर्शनं॥केवलदर्शनम्॥ च॥ =अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन

इति तयोः॥ कथम्॥ भेदः॥ ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है

साकार–अनाकार भेदात् ॥साकारम्॥ ज्ञानम्॥ =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे (अर्थात्) आकार सहित ज्ञान है

अनाकारम्॥दर्शनम् ॥ इति॥ =निराकार दर्शन है इसप्रकार है (अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहण है

तत् ॥छद्मस्थेषु ॥क्रमेण॥ वर्तते ॥ =वे (ज्ञान दर्शन) छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम (प्रथम दर्शन पीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग ॥ तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

सूत्रम्-उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थ — =उपयोग (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

उपयोगः॥ =चैतन्यके साथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वह उपयोग)

जीवस्य॥ लक्षणम्॥ भवति॥ =जीवका लक्षण है अर्थात् बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथ रहनेवाला जो कोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवें सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय-निमित्तवशात्॥ उत्पद्यमान॥ =दोनों(बाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा

चैतन्य-अनुविधायी॥ परिणाम॥ उपयोगः॥ =शुभाशुभ चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है

तेन॥ बन्धम्, प्रति एकत्वे॥ सति॥ अपि आत्मा॥ =तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीव और कर्म में) एकता होनेपर भी चैतन्य

लक्ष्यते॥ सुवर्णरजतयोः॥ बन्धम्॥ प्रति एकत्वे॥ सति॥ =जुदा लखा जाता है॥ जैसे सोना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर

अपि वर्णादिभेदवत्॥ तद्भेददर्शनार्थम्॥ आह॥ =भी(पीत-शुक्ल)वर्णादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते
लक्षणम् उच्यते =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनके भेद-ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है
भिन्न करनेमें जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्व है
इसी वह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायमें एकसा है =सोलहस्य कहा जाता है आचार्य परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेंसे किसी एक वस्तुको
(४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव, आत्माका परिणाम आत्माकी परिणति आत्माका परिणमन॥

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद: ॥ ६ ॥

स उपयोगो द्विविध । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेद: । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञानं, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभङ्गज्ञान चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विध । चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन चेति ॥ तयो: कथ भेद: ?। साकारानाकारभेदात् । साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ:—स:।द्विविध:।अष्टचतुर्भेद:। =वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकार है दूसरा चारप्रकार है

शब्दानुवाद—स:।उपयोग:।द्विविध:।ज्ञान-उपयोग । =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग

दर्शन-उपयोग: । च।ज्ञान-उपयोग: । =और (च) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग

अष्टभेद:। मतिज्ञानम् ।श्रुतज्ञानम् । =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञानम् ।मन:पर्ययज्ञानम् । केवलज्ञानम् । =अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)

मतिअज्ञानम् ।श्रुतअज्ञानम् ।विभङ्गज्ञानं। च।इति =मतिअज्ञान या कुमति,श्रुतअज्ञान या कुश्रुतऔर विभंगज्ञान या कुअवधि इसप्रकारहैं

दर्शन-उपयोग:।चतुर्विध:।चक्षुर्दर्शनम् । =दर्शन उपयोग चार हैं (अर्थात्) चक्षुदर्शन

अचक्षुर्दर्शनम् ।अवधिदर्शनं।केवलदर्शनम्। च =अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन,और केवलदर्शन

इति तयो:। कथम्।भेद:। ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है

साकार-अनाकार भेदात् ।साकारम् । ज्ञानम् । =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे(अर्थात्)आकार सहित ज्ञान है

अनाकारम्।दर्शनम् । इति =निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं(अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै

तत् ।छद्मस्थेषु ।क्रमेण। वर्तते । =वे(ज्ञान दर्शन)छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम(प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोग ॥ तेन बन्ध प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्ध प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

सूत्रम्–उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ =उपयोग (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

सूत्रार्थ — उपयोगः॥ =चैतन्यके साथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वह उपयोग)

जीवस्य॥ लक्षणम्॥ भवति॥ =जीवका लक्षण है अर्थात् बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथ रहनेवाला जो कोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवे सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय-निमित्तवशात्॥ उत्पद्यमान॥ =दोनों(बाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा

चैतन्य-अनुविधायी॥ परिणाम॥ उपयोग॥ =शुद्धाशुद्ध चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है

तेन॥ बन्धम्॥ प्रति॥ एकत्वे॥ सति॥ अपि॥ आत्मा॥ =तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीव और कर्म में) एकता होनेपर भी चैतन्य

लक्ष्यते॥ सुवर्णरजतयो॥ बन्धम्॥ प्रति॥ एकत्वे॥ सति॥ =शुद्धात्मा जाना जाता है॥ जैसे सोना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर

अपि॥ वर्णादिभेदवत्॥ तद्भेददर्शन-अर्थम्॥ आह॥ =भी(पीत-शुक्ल)वर्णादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते व्यतिकीर्णवस्तु-व्यावृत्तिहेतु॥ =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनके भेद-ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है लक्षणम्॥ उच्यते॥ =लक्षण कहा जाता है अर्थात् परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेंसे किसीएकवस्तुको भिन्न करनेमें जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्व है वह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है (४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव आत्माका परिणाम आत्माकी परिणति, आत्माका परिणमन।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ६ ॥

स उपयोगो द्विविध । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञानं, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभङ्गज्ञान चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विध । चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन चेति ॥ तयो कथ भेद ? । साकारानाकारभेदात् । साकार ज्ञानमनाकारदर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेद ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—स॥ द्विविधः॥ अष्टचतुर्भेद ॥ =वह (उपयोग) दो प्रकार है (उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है

टीकानुवाद—स ॥ उपयोगः॥ द्विविधः॥ ज्ञान–उपयोग ॥ =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग

दर्शन–उपयोगः ॥ च॥ इति॥ ज्ञान–उपयोगः ॥ =और (च) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग

अष्टभेदः॥ मतिज्ञानम् ॥ श्रुतज्ञानम् ॥ =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञानम् ॥ मन पर्ययज्ञानम् ॥ केवलज्ञानम् ॥ =अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)

मतिअज्ञानम् ॥ श्रुतअज्ञानम् ॥ विभङ्गज्ञान॥ च॥ इति =मतिअज्ञान वा कुमति, श्रुतअज्ञान वा कुश्रुत और विभंगज्ञान वा कुअवधि इसप्रकारहैं

दर्शन–उपयोग ॥ चतुर्विधः॥ चक्षुर्दर्शनम् ॥ =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन

अचक्षुर्दर्शनम् ॥ अवधिदर्शनं॥ केवलदर्शनम् ॥ च =अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन

इति तयोः॥ कथम् भेदः॥ ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है

साकार–अनाकार भेदात् ,॥ साकारम् ॥ ज्ञानम् ॥ =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे (अर्थात्) आकार सहित ज्ञान है

अनाकारम्॥ दर्शनम् ॥ इति =निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं (अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै

तद् ॥ छद्मस्थेषु ,॥ क्रमेण॥ वर्तते । =वे (ज्ञान दर्शन) छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम (प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

निरावरणेषु युगपत् । पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात् ॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पंचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यात ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधा — ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ।।	=कर्मरूप आवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
युगपत्॥पूर्वकालभाविनः॥अपि॥दर्शनात्॥	=(ज्ञान–दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
ज्ञानस्य॥प्राक्॥उपन्यास॥अभ्यर्हितत्वात्॥	=(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
सम्यग्ज्ञान प्रकरणात्॥	=सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
पूर्वम्॥पंचविध॥ज्ञानउपयोग॥व्याख्यात॥	=पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पांच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
इह॥पुनः॥उपयोगग्रहणात्॥ विपर्ययः॥ अपि॥	=बहुरि यहां(=इस)उपयोग शब्द ग्रहणसे विपर्ययज्ञान भी
गृह्यते॥इति॥अष्टविध॥ उच्यते ॥	=ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है ।
अनेन॥ अभिहित–परिणामेन ॥	=(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका कहते हैं कि)प्रकटकिया है परिणाम इसने
सर्वात्मसाधारणेन॥यथोक्तेन॥उपयोगेन॥	=(और) सर्वआत्मामें साधारण (समान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
ये॥ उपलक्षिता॥ योगिन॥ते॥ द्विविधाः॥	=उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा हैं)ते दो प्रकार हैं अर्थात् आठवां नवमां दो सूत्रोंमें कथित यह परिणाम या उपयोग जो समस्तजीवोंमें साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ [1]संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥=वे जीवा संसारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते॥जीवा॥संसारिणः॥मुक्ताः॥च द्विविधाःभवन्ति=तेजीवसंसारीऔर(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं । अर्थात्जोजीवकर्मसहितहैं

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२) थकमा–(प्रश्न) 'संसारिणो मुक्ताश्च' यहांपर

संसरणं संसार परिवर्तनमित्यर्थ ।

कर्मों की पराधीनताके कारण अनेक जन्म मरणोंको करते हुए संसारमें भ्रमण करते रहते हैं वे संसारी कहे जाते हैं और जो समस्त कर्मोंको काटकर मुक्त होगये हैं उनको मुक्त जीव या सिद्धजीव कहते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवें सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद

इस्पर्थ–संसरणम् ॥१॥ संसारः ॥१॥ परिवर्तनम् ॥१॥ इति ॥ अर्थः ॥ –परिभ्रमणरूप संसार है वही परिवर्तन है ऐसा अर्थ है अर्थात् अपनेभावकरिबांधे

वाक्यरूपसे सूत्रका उल्लेख न कर संसारिणश्च मुक्ताश्च संसारिमुक्ताः ऐसा द्वंद्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ेगा इसलिये लाघव होगा तथा सूत्रका जो अर्थ है उस अर्थमें किसी प्रकारकी बाधा भी न होगी (उत्तर) संसारी और मुक्त दोनों शब्दोंमें मुक्त शब्द पूज्य और अल्पाक्षर है इसलिए द्वंद्वसमास करने पर मुक्तशब्दका ही पूर्व निपात होनेसे मुक्तसंसारिणः ऐसा सूत्र करना पड़ेगा तथा 'मुक्ता संसारो येन भावेन स मुक्तसंसारः तद्वंतो मुक्तसंसारिणः' अर्थात् जिस स्वरूपसे संसारकाछूट जाना हो वह मुक्तसंसार और उससे विशिष्ट या सहित मुक्त संसारी है यह मुक्तसंसारी शब्दका अर्थ होगा एवं उससे ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोगवान मुक्तसंसारी अर्थात् सिद्धजीव ही कहे जायगे संसारी जीव न कहे जायगे इस रीतिसे द्वंद्व समास मानने पर इस दूसरे अर्थकी प्रतीतिसे विपरीत अर्थ होगा अतः द्वंद्वसमास न मानकर संसारिणो मुक्ताश्च यह वाक्यार्थ ही उपयुक्त है ॥ यदि यहां पर फिर ये शंकाकी जाय कि संसारिणो मुक्ताश्च यहां पर च शब्द का अर्थ समुच्चय माना है तथा 'आपस में विशेषणविशेष्य रूपकी अपेक्षा न कर अनेक शब्दोंका वाक्य में भिन्न भिन्न रूपसे रहना' यह समुच्चय शब्दका अर्थ है यहां पर भी संसारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं यह बात बतलाने के लिये सूत्रमें 'च' शब्दका उल्लेख किया है परन्तु जिस प्रकार पृथिव्यप्तेजोवायु इस वाक्यमें पृथिवी आदि शब्दों में आपसमें विशेषणविशेष्य भाव नहीं है तथा अर्थभी भिन्न भिन्न है इस लिये वे भिन्न भिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार 'संसारिणोमुक्ता' यहां पर भी आपस में विशेषण विशेष्य भाव नहीं तथा अर्थभी भिन्न है इसलिये संसारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं अतः उनमें भेद प्रगट करनेके लिये समुच्चयार्थक चशब्द का उल्लेख करना व्यर्थ है (उत्तर) च शब्दके समुच्चय और अन्वाचय ये दोनों अर्थ हैं तथा एकका प्रधान और दूसरेको गौण बतलाना यह अन्वाचय शब्द का अर्थ है सूत्रमें जो चशब्द है उसका अर्थ यहां अन्वाचय है और एकस्थान में उपयोग गौणरूप से रहता है और दूसरे स्थान में मुख्यरूपसे रहता है यह यहांपर चशब्द द्योतन करता है इसरीतिसे 'भैक्ष्यं चर देवदत्तं चानय' अर्थात् भिक्षा का आचरण करो और देवदत्त को लेआओ इस अन्वाचय के प्रसिद्ध उदाहरण में जिस प्रकार भिक्षाका आचरण करना प्रधान है और देवदत्तका लाना गौण है उसी प्रकार संसारी और मुक्तजीवों में संसारीजीव प्रधानतासे उपयोगवान हैं और मुक्तजीव गौणरूप से उपयोगवान है यह चशब्दसे प्रदर्शित अर्थ है। इस लिये सूत्रमें 'चशब्द' व्यर्थ नहीं है ॥

निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात् ॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पञ्चविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यात ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधा — ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ।।	=कर्मरूप आवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
युगपत्॥पूर्वकालभाविनः॥अपि॥दर्शनात्॥॥	=(ज्ञान-दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
ज्ञानस्य॥प्राक्॥उपन्यासः॥अभ्यर्हितत्वात्॥॥	=(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
सम्यग्ज्ञान प्रकरणात्॥॥	=सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
पूर्वम्॥॥ पंचविधः॥ ज्ञानउपयोगः॥ व्याख्यातः॥	=पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पांच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
इह॥पुनः॥उपयोगग्रहणात्॥॥ विपर्ययः॥ अपि॥	=बहुरि यहां(=इस)उपयोग शब्दसे तीनस विपर्ययज्ञान भी
गृह्यते॥इति॥अष्टविधः॥ उच्यते॥	=ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है।
अनेन॥ अभिहित-परिणामेन॥	=(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका करते हैं कि)ग्रहणकिया है परिणाम इसने
सर्वात्मसाधारणेन॥यथोक्तेन॥उपयोगेन॥	=(और) सबआत्मामें साधारण(समान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
ये॥ उपलक्षिताः॥ योगिनः॥ते॥ द्विविधाः॥	=उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा है)ते दो प्रकार हैं अर्थात् आठवां नवमां इन सूत्रोंमें कथित यह परिणाम या उपयोग जो समस्तजीवोंमें साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ [1]संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १०॥=ते जीवाःसंसारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते॥जीवाः॥संसारिणः॥मुक्ताः॥च द्विविधाः भवन्ति=वेजीवसंसारीऔर(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं। अर्थात्जोजीवकर्मसहितहैं

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ समान है। (२) भाष्य-(भाष्य) संसारिणो मुक्ताश्च' यथोक्त

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते -एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ॥ अतीत्य —ते ॥ एव॰तेन ॥ एव॰ प्रकारेण ॥ तस्य ॥ एव॰ जीवस्य ॥ नोकर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते I	=अनन्तवार ग्रहणमें आयपुद्गलोंको उल्लंघिकरि (जब) तेही तिसही प्रकारकरि तिसही जीवके नोकर्मभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणुग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु को लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करे।
यावत्॰तावत्॰समुदितम् ॥ नोकर्मद्रव्य-परिवर्तनम् ॥	=सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकट्ठा होय है(तब)नोकर्मद्रव्य-परिवर्तन होता है।
कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते I	(अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है
एकस्मिन् ॥ समये ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥ अष्टविधकर्म-भावेन ॥ पुद्गला ॥ ये ॥ गृहीता ॥	=(जहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म-स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)
समय-मधिकाम् ॥ आवलिकाम् ॥ अतीत्य—	=समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर
द्वितीयादिषु ॥ समयेषु ॥ निर्जीर्णा ॥ पूर्वोक्तेन ॥ एव ॰क्रमेण ॥	=द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित =(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनकीज्यों)हीक्रमकरि(अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और मध्यगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसा होय जिसमें)
ते ॥ एव॰तेन ॥ एव॰प्रकारेण ॥ तस्य ॥ जीवस्य ॥ कर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते I यावत्॰तावत्॰ कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च॰	=तेही(कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब) =कर्मभावको प्राप्त होते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्) =(काल)कर्म परिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कीभांति है। केवल अन्तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है।

सिद्द

म एषामस्ति ते ससारिण ॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधद्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन,कालपरिवर्तनं,भवपरिवर्तन,भावपरिवर्तन चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनद्विविध नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कर्मद्रव्यपरिवर्तन चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम,त्रयाणा शरीराणा षण्णा पर्याप्तीना योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीता स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकाश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताश्च

	जे कृष्ण तिनके वशकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं
स ॥ एषाम् ॥ अस्ति ॥ ते ॥ संसारिणः ॥ तत् परिवर्तनम् ॥	=यह(संसार)जिनकेहै,ते संसारी हैं। वह परिवर्तन संसरण या परिभ्रमण
पंचविध ॥ द्रव्यपरिवर्तन ॥ क्षेत्रपरिवर्तनं ॥	=पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण
कालपरिवर्तनम् ॥ भवपरिवर्तनम् ॥ च ॥	=कालसंसरण, भवसंसरण और
भावपरिवर्तनम् ॥ इति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनम् ॥	=भावसंसरण इस प्रकार है तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण
द्विविधं ॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ च इति	=दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं
तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ नाम ॥	=तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोच्छ्वास–भाषा–मन
त्रयाणाम् ॥ शरीराणाम् ॥ षण्णाम् ॥	=तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-
पर्याप्तीनाम् ॥ योग्याः ॥ ये ॥ पुद्गलाः ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥	=पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि
एकस्मिन् ॥ समये ॥ गृहीताः ॥ स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः ॥	=एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि
तीव्रमन्दमध्यमभावेन ॥ च यथावस्थिता ॥ द्वितीयादिषु ॥	=और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक
समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ अगृहीतान् ॥	=समय में खिरे (वहुरि द्वितीयादिक समयमें) बिनाग्रहे (परमाणु)
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मिश्रकान् ॥ च ॥	=अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको
	अर्थात् पहिले ग्रहे तिनके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तभी
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मध्ये ॥ गृहीताम् ॥ च ॥	=अनन्तवार(ग्रहणमें आए हुओंको)उलंघकरि और बीचमें ग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—ते ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥ =अनन्तवार ग्रहणमें आगतुओंको उलंघिकरि (जब) तेही तिसही
प्रकारेण ॥ तस्य ॥ एव ॥ जीवस्य ॥ नोकर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । =प्रकारकरि तिसही जीवकें नोकर्मभावका प्राप्त होते हैं अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणुग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु को लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करै।
यावत् ॥ तावत् ॥ समुदितम् ॥ नोकर्म द्रव्य- =सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल) इकट्ठा होय है(तब)नोकर्म द्रव्य-
परिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते । =परिवर्तन होता है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है
एकस्मिन् ॥ समये ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥ अष्टविधकर्म- =(तहाँ) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म-
भावेन ॥ पुद्गलाः ॥ ये ॥ गृहीताः ॥ =स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)
समय-अधिकाम् ॥ आवलिकाम् ॥ अतीत्य— =समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर
द्वितीयादिषु ॥ समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ पूर्वोक्तेन ॥ =द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित
एव ॥ क्रमेण ॥ =(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनकीज्यों) ही क्रमकरि (अर्थात् अगृहीत और मिश्र गृहीत और अग्रहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसा होय जिसमें)
ते ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥ प्रकारेण ॥ तस्य ॥ जीवस्य ॥ =तेही(कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)
कर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । यावत् ॥ तावत् ॥ =कर्मभावको प्राप्त होते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्)
कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च ॥ =(काल)कर्म परिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(१) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्मद्रव्यपरिवर्तनका समाप्ति काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन की भांति है। केवल अन्तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

एयनिवासी जगरूपसहाय वकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिटीका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अध्याय २ सूत्र१०

म एषामस्ति ते संसारिणः ॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं, कालपरिवर्तनं, भवपरिवर्तनं, भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविधं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम, त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्च

	जे कम् जिनके पदार्थोकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं
सः ॥ एषाम् ॥ अस्ति ॥ ते ॥ संसारिणः ॥ तत् परिवर्तनम् ॥	=यह(संसार)जिनकै है,ते संसारी हैं। यह परिवर्तन संसरण या परिभ्रमण
पंचविधं ॥ द्रव्यपरिवर्तनं ॥ क्षेत्रपरिवर्तनं ॥	=पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण
कालपरिवर्तनम् ॥ भवपरिवर्तनम् ॥ च ॥	=कालसंसरण, भवसंसरण और
भावपरिवर्तनम् ॥ इति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनम् ॥	=भावसंसरण इस प्रकार हैं तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण
द्विविधं ॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ च ॥ इति	=दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं
तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ नाम ॥	=तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोश्वास–भाषा–मन
त्रयाणाम् ॥ शरीराणाम् ॥ षण्णाम् ॥	=तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-
पर्याप्तीनाम् ॥ योग्याः ॥ ये ॥ पुद्गलाः ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥	=पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि
एकस्मिन् ॥ समये ॥ गृहीताः ॥ स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः ॥	=एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि
तीव्रमन्दमध्यमभावेन ॥ च ॥ यथावस्थिताः ॥ द्वितीयादिषु ॥	=और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक
समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ अगृहीतान् ॥	=समय में खिरे (बहुरिद्वितीयादिक समयमें) विनाग्रहे (परमाणु)
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मिश्रकान् ॥ च ॥	=अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको
	अर्थात् पहिले ग्रहेथे तिनमेंके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तभी
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मध्ये ॥ गृहीतान् ॥ च ॥	=अनन्तवार(ग्रहणमेंआएहुओंको)उलंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते -एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ॥ अतीत्य — ते ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥ प्रकारेण ॥ तस्य ॥ एव ॥ जीवस्य ॥ नोकर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । यावत् ॥ तावत् ॥ समुदितम् ॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते । एकस्मिन् ॥ समये ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥ अष्टविधकर्मभावेन ॥ पुद्गलाः ॥ ये ॥ गृहीताः ॥ समय-अधिकाम् ॥ आवलिकाम् ॥ अतीत्य — द्वितीयादिषु ॥ समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ पूर्वोक्तेन ॥ एव ॥ क्रमेण ॥ ते ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥ प्रकारेण ॥ तस्य ॥ जीवस्य ॥ कर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । यावत् ॥ तावत् ॥ कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च ॥

=अनन्तवार ग्रहणमें आयुओंको उलंघिकरि (अब) वेही तिसही =प्रकारकरि तिसही जीवके नोकर्मभावको प्राप्त होवे हैं अर्थात् वही जीव जिसन पहिले समयमें परमाणुग्रहे थे वेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेद इनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु को लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करै। =सारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकठा होय है(वह)नोकर्मद्रव्य=परिवर्तन कहा है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है =(वहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म=स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते) =समय अधिक आवलीकालको उलंघकर =द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित =(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनवत्)ही क्रमकरि(अर्थात् अगृहीत और मिश्र गृहीत और मध्यमें गृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसा होय जिसमें) =वेही(कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (अब) =कर्मभावको प्राप्त होते हैं(तब)सारा(यावत्)इतना(=तावत्) =(काल)कर्मपरिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कीभांति है॥ केवल अन्तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

स एषामस्ति ते संसारिण ॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तनं,कालपरिवर्तनं,भवप रिवर्तनं,भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविधं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं

३ चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम,त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीता स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीया दिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताश्च

	मे कम विनक करिकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं
स ॥ एषाम् ॥ अस्ति ॥ ते ॥ संसारिणः ॥ तत् परिवर्तनम् ॥	=यह(संसार) जिनकेहै ते संसारी है। यह परिवर्तन संसरण या परिभ्रमण
पंचविध ॥ द्रव्यपरिवर्तन ॥ क्षेत्रपरिवर्तन ॥	=पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण
कालपरिवर्तनम् ॥ भवपरिवर्तनम् ॥ च ॥	=कालसंसरण, भवसंसरण और
भावपरिवर्तनम् ॥ इति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनम् ॥	=भावसंसरण इस प्रकार हैं तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण
द्विविधं ॥ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तन ॥ च इति	=दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं
तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ नाम ॥	=तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोच्छ्वास–भाषा–मन
त्रयाणाम् ॥ शरीराणाम् ॥ षण्णाम् ॥	=तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर इन्द्रिय-
पर्याप्तीनाम् ॥ योग्या ॥ ये ॥ पुद्गला ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥	=पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कन्ध एक चेतन करि
एकस्मिन् ॥ समये ॥ गृहीताः ॥ स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः ॥	=एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि
तीव्रमन्दमध्यमभावेन ॥ च यथावस्थिता ॥ द्वितीयादिषु ॥	=और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक
समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ अगृहीतान् ॥	=समय में खिरे (बहुरि द्वितीयादिक समयमें) बिनाग्रहे (परमाणु)
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मिश्रकान् ॥ च	=अनन्तवार ग्रहणकियेका उल्लंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको
	अर्थात् पहिले ग्रहे तिनविषै ग्रहीत भी बहुरि नए ग्रहणकिये तभी
अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—मध्ये ॥ गृहीतान् ॥ च	=अनन्तवार(ग्रहणमें आए हुओंको)उल्लंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीता समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम्॥ उक्तं च

अनन्तवारान् ॥ अतीत्य—त ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥	=अनन्तवार ग्रहणमें आयगुओंको उलंघिकरि (जब) वेही तिसही
प्रकारेण ॥ तस्य ॥ एव ॥ जीवस्य ॥ नोकर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते ।	=प्रकारकरि तिसही जीवके नोकर्मभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणुजिस वेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु का लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करे।
यावत् ॥ तावत् ॥ समुदितम् ॥ नोकर्मद्रव्य-	=जारा(=यावत्) इतना(=तावत्)(काल)इकट्ठा होय है(तब)नोकर्मद्रव्य-
परिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उच्यते ।	=परिवर्तन होता है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है
एकस्मिन् ॥ समये ॥ एकेन ॥ जीवेन ॥ अष्टविधकर्म-	=(तहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म-
भावेन ॥ पुद्गलाः ॥ ये ॥ गृहीताः ॥	=स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)
समय-अधिकाम् ॥ आवलिकाम् ॥ अतीत्य—	=समय अधिक आवलीकालको उलंघकर
द्वितीयादिषु ॥ समयेषु ॥ निर्जीर्णाः ॥ पूर्वोक्तेन ॥	=द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित
एव ॥ क्रमेण ॥	=(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनकीज्यों)ही क्रमकरि(अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और अगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसा होय जिसमें)
ते ॥ एव ॥ तेन ॥ एव ॥ प्रकारेण ॥ तस्य ॥ जीवस्य ॥	=वेही(कर्म योग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)
कर्मभावम् ॥ आपद्यन्ते । यावत् ॥ तावत् ॥	=कर्मभावको प्राप्त होवे हैं(तब)जारा(यावत्)इतना(=तावत्)
कर्मपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च ॥	=(काल)कर्म परिवर्तन है॥ कहा गया भी (च) है

(१) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही कथन है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कीसी है। केवल अन्तर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥ क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीर-मध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥
=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइं अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥

पुग्गलपरियट्टसंसारे ।(पुद्गलपरिवर्तनसंसारे ।)असइं ।=इस (=असइं=अस्मिन्) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें
अणंतखुत्तो (अनंतकृत्वः) =अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)
सव्वेऽवि पुग्गला ।। (सर्वे ।। अपि पुद्गलाः ।।) =सबही पुद्गल
खलु कमसो (खलु क्रमशः) =निश्चयकरि अनुक्रमसे
भुत्तुज्झिया ।। य जीवेण ।। (भुक्तोज्झिताः ।। च जीवेन ।।) =जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषै इस जीवनें सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतबार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े हैं" जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६

क्षेत्रपरिवर्तनम् ।।। उच्यते । सूक्ष्मनिगोदजीव ।। =क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता है (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया
अपर्याप्तक ।। सर्वजघन्यप्रदेशशरीर ।। लोकस्य ।। =अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके
अष्टमध्यप्रदेशान् ।स्वशरीरमध्यप्रदेशान् ।। कृत्वा—उत्पन्नः ।। =आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके आठमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका आठमध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ और
क्षुद्रभवग्रहणम् ।। जीवित्वा—मृतः ।। =क्षुद्रभव (श्वासके अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा
सः ।। एव०पुनः ।तेन ।।एव०अवगाहेन ।। द्विः =बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी बार
उत्पन्न ।तथा०त्रिः तथा०चतुर् इति० =तथा तीसरीबार तथा चौथीबार जन्मा (और मरा इस प्रकार)
एवं०यावत्०घनांगुलस्य ।।। असंख्येयभागप्रमिता— =हो जितने घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)
आकाश-प्रदेशाः ।। तावत्०कृत्व ०तत्र०एव० =आकाश प्रदेश हैं तितने बार (=कृत्वः) वहांही वा उस स्थानमें ही

[illegible]

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति याव-त्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च– सव्वह्मि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि ज ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् जीव में अनंतबार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा पर इस परिवर्तन के प्रमाण रहित

जनित्वा—पुनः एक-एक प्रदेश-अधिकभावेन = उपजकर बहुरि (पश्चात् उसक्षेत्रसे लोकके) एक एक प्रदेश अधिकमें (क्रमसे जन्मलेकर)

सर्वः लोकः आत्मनः = समस्त लोक (तीनसौतेंतालीस घनराजू प्रमाण) आत्मा या अपने (=आत्मनः)

जन्मक्षेत्रभावम् उपनीतः भवति = जन्म क्षेत्रपनेको या जन्मक्षेत्ररूप का प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है

अर्थात् वही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंका क्रमानुसार ही (अनुक्रम बिना अन्यसे यहन गिनियें) स्पर्शकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है या बना लेता है ॥

यावत्=तावत्=क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं ॥ च = (तब) सारा (=यावत्) इतना (=तावत्) क्षेत्रपरिवर्तन है । बहुरि कहा गया है कि

सव्वह्मि लोयखेत्ते कमसो त णत्थि ज ण उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तससारे॥१॥

=ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तससारे । सव्वह्मि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

ओगाहणेण ॥ बहुसो (अवगाहनेन ॥ बहुशः) = अनेक (=बहुशः) अवगाहना (रूपशरीर को धारकरि

परिभमिदो ॥ खेत्तससारे (परिभ्रमितः ॥ क्षेत्रसंसारे) = चारों ओरसे (=परि) भ्रमताहुआ (इस) क्षेत्र संसारमें

सव्वह्मि ॥ लोयखेत्ते ॥ (=सर्वस्मिन् ॥ लोकक्षेत्रे ॥) = सर्वलोक क्षेत्रमें

कमसो तं ॥ णत्थि (क्रमशः तत् ॥ न अस्ति) = अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है

जं ॥ ण उप्पण्णं ॥ (यत् ॥ न उत्पन्नम् ॥) = जहां (यहजीव) नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक अवगाहनरूपशरीरकूंधारकर सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमतें उपजा ऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा ।

लगान पर अतवर न गिर जाता है जैसे सि. सि. लता और पत्ता से पत्ताकार ताबल से नावाकार अर्थात् जितनी पार ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥ क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तक सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीरमध्यप्रदेशा कृत्वोत्पन्न क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृत स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावदघनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥	
=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइ अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥	
पुग्गलपरियट्टसंसारे (पुद्गलपरिवर्तनसंसारे) असइं	=इस (=असइं=अस्मिन्) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें
अणंतखुत्तो (अनंतकृत्वः)	=अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)
सव्वे अवि पुग्गला (सर्वे अपि पुद्गलाः)	=सबही पुद्गल
खलु कमसो (खलु क्रमशः)	=निश्चयकरि अनुक्रमसे
भुत्तुज्झिया य जीवेण (भुक्तोज्झिताः च जीवेन)	=जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषे इस जीवनें सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतवार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े हैं" जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६
क्षेत्रपरिवर्तनम् उच्यते सूक्ष्मनिगोदजीव	=क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता है (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया
अपर्याप्तक सर्वजघन्यप्रदेशशरीरः लोकस्य	=अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके
अष्टमध्यप्रदेशान् स्वशरीरमध्यप्रदेशान् कृत्वा—उत्पन्नः	=आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके अष्टमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका अष्टमध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ और
क्षुद्रभवग्रहणम् जीवित्वा—मृतः	=क्षुद्रभव (स्वासके अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा
सः एव पुनर् तेन एव अवगाहेन द्वि	=बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी बार
उत्पन्न तथा त्रिः तथा चतुर् इति	=तथा तीसरीबार तथा चौथीबार जन्मा (और मरा इस प्रकार)
एवं यावत् घनांगुलस्य असंख्येयभागप्रमिता—	=ही जितना घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)
आकाश-प्रदेशाः तावत् कृत्वः तत्र एव	=आकाश प्रदेश हैं तितने बार (=कृत्वः) वहांही वा उस स्थानमें ही

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति याव-
त्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च– सव्वं हि लोयखेत्तं कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो
परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् जीव में अनंतवार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा यह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित
जनित्वा—पुनः० एक-एक प्रदेश-अधिकभावेन ॥ =उपजकर पुनि(पश्चात् उसक्षेत्रसे लोकके)एक एक प्रदेश अधिकमें(क्रमसेमन्यलेकर)
सर्वः ॥ लोकः ॥ आत्मनः ॥ =समस्त लोक (तीनसेतैंतालीस घनराजू प्रमाण)आत्मा या अपने (=आत्मनः)
जन्मक्षेत्रभावम् ॥ उपनीतः ॥ भवति । =जन्म क्षेत्रपनको या जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है
अर्थात् यही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म
लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंका क्रमानुसार ही (अनुक्रम विना अन्यसे यहन
गिनिये) सर्वांकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है या बना लेता है ॥
यावत्॥तावत्॥क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं ॥ च० =(तब) सारा (=यावत्)इतना(=तावत्)क्षेत्रपरिवर्तन है । बहुरि कहा गया है कि

सव्वहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि ज ण उप्पण्णं ।
=ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे । सव्वहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

ओगाहणेण ॥ बहुसो॰(अवगाहनेन ॥ बहुशः॰) =अनेक(=बहुशः)अवगाहना(रूपशरीर को धारकरि
परिभमिदो ॥ खेत्तसंसारे॥(परिभ्रमतः ॥ क्षेत्रसंसारे॥) =चारों ओरसे(=परि)भ्रमता हुआ (इस) क्षेत्र संसारमें
सव्वम्हि ॥ लोयखेत्तम्हि॥(=सर्वस्मिन् ॥ लोकक्षेत्रे ॥) =सर्वलोक क्षेत्रमें
कमसो॰तं ॥ णत्थि॰(क्रमशः॰तत् ॥ न॰अस्ति) =अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है
जं ॥ ण॰उप्पण्णं ॥(यत् ॥ न॰उत्पन्नम् ॥) =जहां(यहजीव)नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक
अवगाहनरूपशरीरकरिधारकरि सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमसेउपजा वहऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा ।

चतुः और पञ्चम् से पञ्चदशः तावत् से तावत्कृत्य अर्थात् जितनी बार ॥

कालपरिवर्तनमुच्यते-उत्सर्पिण्या प्रथम समये जात कश्चिज्जीव स्वायुष परिसमाप्तौ मृत स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जात स्वायुष क्षयान्मृत स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एव जन्मनैरन्तर्यमुक्त मरणस्यापि नैरन्तर्य तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥उच्यते॥उत्सर्पिण्या॥प्रथमसमये॥जात॥=कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा कश्चित्•जीव॥स्व-आयुष॥परिसमाप्तौ॥ मृत॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा
स॥एव•पुन द्वितीयाया॥उत्सर्पिण्या॥द्वितीयसमये॥जात॥=बहुरि सो•ही(जीव)दूसरे उत्सर्पिणीकालकेदूसरेसमयमेंउत्पन्नहुआ(और)
स्व-आयुष॥क्षयात्॥मृत॥स॥एव•पुन•तृतीयाया॥ =अपनी आयु पूर्णकरि (=क्षयात्) मरा। बहुरि सोही (जीव) तीसरे
उत्सर्पिण्या॥तृतीयसमये॥जात॥एवम्•अनेन॥ =उत्सर्पिणी(काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस
क्रमेण॥उत्सर्पिणी॥परिसमाप्ता॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोड़ी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया
अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आते हैं॥
तथा•अवसर्पिणी॥च•एवम्• =बहुरि(तथा)अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार(एवम्)
जन्म-नैरन्तर्यम्॥उक्तम्॥ =लगातार या अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जनमलेनेमें कहागया है
अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनेसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमेंजन्म लिया सोगणनामेंनहीआवैहै
मरणस्य॥अपि•नैरन्तर्यं॥तथा•एव•ग्राह्यम्॥ =ऐसेही(उसीजीवका)मरणभी अविच्छेद या लगातार ग्रहणयोग्यहैअर्थात्बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमानुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़कर और और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

एतावत्कालपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । जादो मुदो य वहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥ १ ॥ भवपरिवर्तनमुच्यते-नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणि,तेनायुषा तत्रोत्पन्न पुन परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जात , एवंदशवर्षसहस्राणां यावन्त समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैवजातो मृत पुनरेकैकसमयाधिक भावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि,

---

एतावत्॥कालपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च ॥ =इतना काल परिवर्तन है और कहाँ भी है कि
उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु । णिरवसेसासु । जादो मुदो य वहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥१॥
=उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । भमणेण दु कालसंसारे जादो मुदो य वहुसो ॥१॥
उवसप्पिणि॥अवसप्पिणि॥(उत्सर्पिणी॥अवसर्पिणी॥)=उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी(काल)के
णिरवसेसासु ॥(=निरवशेषासु॥) =समस्त
समय-आवलियासु ॥ (समय-आवलियासु ॥) =समय और आवलियों में
भमणेण॥दु॥कालसंसारे॥(भ्रमणेन॥तु॥कालसंसारे॥)=भ्रमण [illegible] पर्यटनकरि(यहजीव) कालपरिवर्तनरूप संसारमें
जादो॥मुदो॥य॥वहुसो॥(जात॥मृत॥च॥बहुश॥) =बहुतवार अर्थात् अनंतवार जन्मा और (=य=च) मरा है॥
भवपरिवर्तनम् ॥ उच्यते T नरकगतौ ॥ =भवपरिवर्तन कहाजाता है, नरकगतिविषैं
सर्वजघन्यम् ॥आयु ॥दशवर्षसहस्राणि ॥ =सबसे कम आयु दशहजार वरसकी है
तेन॥आयुषा॥तत्र॥उत्पन्न ॥पुन॥परिभ्रम्य— =तिस आयु(का धारण) करि वहां उत्पन्नहुआ (जीव) बहुरि परिभ्रमनकरि
तेन॥एव॥आयुषा॥तत्र॥एव॥जात॥एवम्॥ =तिस ही आयुकरि वहांही उत्पन्न होता है इस प्रकार
दशवर्षसहस्राणाम् ॥यावन्त॥ समया॥तावत्कृत्व॥ =दशहजारवरसकेजितनेसमयहैतितनीवार(दशहजारवरसकीआयुधारकरि)
तत्र॥एव॥जात॥मृत॥पुन॥एक-एक-समय- =वहांही उत्पन्न होता है(और) मरता है बहुरि एक एक समय
अधिक-भावेन॥ त्रयस्त्रिंशत्सागर- =अधिक (आयु)वाला(एक एकवारमें)जन्मलेकरि(=भावेन)तेतीससागरकेसमय
उपमाणि॥परिसमापितानि ॥ (करोति) T =प्रमाण परिपूर्ण करता है भावार्थ यह है कि नरकगति विषैं सर्वजघन्य आयु
दश सहस्र वरस की है। तिस आयुको पाय वहां प्रथम नरक के पहिले पाथड़े में उपजा जीव पीछे

कालपरिवर्तनमुच्यते-उत्सर्पिण्या प्रथम समये जात कश्चिज्जीव स्वायुष परिसमाप्तौ मृत स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जात स्वायुषःक्षयान्मृत स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एव जन्मनैरन्तर्यमुक्त मरणस्यापि नैरन्तर्य तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥ उच्यते॥ उत्सर्पिण्याः॥ प्रथमसमये॥ जात॥ =कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा कश्चित्॰जीव॥ स्व-आयुष॥ परिसमाप्तौ॥ मृत॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा। स॥ एव पुनः द्वितीयाया॥ उत्सर्पिण्याः॥ द्वितीयसमये॥ जात॥ =बहुरि वोही (जीव) दूसरउत्सर्पिणीकालके दूसरेसमयमें उत्पन्न हुआ (और) स्व-आयुषः॥ क्षयात्॥ मृत॥ स॥ एव॰पुनः॰तृतीयायाः॥ =अपनी आयु पूर्णकरि (=क्षयात्) मरा। बहुरि वोही (जीव) तीसरे उत्सर्पिण्याः॥ तृतीयसमये॥ जात॥ एवम्॰ अनेन॥ =उत्सर्पिणी(काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस क्रमेण॥ उत्सर्पिणी॥ परिसमाप्ता॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोडी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया

अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितन समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आते हैं॥

तथा॰अवसर्पिणी॥ च॰एवम्॰ =बहुरि(तथा)अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार (एवम्) जन्म-नैरन्तर्यम्॥ उक्तम्॥ =लगातार या अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जनमलेनेमें कहागया है

अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गणनामें नहीं आते हैं

मरणस्य॥ अपि॰नैरन्तर्य॥ तथा॰एव॰ग्राह्यम्॥ =तैसेही(उसीजीवका)मरणभी अविच्छेद या लगातार ग्रहणयोग्य है अर्थात् बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितन समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमानुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़कर और और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा । मिच्छत्तसंसिदेण दु वहुसो वि भव ठिदी भमिदो ॥१॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रिय सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टि कश्चिज्जीव सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृते स्थितिमन्त कोटीकोटीसञ्ज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,

---

णिरयादिजहण्णादिसु (नरकादिजघन्यादिषु) =नरककी जघन्यसे लगाय
उवरिल्लिया * दु * (उपरिम् * तु *) =उपरिम् या उत्कृष्ट ता (तु=तो)
जावदु * गेवेज्जा (यावत् * ग्रैवेयकाः) =ग्रैवेयक तक
मिच्छत्तसंसिदेण । दु * (मिथ्यात्वसंसर्गेण तु) =मिथ्यात्वके संसर्ग सहित (यह जीव)
वहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा(बहुश अपि भवस्थितिभ्रमितः)=भवों की स्थिति या आयु पाय पायकर अनेकवार भ्रम्या है
भावपरिवर्तनम् ।उच्यते ।पञ्चेन्द्रियः। सञ्ज्ञी। =भवपरिवर्तन कहा जाता है । पंचेन्द्रिय संज्ञक
पर्याप्तकः। मिथ्यादृष्टिः। कश्चित्*जीवः। =पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई जीव
सर्वजघन्याम्।स्वयोग्याम्।ज्ञानावरणप्रकृतेः। =अपने उचित सबसे जघन्य ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतिकी
स्थितिम्। अन्तःकोटीकोटीसञ्ज्ञिकाम्। आपद्यते । =कोड़ा कोड़ी सागरके नीचे और कोड़िके ऊपर सञ्ज्ञावाली स्थितिकामाप्तहोय है
तस्य। कषाय अध्यवसायस्थानानि । =तिस(जीव)के कषायभावस्थान
असंख्येयलोकप्रमितानि।षट्स्थानपतितानि। =असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थान प्रति (अर्थात्हानिवृद्धिरूप) सहित
तत्स्थितियोग्यानि । भवन्ति । =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर की जघन्य

स्थिति बंधनेका कारण कषाय भावके स्थान हैं और वे गणनामें असंख्यात लोकके जितने प्रदेश होते हैं तितने हैं ॥ तिस एक एक स्थान विषै अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं जिनमें अनन्तभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानि औरअनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनंतगुणवृद्धि इसप्रकार षट् स्थान प्रति हानि वृद्धि संभवे है ॥

तत प्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायु समुत्पन्न पूर्वोक्तनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि,एवं मनुष्यगतौ च तिर्यग्वत्, देवगतौ नारकवत्,अयं तु विशेष—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यगत्यादि विर्षे भ्रमण करते करते फिर कोई काल विर्षे तिस ही आयु को पाय तिस पाथड़े में उपजा ऐसे ही दशसहस्र बरस के जितने समय होय तितनीबार तो तिस ही आयुसहित वहां ही उत्पन्न होतारहा बीचमें अन्य स्थानमें उत्पन्न हुआ सो गणना में नहीं आता है ॥ पीछे एक समय अधिक दशसहस्र वर्षकी आयु पाय उपजा ॥ पश्चात् दश हजार बरस दो समय अधिककी आयु पाय उपजा इसही अनुक्रमसे जितने तेतीस सागरके समय हैं तितने जन्मसे तथा मरणसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्यगति तथा अन्य आयुकरि उपजे सोतिस गिनती में नहीं आते हैं॥

तत॰प्रच्युत्य—तिर्यग्गतौ॥अन्तर्मुहूर्तआयु ॥। =वहाँ (नरक) से निकलकरि तिर्यंचगतिमें अन्तर्मुहूर्तआयुवाला।

समुत्पन्नः ॥ पूर्वोक्तेन ॥ एव ॰ क्रमेण ॥ =उत्पन्न होता है पहिले कहे हुए ही क्रमकरि

त्रीणि ॥। पल्योपमानि ॥। तेन ॥ परिसमापितानि ॥। =तीन पल्य प्रमाण तिस(जीव) करि परिपूर्ण होवे है अर्थात् वही जीव तिर्यचगतिवें जघन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी पाय फिर समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होय तितनीबार जघन्य आयुधारि पीछे एक एक समय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्य पर्यंत समस्त स्थितिविर्षे जन्मधारिपरिपूर्ण करै है

एवम्॰मनुष्यगतौ ॥च॰तिर्यग्वत्॰ =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यच सदृश है

देवगतौ ॥ नारकवत्॰अयम् ॥ तु॰विशेषः॥ =देवगतिविर्षे नारकके सदृश है परन्तु(=तु) भेद यह है (कि)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि॥। परिसमापितानि ॥।(भवन्ति)=इकतीस सागर प्रमाण(पूर्वोक्तक्रमसे) परिपूर्ण करता है(अर्थात्) इकतीस सागरसे अधिक आयुके धारक जो अनुदिश पांच अनुत्तर ऐसे चौदह विमानों में उपजे देवोंके परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि वे सम्यक्त्वी हैं

यावत्॰तावत्॰भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥। च ॰ =तावत् (=वहां तक) इतना(=जितना) भवपरिवर्तन है । कहा भी है

योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थितिं चतु स्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थान च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थान भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय लोकपरिसमाप्तेः । एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीय कषायाध्यवसायस्थान भवति, तस्यापि

चतुःस्थानपतितानि॥ श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि॥ =चार स्थानपति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण
योगस्थानानि॥ भवन्ति । =योगस्थान(अनुक्रमसे होते है)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, यतीनों जघन्य ही रहते हैं ॥ पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवां इत्यादिक योगस्थान होते हाँ श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे चढ़िजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होत जाय ते गणना में न आवें हैं

तथा॥ ताम्॥ एव॥ स्थितिम्॥ तद्॥ एव॥ च॥ =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही
कषायाध्यवसायस्थानम्॥ प्रतिपद्यमानस्य॥ =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनवाले (जीव) में
द्वितीयम्॥ अनुभव–अध्यवसायस्थानम्॥ भवति। =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है
तस्य॥ च॥ योगस्थानानि॥ पूर्ववत्॥ =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति (श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण–असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)
वेदितव्यानि॥ एवम्॥ तृतीयादिषु॥ अपि॥ =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी
अनुभवअध्यवसायस्थानेषु॥ आ॥ =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते
असंख्येयलोक–परिसमाप्तेः॥ एवम्॥ ताम्॥ एव॥ =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तब) वास्तविक (=एवम्) वोही
स्थितिम्॥ आपद्यमानस्य॥ द्वितीयम्॥ =स्थितिस्थान को प्राप्त करनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा
कषाय–अध्यवसायस्थानम्॥ भवति तस्य॥ अपि॥ =कषाय अध्यवसाय स्थान होताहै तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यमेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्य(एकं)सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति, एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु

तत्र॰सर्वजघन्यकषाय अध्यवसायस्थाननिमित्तानि॥ =वहाँ सबसे जघन्यकषायभावस्थान हैं कारण जिनको ऐसे
अनुभागअध्यवसायस्थानानि॥ असंख्येयलोक- =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक
प्रमितानि॥ भवन्ति। =परिमाण हैं अर्थात् इनसर्वजघन्यकषाय अध्यवसाय स्थानके एक एक
विषे अनुभाग बंधको कारण जे परिणाम(=अनुभागबंधअध्यवसायस्थान)
ते असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं तितने प्रमाण हैं
एवम्॰सर्वजघन्याम्॥ स्थितिम्॥ सर्वजघन्यम्॥ च =इस प्रकार सर्वजघन्यस्थितिको और सर्वजघन्य
कषायअध्यवसायस्थानम्॥ सर्वजघन्यम्॥ एव॰ =कषायभावस्थानको सर्वजघन्य ही
अनुभागबन्धस्थानम्॥ आस्कन्दतः॥ =अनुभागस्थानकोप्राप्तहोनेवाले
तद्॰योग्यम्॥(एकम्॥)सर्वजघन्यम्॥ योगस्थानम्॥ =तिसके योग्य एक सर्वजघन्य योगस्थान
भवति। तेषाम्॥ एव॰स्थिति-कषाय- =होता है तिनही(अर्थात् बिनापलटे हुए सर्वजघन्य ही)स्थिति कषाय
अनुभागस्थानानाम्॥ द्वितीयम्॥ =अध्यवसाय और अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थानों के दूसरा
असंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तम्॥ योगस्थानम्॥ भवति। =असंख्यातभागवृद्धिसहित योगस्थान होता है अर्थात् अनुभाग कषाय

स्थिति ए तीनों तो जघन्यही बंध परन्तु योगस्थान पलटि दूसरा होय है और ये जघन्य योगस्थान को श्रेणीके असंख्यात- वांभाग परिमाण हैं गणना में असंख्यात हैं और ये योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेदनि करि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि सहित चतुस्थान रूप ही हैं ॥

एवम्॰च॰तृतीयादिषु॥ योगस्थानेषु॥ =अगुरि इस प्रकार तीन आदिक योगस्थानोंमें

चतु स्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति । तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थान च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थान भवति, तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एव तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येय लोकपरिसमाप्ते । एव तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीय कषायाध्यवसायस्थान भवति, तस्यापि

चतु स्थानपतितानि ।श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि । =चार स्थानपति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण
योगस्थानानि । भवन्ति । =योगस्थान(अनुक्रमसे होते है)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान
के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, येतीनों जघन्य ही बंधते हैं ॥
पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवां इत्यादिक योगस्थान होते होते श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात
प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पलटिजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य
योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होत जांय ते गणना में न आवें हैं
तथा।ताम्।।एव।स्थितिम्।।तद्।।एव। च। =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही
कषायाध्यवसायस्थानम्।।प्रतिपद्यमानस्य। =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनवाले (जीव) में
द्वितीयम्।।अनुभव-अध्यवसायस्थानम्।।भवति। =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है
तस्य।।च।योगस्थानानि।। पूर्ववत्। =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति
(श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण–असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)
वेदितव्यानि।। एवम्।तृतीयादिषु।।अपि। =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी
अनुभवअध्यवसायस्थानेषु ।। आ। =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते
असंख्येयलोक–परिसमाप्तेः।। एवम्।ताम् ।। एव। =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तब) वास्तविक (=एवम्) वोही
स्थितिम् ।। आपद्यमानस्य ।।द्वितीयम् ।। =स्थितिस्थान को प्राप्त करनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा
कषाय–अध्यवसायस्थानम्।।भवति तस्य।।अपि। =कषाय अध्यवसाय स्थान होता है तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

अनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि कषाया ध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः । उक्ताया जघन्याया स्थितेः समयाधिकाया कषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोटीपरिमितायाः कषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि ॥

अनुभव-अध्यवसायस्थानानि॥ योगस्थानानि॥ च० =अनुभाग अध्यवसाय स्थान और योग स्थान
पूर्ववत् वेदितव्यानि॥ =पहिलेकी भांति जानना योग्य है ।

भावार्थ ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थाननिविषैं एक एकविषैं योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवां-भाग असंख्यातप्रमाण गणनाये अनुक्रमसे होते जांय और अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण अनुक्रमसे होयचुकें तब एक कषाय स्थान पलटता है (दूसरा कषाय स्थान होता है)

एवम् तृतीयादिषु॥ अपि कषायअध्यवसायस्थानेषु॥ =इस भांति तीन आदिक भी कषायअध्यवसायस्थान होते होते
आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः॥ वृद्धिक्रमः॥ वेदितव्यः॥ =असंख्यात लोकपरिपूर्णतक (=आ) क्रमानुसार वृद्धि जानना योग्य है

अर्थात् तीसर कषायस्थानविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान अनुक्रमसे होय और अनुभाग स्थाननि एक एक विषैं श्रेणीके असंख्यातवां भाग प्रमाण अनुक्रमसे योग स्थान होते जांय है इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पांच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते होते असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तबपूर्वकथितअंत कोड़ा कोडी सागर स्थितिसे एक समय अधिक ज्ञानावर्णीयकर्मकी स्थिति बधे हैं ॥

उक्तायाः॥ जघन्यायाः॥ स्थितेः॥ समयअधिकायाः॥ =कही हुई जघन्य स्थितिसे समय अधिकके
कषाय-आदिस्थानानि॥ पूर्ववत्० =कषायआदस्थान, अनुभागअध्यवसायस्थान, योगस्थान, क्रमानुसारपहिलेकीभांति होते
एकसमयअधिकक्रमेण॥ आ० उत्कृष्टस्थितेः॥ =(होते) एक(एक)समय अधिक क्रमसे उत्कर्ष स्थिति पर्यन्त
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः॥ =तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण (=परिमितायाः) तक (अनुक्रमसे)
कषायआदिस्थानानि॥ (पूर्ववत्) वेदितव्यानि ॥ =कषायभागस्थान, अनुभागअध्यवसायस्थान, योगस्थान पहिले की भांति जानो

अनन्तभागवृद्धि असंख्येयभागवृद्धि संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि असंख्येयगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि इमानि षट्स्थानानि, वृद्धिर्हानिरपि तथैव। अनन्तभागवृद्धि अनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अर्थात् श्रेणीके असंख्यातवेंभाग प्रमाण असंख्यातगुणनामें सब योगस्थान क्रमसे पलटि जांय तब एक अनुभाग स्थानपलटे और असंख्यात लोक प्रमाण सब अनुभागस्थान एक एक करि क्रमानुसार पलटि जांय तब ऐक कषायस्थानपलटै और सब असंख्यात लोक प्रमाण (कषायस्थानों विषैं एक एक विषैं असंख्यातलोक प्रमाणअनुभागस्थान क्रमानुसार हावे होते ष समस्त असंख्यातलोक प्रमाण) कषायस्थान क्रमानुसार पलटि जांय तब एक समय अधिक ऊपरि स्थिति पलटै ॥

अनन्तभागवृद्धिः॥ असंख्येयभागवृद्धि ॥
संख्येयभागवृद्धिः॥ संख्येयगुणवृद्धि ॥
असंख्येयगुणवृद्धिः॥ अनन्तगुणवृद्धिः॥ इमानि॥ षट्स्थानानि॥ वृद्धिः
हानिः॥ अपि॰ तथा॰ एव॰ अनन्तभागवृद्धिः॥
अनन्तगुणवृद्धि ॥
रहितानि॥ चत्वारि॥ स्थानानि॥
ज्ञातव्यानि॥ एवम्॰ सर्वेषाम्॥ कर्मणाम्॥
मूलप्रकृतीनाम्॥ उत्तरप्रकृतीनाम्॥ परिवर्तनक्रमः॥
वेदितव्यः॥ तद्॥ एतद्॥ सर्वम्॥ समुदितम्॥
भावपरिवर्तनम्॥ उक्तं॥ च॰

=(यथपि) अनन्तभागवृद्धि असंख्येयभागवृद्धि
=संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि
=असंख्येयगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि ये षट्स्थानपतितवृद्धि (और अनन्तभाग असंख्येयभाग, संख्येयभाग, संख्येयगुण असंख्येयगुण, अनन्तगुण)
=हानिभी है सो भी अनन्तभागवृद्धि
=अनन्तगुणवृद्धि (और अनन्तभागहानि अनन्तगुणहानि) [प्रतिच्छेदोंसे
=वर्जित शेषचारस्थानप्रति(वृद्धिहानि)जघन्ययोगस्थानोंकेअविभाग
=जानना चाहिये इस प्रकार समस्त कर्मों की
=मूलप्रकृतियोंका बहुरि उत्तरप्रकृतियोंकी पलटनक्रम
=जानना चाहिये(=तद्)यह(=एतद्)समस्त इकट्ठा होय तब
=भावपरिवर्तन होता है। कहा भी है

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि । मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ता । संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधा —

सव्वा ।१। पयडि–ट्ठिदिओ ।२। (सर्वाः ।१। प्रकृति–स्थितयः ।२।) =समस्त प्रकृति बंध(और) स्थितिबंध
अणुभाग–पदेस–बंध–(=अनुभाग–प्रदेशबन्ध) =अनुभाग बन्ध(और) प्रदेश बन्धके
ठाणाणि ।३। मिच्छत्तसंसिदेण ।४। (स्थानानि मिथ्यात्वसंसर्गेण) =स्थान मिथ्यात्वके संसर्गकरि
य ०भमिदा ।५। पुण ०भावसंसारे ।६। (च भ्रमिताः ।५। पुनः भावसंसारे ।६।) =ही(=य=च)निश्चय(=पुनः)भाव संसार में
=भ्रमे जाते हैं भावार्थ इस जीवने भाव संसार विषें भ्रमण करि करि प्रकृतिबंध,स्थितिबन्ध,अनुभागबन्ध और प्रदेश बंधके समस्त स्थानोंको निश्चय करके प्राप्त किया है ॥

उक्तात् ।१। पञ्चविधात् ।२। संसारात् ।३। निवृत्ताः ।४। =कथित (या उपर्युक्त) पांच प्रकारके संसारसे रहितहुये
ये ।५। ते ।६। मुक्ताः ।७। संसारिणाम् ।८। प्राक् ।९। उपादानम् ।१०। =जो (जीव) वे मुक्त (=सिद्ध हैं)संसारियोंका (इस सूत्र में) पहिले ग्रहणहै
तत्पूर्वकत्वात् ।११। मुक्तव्यपदेशस्य ।१२। =क्योंकि मोक्षका कथन या उपदेश उस (संसार)पूर्वक या संसार निमित्तक है अर्थात् मोक्षके व्यपदेशका संसार कारण है ॥

यदि संसार न होता तो मोक्षभी न होती क्योंकि मोक्ष संसारी जीवोंकी होती है जब वेही नहीं तो मोक्ष किसकी होती और भव पास गमन न होता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे सम्भव होता)

ये ।१। एते ।२। संसारिणः ।३। ते ।४। द्विविधाः ।५। =जो ये संसारी (जीव) हैं वे दो प्रकार(निम्नलिखित सूत्रानुसार)हैं

संसारियोंके भेद बहुत हैं और मोक्ष जीवोंके कोई भेद नहीं है तथा संसारी जीव अनुभव गोचर हैं और मोक्ष जीव अत्यन्त परोक्ष हैं इन दो कारणोंसे ही संसारियोंका प्रथम ग्रहण है । पश्चात् मोक्ष जीवोंका ग्रहण है ॥

॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विविध,द्रव्यमनो भावमनश्चेति॥तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्ष द्रव्यमन ॥वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमन ॥तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्का । न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्का ॥

समनस्काऽमनस्का ॥ ११ ॥

संसारिणः॥समनस्काः॥ अमनस्काः॥च ॥ =संसारी(जीव)संज्ञीवासैनी(=समनस्क) और(=च) असंज्ञीवाअसैनीअमनस्क हैं अर्थात् जो मनसहित हैं वे समनस्क संज्ञी या सैनी हैं और जो मनरहित हैं वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं भावार्थ जो हितमें प्रवर्तने और अहितसे दूर रहनेकी शिक्षाग्रहण करता है वासंज्ञी है और जो शिक्षा क्रिया उपदेश इत्यादिकाग्रहण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥

मनः॥द्विविधम्॥द्रव्यमन ॥भावमनः॥च॥इति॥ =मन दो प्रकार है द्रव्यमन और भावमन

तत्र॥पुद्गल-विपाकिकर्म उदय-अपेक्षम्॥द्रव्यमनः॥ =वहां पुद्गल विपाकीकर्मप्रकृतिके उदयकी अपेक्षा जिसको सो द्रव्यमन है अर्थात् जो हृदयस्थानविषैं आठ पांखुड़ीका फूलकमलके आकार सूक्ष्मपुद्गलका प्रचयरूप पिण्ड है सो द्रव्यमन है

वीर्यान्तरायनोइन्द्रिय-आवरणक्षयोपशम-अपेक्षया॥आत्मनः॥विशुद्धिः॥भावमन ॥तेन॥ =वीर्यान्तराय तथा नोइन्द्रियावरणनामा (ज्ञानावरणीयकर्मके)क्षयोपशमके कारणसे आत्माकी विशुद्धि सो भावमन है । उस

मनसा॥सह॥वर्तन्ते(=वर्तन्ते)इति॥समनस्काः॥ =मनकर सहित हैं(=वर्तन्ते) इस प्रकार (=इति)समनस्क हैं

न॥विद्यते॥मनः॥येषाम्॥ते॥(=ते)इमे॥अमनस्काः॥ =नहीं है विद्यमान या वर्तमान(=विद्यते)मन जिनकेंसे इतने अमनस्का हैं

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य द्वंद्व समास है इसमें समुच्चार्थ उपसर्ग 'च' दूर कर दियाजाता है समासका आलदनस ऐसा वाक्य हो जाता है (समनस्काः च अमनस्काः च)इसी कारणसे ---- अनुवादमें और शब्द लाये हैं (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है।

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते। समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामनस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपात ॥कथमभ्यर्हितत्व ?। गुणदोषविचारकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह——

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्॰मनस ॥ भाव-अभावाभ्याम् ॥	=इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि
संसारिणः॥ द्विविधाः॥ विभज्यन्ते॥ समनस्काः॥ च॰	=संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित हैं या विकल्पनीय हैं और (च)समनस्का
अमनस्काः॥ च॰ समनस्कामनस्काः॥ इति॰	=और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ
अभ्यर्हितत्वात् ॥	=पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (के हेतु) से (अभ्यर्हितत्वात्)(सूत्र में)
समनस्कशब्दस्य॥ पूर्वनिपात ॥ कथम्॰अभ्यर्हितत्वम्॥	=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहणहै (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है
गुणदोषविचारकत्वात् ॥	=(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है
पुनः॰अपि॰संसारिणाम् ॥ भेदप्रतिपत्त्यर्थम्॥ आह॥	=फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

संसारिणः ॥ त्रसस्थावराः ॥ भवन्ति ॥	=संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु सहित) और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वक्मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवा सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

(१) यह सूत्र पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)संसारिणस्त्रसस्थावराः। अर्थात् संसारी जीव त्रस तथा स्थावर हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव न तो त्रस हैं और न स्थावर हैं देखो [illegible] पृष्ठ ।

पूर्वा- संसारिग्रहणमनर्थकं,प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतं । संसारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम् । पूर्वापेक्षार्थ,ये उक्ता समनस्कामनस्काश्चेति संसारिण इति ॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबध्येत । एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रकृतत्वात् ॥ =(आचार्यसे शिष्यका प्रश्न) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रबंधके कारण से (इस सूत्र में)
संसारिग्रहणम् ॥ अनर्थकम् ॥ क ॥ प्रकृतम् ॥ =संसारीका उपादान (=ग्रहण) निरर्थक है (शिष्यके प्रश्नपर आचार्य) कहां प्रकरण है ? (आचार्यका उत्तर)
संसारिणः ॥ मुक्ताः ॥ च ॰ इति ॰ =(शिष्यका उत्तर) संसारिणो मुक्ताश्च ऐसा दसवें सूत्रमें प्रकरण है
न ॰ अनर्थकम् ॥ पूर्व–अपेक्षा–अर्थम् ॥ =(इस सूत्रमें संसारीका ग्रहण)निरर्थक नहीं है(इससे)पहिले(सूत्रके)सम्बन्धकेलियेग्रहण है
ये ॥ उक्ता ॥ समनस्कामनस्का ॥ च ॰ इति संसारिणः ॥ इति ॰ = कि ये कथित समनस्क और अमनस्क संसारी (जीव) हैं
यदि ॰ हि ॰ पूर्वस्य ॥ विशेषणम् ॥ न स्यात् । समनस्क =क्योंकि (=हि) जो (यदि) पहिले ११ वें सूत्रका विशेषण न होता तो समनस्क
अमनस्कग्रहणम् ॥ संसारिणः ॥ मुक्ताः ॥ च ॰ इति अनेन ॥ =अमनस्का (इससूत्र) के ग्रहणको संसारिणो मुक्ताश्च इस (सूत्र) से (=अनेन)
यथासंख्यम् ॥ अभिसम्बध्येत । =यथासंख्य सम्बन्ध होजाता (भावार्थ) यदि इसबारहवां सूत्रसे ग्यारहवां सूत्रका विशेषण संसारी शब्द आकर न किया जाता तो दशवें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवां सूत्रके समनस्का शब्द से और मुक्त शब्दका अमनस्का शब्द से सम्बन्ध होकर ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता है कि संसारी जीव हैं वे समनस्का या मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं वे अमनस्का व मन रहित हैं ॥
एवम् ॰ च ॰ कृत्वा संसारिग्रहणम् ॥ आदौ क्रियमाणम् ॥ =ऐसे करके(इससूत्रमें)संसारीका उपादान या ग्रहण आदिविषै करना (क्रियमाण)
उपपन्नम् ॥ भवति । =युक्ति युक्त वा प्रमाणसे भरा हुआ (=उपपन्न) होता है
तत् पूर्व–अपेक्षम् ॥ सत् । =वह(संसारी शब्द) का (ग्रहण) प्रथम (ग्यारहवां सूत्रकी) अपेक्षा होकर
उत्तर–अर्थम् ॥ अपि ॰ भवति । =अगले (बारहवां सूत्र) के लिये भी होता है कि

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामनस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपात ॥कथमभ्यर्हितत्वं ? । गुणदोषविचारकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्॰मनसः॥ भाव–अभावाभ्याम्॥ =इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि

संसारिण॥द्विविधा॥ विभज्यन्ते॥समनस्काः॥च॰=संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित हैं वाविकल्पनीय हैं और (च)समनस्का

अमनस्का॥ च॰ समनस्कामनस्काः॥ इति॰ =और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ

अभ्यर्हितत्वात्॥ =पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (केहेतु) से (अभ्यर्हितत्वात्)(सूत्र में)

समनस्कशब्दस्य॥पूर्वनिपात॥कथम्॰अभ्यर्हितत्वम्॥=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहण है (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है

गुणदोषविचारकत्वात्॥ =(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है

पुनः॰अपि॰संसारिणाम्॥ भेदप्रतिपत्त्यर्थम्॥आह॥=फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

संसारिणः॥ त्रसस्थावराः॥ भवन्ति॥ =संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन,रसना, नासिका, चक्षु सहित)और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वक्मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवा सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका: शब्दश: हिन्दी अनुवाद

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)[illegible] अर्थात् संसारी जीव [illegible] हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव त्रस हैं और न स्थावर हैं [illegible]

उलध्यानुपूर्वी स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदा पृथिवीकायिकादय सन्ति,

उल्लंघ्य—आनुपूर्वी॥स्थावर—भेद प्रतिपत्ति—अर्थम्॥आह=(कथनक्रमको)क्रम(=आनुपूर्वी)छोड़कर स्थावरके भेद बतानेके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय स्थावरा ॥ १३ ॥

पृथिवी—अप्—तेजस्—वायु—वनस्पतय॥स्थावरा॥=पृथिवी कायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव)हैं

स्थावरनाम कर्मभेदा॥पृथिवीकायिक—=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक

आदयः॥ सन्ति । अप्कायिक, तेज कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदय) हैं

(१) दोनों आम्नायोंके १३ १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनों आम्नायोंके चारों सूत्र लिखते हैं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयःस्थावराः ॥१३॥ अब ऊपर देखो ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ दोइन्द्रिय,तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस हैं पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ॥ ४१ ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः सभाष्य० में १४ वां सूत्र पृष्ठ ४२ पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक (ये)स्थावर जीव हैं॥ तेजः कायिक,वायुकायिक और =च, दो इन्द्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं॥ दोनों आम्नायोंके १३ वां और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस्–वायु दो शब्द हमारे यहांके १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्रमें अन्तगत हैं यह ता दोनोंके१३वां सूत्रमें पाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहां के १४ सूत्रसे 'तेजो–वायु' च अधिक हैं शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजःकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वां सूत्र और हमारे यहां के १३ वां सूत्र से प्रगट है। अवशेष तात्पर्य दोनों आम्नायके दोनों दोनों सूत्रों का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव,तीन इन्द्रियवाले जीव चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोंको दोनोंमें त्रस माना है।

(२) कायिकाः सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें, दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें तथा राजवार्तिकमें पाठ है। जिसका 'जीव' निकलगयाहो सो काय है। जीव सहित हो तो कायिक है। यहां पर जीवसहित से अभिप्राय है। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३२५ के निम्न वाक्यमें 'कायिक'शब्द लाये हैं। 'पृथिवी कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादयः स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामसत्त्वात् '॥

ससारिणो द्विविधा (१)। त्रसा स्थावरा इति॥ त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसा । स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिन स्थावरा॥ त्रस्यन्तीति त्रसा स्थानशीला स्थावरा इति चेन्न । आगमविरोधात्॥ आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति । तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम् । कर्मोदयापेक्षमेव ॥ त्रसग्रहणमादौ क्रियते । अल्पान्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च । सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम् ॥ एकेन्द्रियाणामपिबहुवक्तव्याभावात्

संसारिणः॥ द्विविधा ॥ त्रसाः॥ स्थावराः॥ इति॰	=संसारी जीव दो प्रकार हैं त्रस हैं स्थावर हैं
त्रसनामकर्मोदय-वशीकृताः॥ त्रसाः॥ स्थावरनामकर्म-	=त्रसनामकर्मकी प्रकृतिकेउदयकेवशसे हुए त्रस हैं स्थावरनामानामकर्मकीप्रकृतिके
उदयवशवर्तिनः॥ स्थावरा ॥ त्रस्य-अन्ति(त्रस्यान्ति)॥ इति॰	=उदयकेवशसे हुए स्थावर हैं(त्रसन)डरते हैं या भयभीत होते हैं ऐसे(=इति)
त्रसाः॥ स्थानशीलाः॥ स्थावरा ॥ इति॰चेत् ॰	=त्रस(और) तिष्ठनेका है स्वभावजिनका (ऐसे)स्थावर हैं ऐसी शंका (=चेत्)है
न॰आगमविरोधात् ॥ आगमे॥ हि॰काय-अनुवादेन॥	=(उत्तर)शास्त्रकेविपरीतज्ञानसे ऐसा नहीं है क्योंकि(=हि)शास्त्रमें कायकोअपेक्षासे
त्रसा ॥ द्वि इन्द्रियात्॥ आरभ्य—आ॰अयोगकेवलिन ॥ इति	=त्रस जीव दो इन्द्रियसे आरम्भकर अयोगकेवलीपर्यंत (=आ) हैं
तस्मात्॥ न॰चलनाचलन-अपेक्षं ॥ त्रसस्थावरत्वम् ॥	=तिससे चलन न चलनकी अपेक्षासे त्रस स्थावरपना नहीं है
कर्मउदय-अपेक्षम् ॥ एव॰त्रसग्रहणम् ॥	=कर्मउदयकी अपेक्षासे ही(त्रसस्थावरपना)है(इससूत्रमें)त्रसकाउपादान
आदौ॥ क्रियते॥ अल्पान्तरत्वात्॥ अभ्यर्हितत्वात्॥ च॰	=पूर्वमें कियाहै क्योंकि(त्रसशब्दके स्थावरशब्दसे) स्वर थोड़े हैं और प्रधानपना है
सर्व-उपयोगसम्भवात् ॥ अभ्यर्हितत्वम् ॥	=क्योंकि(त्रसके)समस्त उपयोग सम्भवहोनेसे पूज्यपना है अर्थात्त्रसकेप्रधानपना
	सर्व उपयोग संभव हैं उस उपयोगकी अपेक्षासे है
एकइन्द्रियाणाम् ॥ अपि॰बहुवक्तव्य-अभावात्॥	=एकेन्द्रियोंके भी बहुतकथन का भेद(वक्तव्य)नहोनेके कारणसे

(१) द्विविधके साथ पिया स्त्रीलिंग बहुवचन इस कारण लाए हैं कि स्थावरों का भी बहुत जाति हैं और त्रस भी अनेक प्रकार के हैं

(२) त्रस् दिवादि चतुर्थ गणका धातु है य विकरण वर्तमानकालके सिद्ध के प्रथम आता है इस प्रकार त्रस्'का'त्रस्य' हुआ इसके पहिले वर्तमान काल अन्त प्रत्यय लगाकर त्रस्य-अन्ति होता है परन्तु अन्ति के 'अ'के पहिले 'य' का लोप होजाता है अर्थात् सिद्धहोता है इसलिये त्रस्यन्ति वर्तमान काल परस्मैपद बहुवचन इस सूत्रमें है जो डरते हैं वा भयभीत होते हैं । आरम्भ ल्यबन्तमूलक भूतकालन्त है ॥

उत्तरद्यानुपूर्वी स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकादयः सन्ति,

अन्वय—आनुपूर्वीं स्थावर-भेद प्रतिपत्ति-अर्थम् आह—(कथनकरनका) क्रम (=आनुपूर्वी) छोड़कर स्थावरके भेद कहनके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवी–अप्–तेजस्–वायु–वनस्पतयः स्थावराः=पृथिवी कायिक, अप्‌कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव) हैं

इष्टानुवाद—स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिक=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक =अप्‌कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदयः) हैं

आदयः सन्ति ।

(१) दोनों आम्नायोंके १३ १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनों आम्नायोंके सारा सूत्र लिखते हैं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ अब ऊपर देखो ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥ द्वीन्द्रिय तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस हैं पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ॥ ५१ ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः सभाष्य० में १४ वां सूत्र पृष्ठ ५२ पृथिवीकायिक, अप्‌कायिक, वनस्पतिकायिक (ये) स्थावर जीव हैं। तेजःकायिक, वायुकायिक और =च, दो इन्द्रियवाले तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं ॥ दोनों आम्नायोंके १३ वां और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस् वायु दो शब्द हमारे यहां के १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्रमें अन्तगत हैं यह वा दोनोंके १३वां सूत्रमें पाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहां के १४ सूत्रसे 'तेजो-वायु' 'च' अधिक है शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजःकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वां सूत्र और हमारे यहां के १३ वां सूत्र से प्रगट है। अथएव तात्पर्य दोनों आम्नायके दोनों दोनों सूत्रों का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव, तीन इन्द्रियवाले जीव चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोंको दोनोंमें त्रस माना है।

(२) 'कायवाच्या' सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें तथा राजवार्तिकमें पाते हैं। जिसका 'जीव' निकलगया हो सो काय है। जीव सहित हो सो कायिक है। यहां पर जीव सहित से अभिप्राय है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १२५ के निम्न वाक्यमें 'कायिक' शब्द आते हैं। 'पृथिवी कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादयः स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामप्रस्तुतत्वात्' ॥

तदुदय निमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादय सज्ञा वेदितव्या ॥ प्रथनादिप्रकृति निष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ॥ एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तम् । प्रत्येकं तत्कथमिति चेदुच्यते ॥ पृथिवी । पृथिवीकाय । पृथिवीकायिक । पृथिवीजीव इत्यादि ॥ तत्र अचेतनावैस्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी । अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकायनामकर्मोदये प्रथनक्रियोपलक्षितैवेयम् । अथवा पृथिवी सामान्यम्—

तद्-उदय-निमित्ताः ॥ अमी ॥ इति० जीवेषु ॥ =उस (स्थावरनामा नामप्रकृति) के उदयके कारण इनजीवोंमें
पृथिवी-आदयः ॥ =पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक (=आदय)
सञ्ज्ञाः ॥ वेदितव्या ॥ प्रथन- =संज्ञा या नाम जानो (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति ये पांचो शब्द) प्रथन
आदि-प्रकृति-निष्पन्नाः ॥ अपि० रूढिवशात् ॥ =आदिक (भिन्नभिन्न) धातुओंसे (=प्रकृति) निकले हैं। फिरभी (=अपि) रूढिके वाशसे
प्रथन-आदि-अनपेक्षा ॥ वर्तन्ते । =(इनपांचो शब्दोंकी) प्रथनादिक अर्थात् विस्तारादिक (अर्थ) की विवक्षा नहीं है
एषाम् ॥ पृथवी-आदीनाम् ॥ आर्षे ॥ चातुर्विध्यम् ॥ =इन पृथिवी आदिकोंके ऋषियों रचित धर्मशास्त्रमें (=आर्षे) चार चार भेद
उक्तम् ॥ प्रत्येकम् ॥ तत् ॥ कथ० इति० चेत्० उच्यते । =होगये हैं वह (=तत्) प्रत्येक कैसे हैं? ऐसी शंका होने पर कहाजाता है कि
पृथिवी ॥ पृथिवीकाय ॥ पृथिवीकायिक ॥ पृथिवीजीवः ॥ इति =पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव ऐसें
आदि ॥ =और भी हैं अर्थात् अप्-अप्काय, अप्कायिक अप्जीव; तेजः, तेजःकाय, तेजःकायिक, तेजोजीव; वायु-वायुकाय-वायुकायिक-वायुजीव; वनस्पति-वनस्पतिकाय-वनस्पतिकायिक-वनस्पतिजीव हैं
तत्र० अचेतना-वैस्रसिक परिणाम-निर्वृत्ता ॥ =वहां अचेतन स्वभावसिद्ध (=वैस्रसिक) परिणामसे रचित
काठिन्यगुण-आत्मिका ॥ पृथिवी ॥ अचेतनत्वात् ॥ =अपने (=आत्मिक) कठिनतागुणकरि सहित पृथिवी है। जड़पनासे
असति अपि, पृथिवीकायनामकर्म उदये ॥ प्रथन-क्रिया- =पृथिवीकायनामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदय न होनेपरभी प्रथन या फैलावक्रिया
उपलक्षिता-एव० इयम् ॥ अथवा० पृथिवी ॥ सामान्यम् =आदिसे युक्त (=उपलक्षित) यह (=पृथिवी) है ही ॥ या पृथिवी सामान्य (शब्द) है

उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। काय शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्त पृथिवीकाय। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकाय अस्यास्तीति पृथिवीकायिक। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदय कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीव

उत्तरत्रये ॥ अपि *	=क्योंकि अगले तीनों भेद (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव)में भी (पदयन्द)
सद्भावात्॥ काय॥ शरीरम्॥ पृथिवीकायिकजीव-	=विद्यमान है। काय वा शरीर जो पृथिवी कायिक जीवकरि
परित्यक्त ॥	=त्यागित होगया है अर्थात् जिसमेंसे पृथिवी कायिक जीव मरकर निकल गया है
पृथिवीकाय ॥ मृत-मनुष्यादिकायवत् *	=सो पृथिवी काय है। मरेहुये मनुष्यादिकके शरीर सदृश (पृथिवी काय) है
पृथिवीकाय॥ अस्य॥ अस्ति इति पृथिवीकायिक ॥	=पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है ॥ "सा यह" जीव "पृथिवी शरीरके संबंध सहित है" जय०वचनिका पृष्ठ २५६ अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संबंध है वह पृथिवी कायिक है ॥
तत्काय-सम्बन्धवशीकृत॥ आत्मा ॥	=उस (पृथिवी) शरीरके संबंध वशीभूत आत्मा (अन्य कायके शरीरसे छूटकर)
समवाप्त(सम् अव-आप्त) पृथिवीकायनामकर्मोदय ॥	=पृथिवीकाय नामा नामकर्मकी प्रकृतिका उदय प्राप्त हुआ जिसको
कार्मणकाययोगस्थ ॥ य ॥	=(जितने अंतरालमें) कार्माण काययोगमें तिष्ठा हुआ जो (जीव जब तक)
नतावत्पृथिवीम्॥ कायत्वेन॥ गृह्णाति स पृथिवीजीव	=पृथिवीको कायपनाकरि ग्रहण नहीं करता तब तक (=तावत्) वह पृथिवी जीव है अर्थात् जिस जीवके पृथिवी कायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको काय-स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाययोगमें ही विद्यमानहै वह पृथिवी जीव है

भावार्थ कोई जीव किसी शरीर में था उसने अपनी आयु पूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथवी काय नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है वो उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन अवस्था)में कार्माण योगहै जितने काल तक विग्रहगति है तब तक वह जीव पृथिवी काय या शरीरको ग्रहणकरनेमें असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहेंगे। उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय, किसीजीवका दो समय, किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सक्ता है ॥ और विग्रह गति में (जीवके) कार्मण योग रहता है ॥

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधा प्राणिन स्थावरा । कति पुनरेषां प्राणा ? । चत्वार । स्पर्शनेन्द्रियप्राण कायबलप्राण उच्छ्वासनि श्वासप्राण आयु प्राणश्चेति ॥ अथ त्रसा के ते इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवी पुढवीकायो (पृथिवी पृथिवीकाय है) =बहुरि कहागया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,

पुढवीकाइय पुढविजीवो य (पृथिवी कायिक पृथिवीजीव य) =पृथिवी कायिक और (=य=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है

साहारणोपमुक्को (साधारण-उपमुक्त है) =(सो यह पृथिवी)साधारण है । जिससे जीव अभी निकला है (सो

सरीरगहिदो (शरीरगृहीत है) =शरीरआसित वा शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)

भवंतरिदो (भवान्तरित है) =भवान्तर अवस्थावाला वा विग्रहगतिसहितजीवहै(सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी,पृथिवीकाय, पृथिवी कायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके हैं। इनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवी कायिक जीवने जिस शरीर का छोड़ दिया है वह पृथिवीकाय कहलाता है यह मरे हुए मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत वा शरीर आसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मकाउदय है परंतु पृथिवीका काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाय मात्रमेंही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वहपृथिवीजीव है ॥

एवम् अप्-आदिषु अपि योज्यम् है =एस अप् आदिकोंमें भी(चार चार भेद) लगाना योग्य है

एते पञ्चविधा प्राणिन स्थावरा कति पुन एषां प्राणा ? =ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर है । पुनि इनके कितने प्राण हैं ?

चत्वार स्पर्शनेन्द्रियप्राण कायबलप्राण =(उत्तर)चार प्राण हैं(अर्थात्)स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,

उच्छ्वासनिश्वासप्राण आयुःप्राण च इति =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण

अथ त्रसा के ते इति अत्र उच्यते =अब त्रसजीव हैं वे कौन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रिय आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क व्यवस्थिता । आगमे । कथम् । द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियश्चेति॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः[1] ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—द्वि इन्द्रिय-आदयः त्रसाः	=दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय,पंचेइन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं ॥
इत्यनुवाद:-द्वे इन्द्रिये यस्य सः अयम् द्वीन्द्रियः	=दो हैं इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)
द्वीन्द्रियः आदिः येषां ते द्वीन्द्रिय-आदयः	=दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनके वे द्वीन्द्रिय आदि हैं
आदिशब्दः व्यवस्थावाची[2]	=(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरता है
क व्यवस्थिता आगमे कथम्	=(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे है
द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियः इति	=(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं
तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात्[3]	=तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है
द्वीन्द्रियस्य अपि अन्तर्भावः	=दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषै)ग्रहण(=अन्तर्भाव)है अर्थात् इस समास में

जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है तो वह अपने पासके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी मिला देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने पहिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुए

(१) दोनों आचार्योंमें इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवें सूत्रमें दिखाया है ॥ (२) मर्यादावाची तेन पञ्चेन्द्रियपूर्व्व द्वीन्द्रियादिजीवो न अप्यात्मनिप्राय ॥ (३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उदाहरणं लम्बकर्णः । अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधनः ॥

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य । साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधा प्राणिनः स्थावराः । कति पुनरेषां प्राणाः ? । चत्वारः । स्पर्शनेन्द्रियप्राणः कायबलप्राणः उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः आयुःप्राणश्चेति ॥ अथ त्रसाः के ते? इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च । पुढवी॰ "पुढवीकायो॰" (पृथिवी॰ "पृथिवीकाय"॰) =बहुरि कहा गया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,

पुढवीकाइय॰ पुढविजीवो॰ य (पृथिवी कायिक॰ पृथिवीजीव॰ च) =पृथिवी कायिक और (=च=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है

साहारणोपमुक्को॰ (साधारण–उपमुक्त॰) =(सो यह पृथिवी) साधारण है। जिससे जीव अभी निकला है (सो

सरीरगहिदो॰ (शरीरगृहीत॰) =शरीरग्रसित या शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)

भवंतरिदो॰ (भवान्तरित॰) =भवान्तर अवस्थावाला या विग्रहगतिसहितजीवहै (सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवी कायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके हैं। इनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवी कायिक जीवने जिस शरीर का त्याग किया है वह पृथिवीकाय कहाजाता है यह मरे हुए मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत या शरीर ग्रसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मका उदय है परन्तु पृथिवीका काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माण काय योगमें ही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वह पृथिवीजीव है ॥

एवम्॰ अप्–आदिषु॰ अपि॰ योज्यम्॰ ॥ =ऐसे अप् आदिकोंमें भी (चार चार भेद) लगाना योग्य है

एते॰ पञ्चविधा॰ प्राणिनः॰ स्थावराः कति॰ पुनः एषां॰ प्राणाः ? =ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर हैं। पुनि इनके कितने प्राण हैं ?

चत्वारः॰ स्पर्शनेन्द्रियप्राणः॰ कायबलप्राणः॰ =(उत्तर) चार प्राण हैं (अर्थात्) स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,

उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः॰ आयुःप्राणः॰ च॰ इति॰ =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण

अथ॰ त्रसाः॰ के॰ ते॰? इति॰ अत्र॰ उच्यते =अब त्रसजीव कौन कौन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रिय आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क्व व्यवस्थिता । आगमे । कथम् । द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियश्चेति ॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रमें— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ —द्वि-इन्द्रिय आदयः। त्रसाः। =दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियपर्यंत)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय,पंचेन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं ॥

इत्यन्वयः- द्वे। इन्द्रिये। यस्य। सः। अयम्। द्वीन्द्रियः। =दो हैं इन्द्रिय जिसके सो यह दो इन्द्रिय है (और)

द्वीन्द्रियः। आदिः। येषां। ते। द्वीन्द्रिय-आदयः। =दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनके ते द्वीन्द्रिय आदि हैं

आदिशब्दः। व्यवस्थावाची है। =(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरनेवाले

क्व। व्यवस्थिता। आगमे। कथम्। =(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे हैं

द्वीन्द्रियः। त्रीन्द्रियः। चतुरिन्द्रियः। च। पंचेन्द्रियः। इति। =(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं

तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात्। =तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है

द्वीन्द्रियस्य। अपि। अन्तर्भावः। =दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषै)ग्रहण(=अन्तर्भाव)है अर्थात् इस समास में

जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है वो वह अपने पासके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने परिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

---

(१) दोनों भाषायोंमें इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवों सूत्रमें दिखागया है ॥ (२) मर्यादावाची,तेन पञ्चेन्द्रियपर्यन्त द्वीन्द्रियादिजीवो त्रस भवतीत्यभिप्रायः ॥ (३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उपादानं सम्यक्त्वं। । अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधना ॥

कति पुनरेषां प्राणाः ? द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः । त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुः प्राणाधिकाः । पञ्चेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः । संज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः ॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह

	[illegible]न्द्रिय, चतुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, का भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया ॥
कति॥पुनः॥एषाम्॥ प्राणाः॥ ?	=(मरन)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–पंचेन्द्रिय)के प्राण हैं.
द्वि-इन्द्रियस्य॥ तावत्॥ षट्॥प्राणाः॥पूर्वोक्ताः॥एव॥	=प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवके छःप्राण हैं । प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण, उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण जो एकेन्द्रियजीव के होते हैं) हैं
रसन–वाक्प्राण–अधिकाः॥	=रसनाइन्द्रिय, वचनबल प्राण, अधिक हैं
त्रीन्द्रियस्य॥सप्त॥ते॥एव॥घ्राणप्राण–अधिकाः॥	=तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं । वे ही(छह और) नासिका इन्द्रियजिनके अधिक हैं
चतुरिन्द्रियस्य॥अष्टौ॥ते॥ एव॥चक्षुःप्राण–	=चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=वे)ही(=पूर्व–सात) (और)चक्षुप्राणजिनके
अधिकाः॥पञ्चेन्द्रियस्य॥तिरश्चः॥असंज्ञिनः॥नव॥	=अधिक हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच असैनीके नो (प्राण) हैं
ते॥एव॥श्रोत्रप्राण–अधिकाः॥संज्ञिनः॥दश॥	=वे ही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनके अधिक हैं ।(पंचेन्द्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं
ते॥एव॥मनोबलप्राण–अधिकाः॥आदिशब्देन॥	=वे ही(नौ और)मनबलप्राण जिनके अधिक हैं ।(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि
निर्दिष्टानाम्॥अनिर्ज्ञातसंख्यानाम्॥इयत्ता–	=उपदेशकी हुई(=निर्दिष्टानाम्) (परन्तु) बिनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा
अवधारणम्॥कर्तव्यम्॥इति॥ अतः॥आह	=निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है या निश्चयकरना चाहिये अत कहते हैं कि

(१) मर्यादावाची ,। तेन ॥ पंचेन्द्रियात् ,। ऊर्ध्वम्॥ षष्ठेन्द्रियादिजीवः ॥ न॥भवति ॥ इति॥अभिप्रायः ॥ | =मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पंच इन्द्रियसेऊपर छठी इन्द्रियादिजीव नहीं होवेहैं । [illegible]

(२) बहुगुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासः॥उदाहरणम्॥[illegible] | =बहुगुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समासमें [illegible]

† [illegible]

॥ पंञ्चेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थ । पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति ॥ कर्मेन्द्रियाणां वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । उपयोगप्रकरणात् ॥ उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च ॥ क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न पंचैव कर्मेन्द्रियाणि ॥

सूत्रम्— पंचेन्द्रियाणि=पंचेन्द्रियाणि (नाधिकानि) भवन्ति

सूत्रार्थ—पंच इन्द्रियाणि न अधिकानि भवन्ति । =इन्द्रियें (सब) पांच हैं अधिक नहीं होती हैं अर्थात् इससूत्रका आरम्भनियमकेलियहै, औरन्ना आदिकी संख्याकानिषेधक लिये है । जो "इन्द्रकहिये आत्मा(=संसारीजीव)ताकालिंगकहिये जनावनेका चिन्हतथा इन्द्रजोनामकर्म ताकरि रचे जेआकार ते इन्द्रिय हैं" पं०जय०वचनिकापृष्ठ२५८ ।

इत्यर्थ—इन्द्रियशब्दः व्याख्यातअर्थः पञ्चग्रहणम् अवधारणअर्थं पञ्च एव न-अधिक-संख्यानि इति कर्म-इन्द्रियाणाम् वाग्-आदीनाम् इह०ग्रहणम् कर्तव्यम् न०कर्तव्यम् उपयोग-प्रकरणात् उपयोग-साधनानाम् इह०ग्रहणं कृतम् च०न०क्रियासाधनानाम् अनवस्थानात् क्रियासाधनानाम् अङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानाम् सर्वेषाम् अपि०क्रियासाधनत्वम् अस्ति इति० न०पञ्च एव०कर्मइन्द्रियाणि

=इन्द्रिय शब्दका अर्थ पहिले विवरण कियागया है । पञ्चशब्दका उपादान निश्चयके लिये है । पांचही (इन्द्रियां) हैं अधिक संख्या वा गणना नहीं है =कर्मइन्द्रियें वचन, हाथ-पांव-गुदा-लिंग(=आदीनाम्)का यहां ग्रहण =करनाचाहिये। (कर्मइन्द्रियोंकाग्रहण) नहींचाहिये । क्योंकि (यहां) उपयोगकाविषयहै =(अत) उपयोगके कारणोंका यहां ग्रहण किया गया है [वस्तामसग भावारे =औरनहिक्रियाकेसाधनोंका क्योंकि(यदि क्रियाकेसाधनोंको इन्द्रियकहैं तो)अन- =क्योंकि क्रियाकेसाधन अंगोपांगनामा नामकर्मकरिरचित हैं =इसलिये(=अपि—देखो जैनकोशपृष्ठ४१)समस्तके क्रियाका साधनपना है =नकि पांचोही कर्मइन्द्रियोंके (क्रिया साधनपना है) भावार्थ ऐसा है कि

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥(२)सांख्यमती चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसना-त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रियां, वचन, हाथ पांव, गुदा, लिंग येपांच कर्मेन्द्रियां और मन ऐसे ग्यारह इन्द्रियां मानतेहैं । कोईभी इन्द्रियांमानते हैं उनकोउत्तमार्थ औरसंख्याकी इयत्ता के लियेय ह सूत्र है

कति पुनरेषा प्राणा ? द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिका ।त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिंद्रियस्याष्टौ त एव चक्षु प्राणाधिकाः । पचेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिका ।सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिका ॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसख्यानामियत्तावधारण कर्तव्यमित्यत आह

	चिन्द्रिय, चक्षुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया ॥
कति पुन एषाम् प्राणा ?	=(प्रश्न)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–पचेन्द्रिय)के प्राण हैं
द्वि–इन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव	=प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवके छैप्राण हैं । प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,उच्छ्वासनिःश्वासप्राण,औरआयुप्राणजोएकेन्द्रियजीव केहोते हैं) हैं
रसन–वाक्प्राण–अधिका	=रसनाइन्द्रिय,वचनबल प्राण, अधिक हैं
त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राण–अधिका	=तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं । वे ही(छहऔर) नासिका इन्द्रियजिनके अधिक हैं
चतुरिन्द्रियस्य अष्टौ ते एव चक्षुर्प्राण–	=चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=जो)ही(=एव–सात) (और)चक्षुप्राणजिनके
अधिका पञ्चन्द्रियस्य तिरश्च असज्ञिनः नव	=अधिक हैं । पंचेंद्रिय तिर्यंच असैनीके नो (प्राण) हैं
ते एव श्रोत्रप्राण–अधिका सञ्ज्ञिनः दश	=वेही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनके अधिक हैं ।(पंचेंद्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं
ते एव मनोबलप्राण–अधिका आदिशब्देन	=वेही(नौऔर)मनबलप्राण जिनके अधिक हैं ।(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि
निर्दिष्टानाम् अनिर्ज्ञातसंख्यानाम् इयत्ता–	=उपदेश कीहुई(=निर्दिष्टानाम्) (परतु) बिनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा
अवधारणम् कर्तव्यम् इति अतः आह	=निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है वा निश्चयकरना चाहिये अतः कहते हैं कि

(२) मर्यादावाची ,। तेन ¹। पंचेन्द्रियात् ,। ऊर्ध्वम्
षष्ठइन्द्रियादिजीवा ।। न भवति । इति अभिप्रायः ।।
(३) बहुगुणमविज्ञानबहुव्रीहिसमासे।उदाहरणम्।।लम्बकर्णो ¹। बहुगुणसंविज्ञाने ।। बहुधन ,।

=मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पंचेइन्द्रियसेऊपर
=छैइन्द्रियादिजीव नहीं होते हैं । ऐसाअभिप्रायसूत्रमेंआदिशब्दकाअर्थव्यवस्थावाची है
=बहुगुणअतद्गुणबहुव्रीहि समासमें दृष्टान्त लम्बकर्ण है वा लम्बेकानवाला है
=(और)अतद्गुणसंविज्ञान(बहुव्रीहिसमासमें)बहुतहैधनजिसकेऐसा(उदाहरण) है।

¹ द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रियपर्यन्त तक एकवचनमें है अतःअनुवाद एकवचनमें हैऔरप्राणशब्दोंमें अधिकाशब्दबहुवचनमें है इससेअनुवादबहुवचनमें है।

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निर्ज्ञापनार्थ) माह—

॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृति ॥ केन निर्वर्त्यते? कर्मणा ॥ सा द्विविधा वाह्याभ्यन्तर-

भेदात् । उत्सेधागुलासख्येयभाग प्रमितानां

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निज्ञापन–अर्थ)म् ॥ माह=यहां द्रव्येन्द्रियकेस्वरूपके निर्णय या जाननेके लिये कहते हैं कि

'निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

सूत्रम्—

=निर्वृत्त्युपकरणे (इन्द्रिये–द्विविधे)द्रव्यन्द्रियम् =निर्वृत्ति–इन्द्रियम्–उपकरणेन्द्रियम् च द्विविध द्रव्येन्द्रियम् भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—निर्वृत्ति–इन्द्रियम् ॥ च उपकरणेन्द्रियम् ॥ =निर्वृत्ति–इन्द्रिय और उपकरणेन्द्रिय

द्विविधम् ॥ द्रव्येन्द्रियम् ॥ भवति । =दोप्रकार द्रव्येन्द्रिय है अर्थात् निर्वृत्तिऔरउपकरणके भेदसे द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार है ॥

तत्पद्भुवाद–निर्वर्त्यते । निष्पाद्यते । इतिनिर्वृत्ति ॥ =रचागया है बनायागया है यह निर्वृत्ति है

केन ॥ निर्वर्त्यते । कर्मणा ॥ =(प्रश्न)किससे रचागया है । (उत्तर) कर्म करि [विशेषपने सो निर्वृत्ति है)

सा ॥ द्वि–विधा ॥ बाह्य–अभ्यन्तर–भेदात् ॥ =वह(निर्वृत्ति)बाह्यअभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार है(नामकर्मके उदयसे जोरचना–

उत्सेध–अंगुल–असंख्येयभागप्रमितानाम् ॥ =उत्सेध अगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

(१) सूत्र १६ १७ का पाठ और अर्थ दोनों आचार्योंमें एक है ॥ इन्द्रिय और विविध शब्दोंकी अनुवृत्ति क्रमसे १५ १६ सूत्रोंसे इस सूत्रमेंलीगई है ॥

(२)उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुलं तत्रत्यं तस्याष्ट गद्यते । परमागमे देहगेहग्रामनगरादिप्रमाणमुत्सेधांगुलमेवेति नियमितत्वात् ॥

उत्सेध–अंगुलम् ॥ इति व्यवहार अंगुलम् ॥ तत्रत्यं =उत्सेधअंगुल(=आठयवकेप्रमाण)हैसोव्यवहारअंगुलहै। यमरूप(संचाई–चौड़ाईउचाईमेंसम)

तदष्टपत्र ॥ अष्ट ॥ गद्यते । परमागमदेह–गेह–ग्राम– =यहीं (उत्सेधअंगुल)यहां लियागया है । आगममें शरीर घर ग्राम

नगर–आदि–प्रमाणम् ॥ उत्सेध अंगुलेन ॥ एव ॥ =नगरादिकका प्रमाण उत्सेध अंगुलसे ही है ॥

इति ॥ नियमितत्वात् ॥ =क्योंकि ऐसा नियमित या विधित है ॥ इस उत्सेधअंगुलसे पांच सौ गुणा प्रमाणांगुलहै इससे महापर्वत नदी समुद्रादिकका परिमाण कहाजाता है । भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलश धनुषादिका प्रमाण होता है ॥

तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह

द्विविधानि ॥ १६ ॥

विधशब्द प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थ ॥ कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ? । द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

जो पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारण हों उसीकानाम इन्द्रिय माना है। स्पर्शनआदि पांच इन्द्रियां उपयोगमें कारण हैं इसलिये उन्हें इन्द्रिय मानना युक्त है। वाक् पाणि पाद गुदा और लिंग उपयोगमें कारण नहीं, इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहा जासकता यदि यहांपर जो क्रियाके साधन हों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना आदि क्रियाओंके कारणहोनेसे वाक् आदिइन्द्रियां कहीजावेंगी परतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सभी अंग उपांग हैं। सबोंको इन्द्रिय कहना पड़ेगा फिर किसको इन्द्रिय कहना किसको न कहना अथवा वाक् पाणि आदिपांचको कर्मेन्द्रिय कहना औरोंका न कहना यह व्यवस्थाही न बन सकेगी इस लिये जो क्रियाके साधन हों वे इन्द्रियहैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर जो उपयोगमें कारण हों वे इन्द्रियहैं यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये॥ अतः जो सूत्रमें कहीहैं वे उपयोगमें कारण हैं और वे ही इन्द्रियें हैं॥

तेषाम्॥ अन्तर्भेद–प्रदर्शन–अर्थम्॥ आह॥ =उन(इन्द्रियों) के प्रभेद दिखानेके लिये (निम्नलिखित सूत्रमें आचार्य) कहते हैं कि

सूत्रम्—द्विविधानि=द्विविधानीन्द्रियाणिभवन्ति॥१६॥('इन्द्रिय' शब्दकीअनुवृत्तिपद्रहवांसूत्रसेली ५६

=इन्द्रियेंदोभेदवालीहैं अर्थात् पांचोंइन्द्रियोंमेंसेप्रत्येकइन्द्रियकेदोद्रव्यइन्द्रियऔरभावेन्द्रियभेदहैं

पदार्थ –इन्द्रियाणि॥ द्विविधानि॥ भवन्ति॥ =इन्द्रियेंदोभेदवाली हैं अर्थात् ... (=इससूत्रमें)'विध' शब्द प्रकारअर्थमें है। दो हैं भेद जिनके

तत्पर्य विधशब्द॥ प्रकारवाची॥ द्वौ॥ विधौ॥ येषाम्॥ ... =वे द्विविधानि हैं अर्थात् दोदो प्रकार सब इन्द्रियें हैं। ऐसा आशय है

तानि॥ द्विविधानि॥ द्विप्रकाराणि॥ इति॥ अर्थः॥ =फिर कौन दो प्रकार हैं द्रव्यइन्द्रिय और भावेन्द्रिय ऐसे हैं

कौ॥ पुनः॥ द्वौ॥ प्रकारौ॥ द्रव्येन्द्रियं॥ भावेन्द्रियम्॥ इति

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भन लब्धि । का पुनरसौ? । ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेष ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृतिंप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मन परिणाम उपयोगस्तदुभय भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् उच्यते	= भावेन्द्रिय कहीजाती है कि
	लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥
सूत्रार्थ—लब्धि–उपयोगौ भाव–इन्द्रियम्	=लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं
वृत्त्यनुवाद—लम्भनम् लब्धिः का पुनः असौ	=लाभ है (वही) लब्धि है ((प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है
ज्ञानावरण–क्षयोपशम–विशेषः	=(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्ति या प्रकाश है (सोलब्धि)है । अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेजाविशुद्धवाक्षयोशक्तिहैसोलब्धिहै
यत्सन्निधानात् आत्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृतिम् प्रति	=जिस(लब्धि)कानिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृति प्रति
व्याप्रियते तत्–निमित्तः आत्मनः परिणाम उपयोग	=व्यापारकरताहै,मतवाहै उस लब्धिनिमित्तक आत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनरूप ज्ञानहो सो उपयोग है
तद् उभयम् भावेन्द्रियम् इन्द्रिय–फलम्	=यह दोनों भाव इन्द्रिय हैं । इन्द्रियका फल या कार्य जो

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संप्रदायोंमें एक है। इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ४४ में 'उपयोगः स्पर्शादिषु' ऐसा सूत्र अधिक है॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोगः इत्यर्थः । स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै । ऐसा अर्थ इस सूत्रका है। हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है। सभाष्य०के अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं यह मूल सूत्र हा हैमाप्रनहीं॥ (२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यजगहो अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तोसुनताभहीं । और कोई आत्मा चाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों ही मिलें तब ज्ञानकीसिद्धि होती है॥

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्ति । तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु य प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेष पुद्गलप्रचय सा बाह्या निर्वृत्ति । येन निर्वृत्ते रुपकार क्रियते तदुपकरणम्॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् तत्राभ्यन्तर कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि ॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम्॥

शुद्धानाम्॥आत्मप्रदेशानाम्॥प्रति-नियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेन॥अवस्थितानां॥वृत्तिः =शुद्धचेतना वा आत्माके प्रदेशोंकी(=केवल आत्माके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे(=प्रति) निश्चितनेत्रआदिक इन्द्रियोंके आकार करि अवस्थितवृत्ति(अर्थात् तिष्ठनेकी दशा)
अभ्यन्तरा॥निर्वृत्तिः॥ =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है । अर्थात् उत्सेध अंगुलके असंख्यातवां भागप्रमाण विशुद्ध आत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियके मसूरके आकार, कर्ण इन्द्रियके जवकी नलीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अन्तरंग निर्वृत्ति है॥

तेषु॥आत्मप्रदेशेषु॥इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु॥ -तिन आत्माके(विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर
यः॥प्रतिनियत-संस्थानः॥नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत(=न्यारे न्यारे वा निश्चित)आकार सहित नामकर्मकेउदयजनित
अवस्थाविशेष॥पुद्गलप्रचयः॥सा॥बाह्या॥निर्वृत्तिः॥ =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो बहिरंग निर्वृत्ति है। अर्थात् उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्न भिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मकेउदयसे होनेवाली अवस्था विशेषसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह बाह्य-निर्वृत्ति है॥

येन॥निर्वृत्तेः॥उपकारः॥क्रियते॥तत्॥ =जिससे निर्वृत्तिका उपकार कियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह
उपकरणम्॥पूर्ववत्॥तत्॥अपि॥द्विविधम्॥ =उपकरण है। पहलेकी भांति(अर्थात् जैसे निर्वृत्ति दो प्रकारहै)वहभीदोप्रकार है
तत्र॥अभ्यन्तरम्॥कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम्॥बाह्यम्॥ =वहां(नेत्रविषैं)अंतरंग(उपकरण)काला शुक्ल(वर्ण)मंडल है। बाह्य (उपकरण)
अक्षिपत्र-पक्ष्म-द्वय आदि॥एवम्॥शेषेषु॥इन्द्रियेषु॥ज्ञेयम्॥ =पापनी(=पापणी)वा विन्नी(=पलिपत्र)और आंखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना) =दो आदिक हैं। ऐसे शेष(स्पर्शन-घ्राण रसना श्रोत्र)इन्द्रियोंमें जानना चाहिये॥

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भनं लब्धिः । का पुनरसौ? । ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रिय-निर्वृतिंप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् ॥ उच्यते ॥	= भावइन्द्रिय कहीजाती है कि
	लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥
सूत्रार्थ—लब्धि–उपयोगौ॥भाव–इन्द्रियम् ॥	=लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं
हस्तपुस्तक—लम्भनम्॥लब्धिः॥का॥पुनः॥असौ॥	=लाभ है(वही) लब्धि है ।(प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है
ज्ञानावरण–क्षयोपशम–विशेष ॥	=(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्तिका प्रकाश है (सोलब्धि)है ।
	अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेमाविशुद्धतारूपीशक्तिहैसोलब्धिहै
यत्सन्निधानात्॥आत्मा॥द्रव्येन्द्रियनिर्वृतिम्॥प्रति॥	=जिस(लब्धि)कनिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृति प्रति
व्याप्रियते तत्–निमित्तः॥आत्मनः॥परिणाम उपयोग॥	=व्यापारकरताहै,प्रवर्तैहै उस लब्धिनिमित्तक आत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै
	अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनरूप ज्ञानहो सो उपयोग है
तत्॥उभयम्॥भावेन्द्रियम्॥इन्द्रिय–फलम्॥	=यह दोनों भाव इन्द्रिय हैं । इन्द्रियका फल वा कार्य जो

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संप्रदायोंमें एक है । इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें श्वेताम्बराम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र 'पृष्ठ ७७ में 'उपयोगः स्पर्शादिषु' ऐसा सूत्र अधिक है ॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोगः इत्यर्थः । स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै । ऐसा अर्थ इस सूत्रका है । हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है । सभाष्यके अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं यह मूल सूत्र हा है भाष्य नहीं॥ (२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यत्रहो अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तो सुनसकता नहीं । और कोई आमना चाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों ही मिलैं तब ज्ञानकी सिद्धि होती है ॥

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः । तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः । येन निर्वृत्तेरुपकारः क्रियते तदुपकरणम् ॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् । तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि ॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषु ज्ञेयम् ॥

शुद्धानाम् आत्मप्रदेशानाम् प्रति- =शुद्ध चेतना या आत्माके प्रदेशोंकी (=केवल आत्माके प्रदेशोंकी) न्यारे न्यारे (=प्रति)
नियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेन अवस्थितानाम् वृत्तिः =निश्चित नेत्र आदिक इन्द्रियोंके आकार करि अवस्थित वृत्ति (अर्थात् तिष्ठनेकी दशा)
अभ्यन्तरा निर्वृत्तिः =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है । अर्थात् उत्सेध अंगुलके असंख्यातवां भागप्रमाण विशुद्ध आत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियके मसूरके आकार, कर्ण इन्द्रियके जवकी नालीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरंग निर्वृत्ति है ॥

तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु =तिन आत्माके (विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर
यः प्रतिनियत-संस्थानः नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत (=न्यारे न्यारे वा नियत) आकार सहित नामकर्मके उदय जनित
अवस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः ॥ =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो बहिरंग निर्वृत्ति है । अर्थात् उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्न भिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मके उदयसे होनेवाली अवस्था विशेषसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह बाह्य-निर्वृत्ति है ॥

येन निर्वृत्तेः उपकारः क्रियते तत् =जिससे निर्वृत्तिका उपकार कियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह
उपकरणम् पूर्ववत् तत् अपि द्विविधम् =उपकरण है। पहलेकी भांति (अर्थात् जैसे निर्वृत्ति दो प्रकार है) यह भी दो प्रकार है
तत्र अभ्यन्तरम् कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम् बाह्यम् =तहां (नेत्रविषैं) अंतरंग (उपकरण) काला शुक्ल (वर्ण) मंडल है। बाह्य (उपकरण)
अक्षिपत्र-पक्ष्म- =पापनी (=पापणी) या विन्नी (=अक्षिपत्र) और आँखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना)
द्वय आदि एवम् शेषेषु इन्द्रियेषु ज्ञेयम् । =दो आदिक है । ऐसे शेष (स्पर्शन-घ्राण रसना श्रोत्र) इन्द्रियोंमें जानना चाहिये ॥

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते। अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमीतिततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं। वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ —स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥ एतानि॥ पञ्चेन्द्रियाणि॥ भवन्ति। =स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति)। (पन्द्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र में आता है) =त्वचा(त्वक्) जीभ, नाक(नासिका), नेत्र और कान ये =पांच इन्द्रियां हैं अर्थात् ज्ञानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहते हैं

इत्यनुवादः—लोके॥ इन्द्रियाणाम्॥ पारतन्त्र्या-विवक्षा॥ =लोक या संसारमें इन्द्रियोंकी पराधीन विवक्षा या अपेक्षा

दृश्यते। अनेन॥ अक्ष्णा॥ सुष्ठु पश्यामि। =देखी जाती है। इस नेत्रसे भलेप्रकार देखता हूं॥ (अक्ष्णा॥ 'अक्षि' शब्दका है)

अनेन॥ कर्णेन॥ सुष्ठु शृणोमि। इति तत पारतन्त्र्यात्॥ =इस कानसे नीके सुनता हूं। यहां पराधीनतासे

स्पर्शनादीनां॥ करणत्वम्॥ =त्वचा(इन्द्रिय) आदिके करणपना है अर्थात् लोकमें इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये

स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतन्त्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको स्वातंत्र्य मानाजाता है उस समय 'मैं इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'। 'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनता हूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघता हूं'। 'मैं इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखता हूं'। मैं 'इस हाथ द्वारा या शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरता हूं' ऐसा व्यवहार होता है। यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावे तो संसारमें व्यवहार नहीं होसकता॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम- =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में यह सूत्र शब्दशःवही है जो हमारे यहां है अथवा एक है परंतु सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या बीसवीं है क्योंकि अठारहवां सूत्रकेपीछे सभाष्य०में 'उपयोगः स्पर्शादिषु' ऐसा उन्नीसवां सूत्र है। और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है॥

उपयोग, तस्य कथमिन्द्रियत्वम्? कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणत विज्ञान घट इति ॥ स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति य स्वार्थ स उपयोगो मुख्य। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम्॥ उक्तानामिन्द्रियाणा संज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाह —

उपयोग ॥ तस्य ॥ कथम् इन्द्रियत्वम् ॥ =उपयोग है। तिस (उपयोग)के इन्द्रियपना कैसे है

कारणधर्मस्य ॥ कार्ये ॥ दर्शनात् ॥ =(उपयोगको इन्द्रियका कार्य होनेसे) कार्यमें कारणधर्मके देखनेसे या व्यवहारसे (उपयोगके इन्द्रियपनेका उपचार किया गया) है अर्थात् जो कारणका धर्म हो तिसको कार्य विषें भी देखिये है

यथा ॥ घटाकारपरिणत ॥ विज्ञान ॥ घट ॥ इति ॥ =जैसे घटके आकार परिणम्याज्ञान घट ऐसा (कहा जाता) है

स्वार्थस्य ॥ तत्र ॥ मुख्यत्वात् ॥ च ॥ =और क्योंकि तहां स्वअर्थके प्रधानपना है अर्थात् कार्यभी जाकर्ने कारण मानागया है जिस प्रकार घटाकार परिणत ज्ञान घटसे जो समान होनसे घटका कार्य है तथापि उस विज्ञानको घट कहदिया जाता है इसी प्रकार उपयोग यद्यपि इंद्रियोंसे आयमान होनेसे उनका फल है तथापि वह(उपयोग)इन्द्रिय कहलासकता है इसलिये उपयोगको भावेन्द्रिय मानने में कोई आपत्ति नहीं

इन्द्रस्य ॥ लिङ्गम् ॥ इन्द्रियम् ॥ इति ॥ य ॥ स्वार्थ ॥ =आत्मा(=इन्द्र)का लिंग इन्द्रिय है। ऐसा जो स्व-अर्थ है

स ॥ उपयोग ॥ मुख्य ॥ उपयोगलक्षण ॥ जीव ॥ =सो उपयोग मुख्य है। उपयोग है लक्षण जिसका वह जीव है

इति ॥ वचनात् ॥ अत ॥ उपयोगस्य ॥ इन्द्रियत्वम् =क्योंकि ऐसा वचन है॥ इसलिये उपयोगके इन्द्रियपना

न्याय्यम् ॥ उक्तानाम् ॥ इन्द्रियाणाम् ॥ संज्ञा— =यथार्थ या ठीक है। कथित इन्द्रियोंके नाम (और उनका)

आनुपूर्वी(-अनुपूर्वी-)प्रतिपादनार्थम् ॥ आह ॥ =क्रम(अनुपूर्वी या आवली) कहने के लिए कहते हैं कि

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमीतिततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्व । वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

सूत्रार्थ —स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पन्द्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र में आवाहै)
=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि॥ पञ्चेन्द्रियाणि॥ एतानि॥ भवन्ति । =त्वचा(त्वक्)जीभ,नाक(नासिका),नेत्र और कान ये =पांच इन्द्रियां हैं अर्थात् ज्ञानकरानमें सहायक होनसे इनको इन्द्रिय कहते हैं

इत्यनुवाद —लोके॥ इन्द्रियाणाम्॥ पारतन्त्र्या-विवक्षा॥ =लोक या संसारमें इन्द्रियोंके पराधीन विवक्षा या अपेक्षा
दृश्यते॥ अनेन॥ अक्ष्णा॥ सुष्ठु॰पश्यामि । =देखी जाती है॥इसनेत्रस भलेप्रकार देखताहूं॥(अक्ष्णा॥'अक्षि'शब्दका है)
अनेन॥ कर्णेन॥ सुष्ठु॰शृणोमि॥ इति॰ततः॰पारतन्त्र्यात्॥ =इस कानसे नीके सुनताहूं । तहां पराधीनतासे
स्पर्शनादीनां॥ करणत्वम्॥ =त्वचा(इन्द्रिय)आदिके करणपना है अर्थात् लोकमें

स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये स्वातंत्र्य मानाजाता है उस समयमें इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'।'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनताहूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघताहूं'।'मैं इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखताहूं'। मैं'इस हाथ द्वारा या शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरताहूं'ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावै तो संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम- =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में यह सूत्र अन्यथावहीं है जो हमारे यहां है अर्थभी एक है परंतु सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या बीसवींहै क्योंकि अठारहवां सूत्रकेपीछे सभाष्य०में"उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा उन्नीसवां सूत्रहै । और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है ॥

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

द्रव्यपर्याययो प्राधान्यविवक्षाया कर्मभावसाधनत्व स्पर्शादिशब्दाना वेदितव्यम् ॥ द्रव्य-प्राधान्यविवक्षाया कर्मनिर्देश । स्पृश्यत इति स्पर्श । रस्यत इति रस । गन्ध्यत इति गन्ध । वर्ण्यत इति वर्ण । शब्द्यत इति शब्द ॥ पर्यायप्राधान्यविवक्षाया

सूत्रम्— स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्था (1) ॥ २० ॥

=स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा तद्-अर्था (यथाक्रमम्) ॥२०॥

सूत्रार्थ —स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः यथाक्रमम् =स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द (ये पांच) क्रमसे

तद्-अर्थाः =इन (पांचों इन्द्रियों)के विषय हैं अर्थात् इनमें स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श का करना है, रसना इन्द्रियका विषय स्वाद लेना है, घ्राणइन्द्रियका विषय सुगंध और दुर्गंध सूंघना है। नेत्र इन्द्रियका विषय वर्ण अर्थात् रंग है और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्दोंका सुनना है॥

टीकानुवाद —द्रव्यपर्याययोः प्राधान्यविवक्षायाम् कर्म— =द्रव्य और पर्यायकी मुख्य अपेक्षामें कर्म (साधनपना और)

भाव-साधनत्वम् स्पर्शादिशब्दानाम् वेदितव्यम् =भाव साधनपना (यथासंख्य) स्पर्शादिक शब्दोंके जानना चाहिये।

द्रव्य-प्राधान्यविवक्षायाम् कर्म-निर्देशः । स्पृश्यते =द्रव्यप्रधान विवक्षाविषैं कर्मणि प्रयोग है। जो स्पर्शा जाता है

इति स्पर्शः । रस्यते इति रसः । =ऐसा स्पर्श है। जो आस्वादा जाता है ऐसा रस है

गन्ध्यते इति गन्धः । वर्ण्यते इति वर्णः । =जो सूंघाजाता है ऐसा गंध है। जो देखा जाता है ऐसा वर्ण है

शब्द्यते इति शब्दः । पर्याय प्राधान्यविवक्षायाम् =जो सुनाजाता है ऐसा शब्द है। पर्यायकी मुख्य अपेक्षासे

---

(1) "तदर्थाः" वाक्यके स्थानमें श्वेताम्बराम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें [illegible] पाठ पाया जाता है। इससे अर्थमें कुछ भेद नहीं पड़ता [illegible] का तात्पर्य तिनके विषय है, ऐसा है। यहाँ अर्थ [illegible] है। अर्थात् क्रमसे तिन पांच इन्द्रियोंके विषय हैं॥

(2) [illegible]

भावनिर्देश , स्पर्शनं स्पर्श रसनं रस । गन्धनं गन्ध । वर्णनं वर्ण शब्दनं शब्द एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यात अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यात तत्किमुपयोगस्योपकारी उत नेति?तदप्युपकार्येव तेन विनेन्द्रियाणा विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्य भावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

भावनिर्देश ॥ =भावे प्रयोगहै अर्थात् व्याकरणमें कर्मवाच्य,कर्तृवाच्य और भाववाच्य तीनप्रकारके धातुओंके प्रयोग है । सूत्र उन्नीसवांमें बहुत विशेषकरके कर्मवचनका अनुवाद पृष्ठ६१ के पंक्ति ६से १८ तक और पृष्ठ ६२ के पंक्ति ७ से ११ तक और कर्तृवचनका पृष्ठ६२ के पंक्ति १४से १८तक और पृष्ठ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है ॥ भावसाधन,भाववचन, अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाको इसप्रकारसे वाक्यमें लाना कि जिससे उसकी भावरूपी अवस्था वा दशा प्रगट होजावे, इस पृष्ठ ६५ की पंक्ति ११,१२ नीचे में कहते हैं कि

स्पर्शनं ॥ स्पर्शः ॥ रसनं ॥ रसः ॥ =स्पर्शना वा छूना सो स्पर्श है । रसना सो रस है

गन्धनं ॥ गन्धः ॥ वर्णनं ॥ वर्णः ॥ शब्दनम् ॥ शब्दः ॥ =सूंघना सो गंध है । देखना सो वर्ण है । शब्दहाना सो शब्द है

एषाम् ॥ क्रम ॥ इन्द्रियक्रमेण ॥ एव व्याख्यात ॥ =इन(विषयों)का अनुक्रम इन्द्रियोंके क्रमकरिही कहा गया है

अत्र आह । यत् ॥ तावत् मनोऽनवस्थानात् ॥ इन्द्रियं ॥ =यहां पूछता है कि जो मन तो (=तावत्) अनवस्थित हानेसे इन्द्रिय

न भवति । =नहीं है अर्थात् मनके अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है

इतिप्रत्याख्यात ॥ तत् ॥ किम् ॥ उपयोगस्य ॥ उपकारी ॥ =ऐसे(मनके इन्द्रियपना) निषेध्या है । क्या (वह मन) उपयोगका उपकारी है

उत न इति तत् ॥ अपि उपकारी ॥ एव तेन ॥ विना =वानहीं(ओकहोकि)वहभी(=तद् अपि)(वहमन)उपकारीहीहैक्योंकिउस(मन)विना

इन्द्रियाणां ॥ विषयेषु ॥ स्वप्रयोजनवृत्ति-अभावात् ॥ =इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है

किम् अस्य ॥ एषाम् ॥ सहकारित्वमात्रम् ॥ =क्या इन(इन्द्रियों)के इस(मन)का सहकारिपन मात्र

एव प्रयोजनम् ॥ उत अन्यत् अपि इति अत आह । =ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है ॥ इसलिये कहते हैं आचार्य

स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके समान मनका कोई निश्चित स्याननहीं इसलियेवह इंद्रिय नहीं ... न्द्रियपनेका निषेध किया गया है

एक प्रथममित्यर्थ । किं तत् । स्पर्शनम् । तत्केषाम् । पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्ताना वेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

शब्दार्थ-एकम्[1] प्रथमम्[2] इति अर्थः[3] किम्[4] तत्[5]	=(सूत्रमें) एक शब्दका) पहिला, प्रथम ऐसा अभिप्राय है । वह (पहिला) क्या है ?
स्पर्शनम्[1] तत्[2] केषाम्[3] पृथिवी-आदीनाम्[4]	=स्पर्शन अर्थात् त्वचा (इन्द्रिय) है । वह (स्पर्शन इन्द्रिय) किनके है । पृथिवी आदिक
वनस्पति-अन्तानाम्[1] वेदितव्यम्[2] तस्य[3] उत्पत्ति-	=वनस्पति पर्यन्तनिके मानना चाहिये । तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिका
कारणम्[1] उच्यते[2] वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय-	=कारण कहाजाता है । वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय
आवरणक्षयोपशमे[1] सति[2] च० शेष-	=आवरणनामा (ज्ञानावरण) कर्मके क्षयोपशम होनेपर और रसना आदि अवशेष
इन्द्रिय सर्वघातिस्पर्धक-[1] उदये[2]	=इन्द्रिय सम्बन्धी (ज्ञानावरणकर्मका) सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदय (होने) पर
शरीर[1] नामलाभ-अवष्टम्भे[2] च०	=शरीर नामा नामकर्मके उदयके लाभका अवलम्बन (होने) पर और (=च)
एकेन्द्रियजातिनाम-उदय-वशवर्तितायाम्[1]	=एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्मके उदयके वशवर्तिपना वा वशीभूतपना
सत्याम्[1] स्पर्शनम्[2] एकम्[3] इन्द्रियम्[4] आविर्भवति[5]	=होनेपर (=सत्याम्) (जीवके) एक स्पर्शन इन्द्रिय प्रगट होती है ॥
इतरेषाम्[1] इन्द्रियाणाम्[2] स्वामित्व प्रदर्शन अर्थम्[3] आह	=अन्य इन्द्रियोंके स्वामीपना दिखावनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ('स्पर्शनइन्द्रिय' की अनुवृत्ति १९, १५ सूत्रोंसे है)

सूत्रार्थ-कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनाम्[1]	=लट, गिडार (=कृमि) आदिकोंके, चिंवटी आदिकोंके, भौंरा आदिकोंके, मनुष्य आदिकोंके

(१) "उदय" शब्दके आगे ऐसा जान पड़ता है कि 'सति' आवश्यक है क्योंकि इससे वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय-आवरणक्षयोपशमेसति' वाक्यका मिलान करो । (२) "शरीरनामकर्मलाभावष्टम्भे वाक्यके स्थानमें राजवार्तिकमें 'शरीराङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे' पाठ है इसलिए [illegible] शरीर व आङ्गोपाङ्ग नामा नामकर्म का लाभकी [illegible] वैसा [illegible] किया है । [illegible] 'शरीर और व अङ्गोपाङ्गनामकर्मके लाभ अवष्टम्भ' [illegible] है ।

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम् । एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

एक-एकम् १॥ वृद्धानि १॥ =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय हैं । चिवंटी इत्यादिकोंके स्पर्शन,रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रिये हैं भौंरा,मक्खिका,टीडी,इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षु ये चार इन्द्रिय हैं और, मनुष्य,मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां हैं

इत्यनुवादः—एकैकम् १॥ इति वीप्सायाम् ७॥ द्वित्वम् १॥ =एक-एक ऐसा बारबारकेअर्थमें (=वीप्सायाम्) दो बार(सूत्रमें) है

एक-एकन ३॥ वृद्धानि १॥ =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहै वा अधिक होती जातीहै

एकैकवृद्धानि १॥ स्पर्शन-अधिकारात् ५॥ =तो"एकैकवृद्धानि"है।(बाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम् २॥ आदिम् २॥ कृत्वा – स्पर्शनम् २॥ आदिम् २॥ कृत्वा =(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियोंमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक-एक वृद्धानि १॥ इति अभिसम्बन्धः १॥ क्रियते =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है । इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः १॥ प्रत्येकम् परिसमाप्यते =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकका लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सारांश यह है'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्'सूत्रसे स्पर्शन(=एकम्,की अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकर पश्चात्'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि इसमें निम्नलिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम् ६॥ स्पर्शनम् १॥ रसना(रसन) अधिकम् १॥ =कृमि आदिकके रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिकके स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण अधिके १॥ स्पर्शन-रसने १॥ =चिवंटीआदिकोंकेनासिकाकरि,अधिकस्पर्श,रसनाहै।अर्थात्स्पर्श,रसन,औरघ्राणहै

एक प्रथममित्यर्थः । किं तत् । स्पर्शनम् । तत्केषाम् । पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां वेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

शब्दानुसार – एकम् प्रथमम् इति अर्थः किम् तत् =(सूत्रमें)एक शब्दका पहिला,प्रथम ऐसा अभिप्राय है। वह(पहिला) क्या है?

स्पर्शनम् तत् केषाम् पृथिवी-आदीनाम् =स्पर्शन अर्थात् त्वचा(इन्द्रिय)है। वह(स्पर्शन इन्द्रिय)किनके है। पृथिवी आदिक

वनस्पति-अन्तानाम् वेदितव्यम् तस्य उत्पत्ति =वनस्पति पर्यन्तनिके मानना चाहिये। तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिका

कारणम् उच्यते वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय- =कारण कहाजाता है। वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय

आवरणक्षयोपशमे सति च शेष- =आवरणनामा(ज्ञानावरण)कर्मके क्षयोपशम होनेपर और रसना आदि अवशेष

इन्द्रिय सर्वघातिस्पर्धक-उदये =इन्द्रिय सम्बन्धी(ज्ञानावरणकर्मका)सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदय (होने) पर

शरीर नामलाभ-अवष्टम्भे च =शरीर नामा नामकर्मके उदयके लाभका अवलम्बन(होने)पर और(=च)

एकेन्द्रियजाति नाम-उदय-वशवर्तितायाम् =एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्मके उदयके वशवर्तिपना या वशीभूतपना

सत्याम् स्पर्शनम् एकम् इन्द्रियम् आविर्भवति =होनेपर(=सत्याम्)(जीवके) एक स्पर्शन इन्द्रिय प्रगट होती है॥

इतरेषाम् इन्द्रियाणाम् स्वामित्व-प्रदर्शन अर्थम् आह =अन्य इन्द्रियोंके स्वामीपना दिखलानेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि। ('स्पर्शनइन्द्रिय'कीअनुवृत्ति१९, १५सूत्रोंसेहै)

सूत्रार्थ–कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनाम् =लट,गिंडार(=कृमि)आदिकके,चिंवटी आदिकके,भौंरा आदिकके,मनुष्य आदिकोंके

(१) "उदये" शब्दके आगे ऐसा जान पड़ता है कि 'सति' अध्याहार है क्योंकि इससे वीर्यान्तराय–स्पर्शनेन्द्रिय–आवरणक्षयोपशमे सति" वाक्यका मिलान करो। (२) 'शरीरनामलाभावष्टम्भे' वाक्यके स्थानमें राजवार्तिक में 'शरीराङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भे' पाठ है इससे पं० जयचन्द्रजी शरीर व अंगोपांग नामा नामकर्मका लाभकी प्राप्ति होता संता ऐसा अनुवाद किया है। तथा अन्य अनुवादकोंने 'शरीर और अंगोपांगनामकर्मके लाभ रहनेपर' ऐसा अनुवाद किया है। (३) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आचार्योंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है।

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम् । एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृध्दानीत्यभिसम्बन्ध क्रियते ॥ आदिशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शन रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

इत्यनुवादः—एकैकम्॥ इति॰वीप्सायाम्॥द्वित्वम्॥=एक-एक ऐसा बारबारकेअर्थमें (=वीप्सायाम्) दो बार (सूत्रमें) है

एक-एकन॥वृद्धानि॥ =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहै या अधिक होती जातीहै

एकैकवृद्धानि॥ स्पर्शन-अधिकारात्॥ =सो''एकैकवृद्धानि''है।(चाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे या विषयहानसे

कृमिम्॥आदिम्॥कृत्वा – स्पर्शनम्॥आदिम्॥कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियोंमें)स्पर्शन का आदिकर (क्रमसे)

एक-एक वृद्धानि॥इति॰अभिसम्बन्ध॥क्रियते। =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है। इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः॥ प्रत्येकम्॰परिसमाप्यते। =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकका लगाया गया है या जोड़ागयाहै

कृमिआदीनाम्॥स्पर्शनम्॥रसना(रसन)अधिकम्॥=कृमि आदिके रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिके स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण अधिके॥स्पर्शन-रसने॥=चिउंटीआदिकोंकेनासिकाकरि,अधिकत्वचा,रसनाहै।अर्थात्त्वचा,रसन,औरघ्राणहै

=(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय हैं। चिउंटी इत्यादिकोंके स्पर्शन, रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें हैं भौंरा, मक्खिका, ततैया, इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षुः ये चार इन्द्रिये हैं और, मनुष्य, मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः आत्र ये पांचों ही इन्द्रियां हैं

इस समस्त उपर्युक्तका सारांश यह है 'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्' सूत्रसे स्पर्शन(=एकम्)कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात् 'स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुः–श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से आत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपीलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि इसमें निम्न लिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

एक प्रथममित्यर्थ । किं तत् । स्पर्शनम् । तत्केषाम् । पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्ताना वेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणा स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

अन्वयार्थः—एकम्॥ प्रथमम्॥ इति॰अर्थः॥ किम्॥ तत्॥ =(सूत्रमें)एक शब्दका) पहिला,प्रथम ऐसा अभिप्राय है । वह(पहिला) क्या है ?
स्पर्शनम्॥ तत्॥ केषाम्॥ पृथिवी-आदीनाम्॥ =स्पर्शन अर्थात् त्वचा(इन्द्रिय)है । वह(स्पर्शन इन्द्रिय)किनके है । पृथिवी आदिक
वनस्पति-अन्तानाम्॥ वेदितव्यम्॥ तस्य॥ उत्पत्ति =वनस्पति पर्यंतनिके मानना चाहिये । जिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिका
कारणम्॥ उच्यते॥ वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय- =कारण कहाजाता है । वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय
आवरणक्षयोपशमे॥ सति॥ च॰ शेष- =आवरणनामा(ज्ञानावरण)कर्मके क्षयोपशम होनेपर और रसना आदिअवशेष
इन्द्रिय सर्वघातिस्पर्धक-उदये॥ =इन्द्रिय सम्बंधी(ज्ञानावरणकर्मका)सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदय (होने) पर
शरीर[1] नामलाभ-अवष्टम्भे॥ च॰ =शरीर नामा नामकर्मके उदयके लाभका अवलम्बन(होने)पर और(=च)
एकेन्द्रियजातिनाम-उदय-वशवर्तितायाम्॥ =एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्मके उदयके वशवर्तिपना या वशीभूतपना
सत्याम्॥ स्पर्शनम्॥ एकम्॥ इन्द्रियम्॥ आविर्भवति । =होनेपर(=सत्याम्) (जीवके) एक स्पर्शन इंद्रिय प्रगट होती है ॥
इतरेषाम्॥ इन्द्रियाणाम्॥ स्वामित्व प्रदर्शन अर्थम्॥ आह=अन्य इन्द्रियोंके स्वामीपना दिखावनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ('स्पर्शनइन्द्रिय' कीअनुवृत्ति १९, १५सूत्रोंसेहै)
सूत्रार्थ—कृमि पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनाम्॥ =लट,गिडार(=कृमि)आदिकके,चिउंटीआदिकके,भौंरा आदिकके,मनुष्यआदिकोंके

(१) "उदय" शब्दके आगे ऐसा जान पडता है कि 'सति' पाठ्यपद है क्योंकि इससे वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय-आवरणक्षयोपशमसति पाठका मिलानकरा ॥ (२) 'शरीरनामलाभावष्टम्भे' पाठके स्थानमें राजवार्तिक में 'शरीरांगोपांगनामापष्टम्भे' पाठ है इससे प॰जयचन्दलालजीने शरीर अंगोपांग नामा नामकर्म का लाभकी प्राप्तिहोता संता ऐसाअनुवाद किया है। सत्यार्थ के अनुवादकोंने 'शरीर और अंगोपांगनामकर्मके नाम रहनपर' ऐसा अनुवाद किया है ॥ (३) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है ॥

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम्। एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्ध क्रियते ॥ आदिशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

एक-एकम् ॥ इद्धानि ॥ =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय हैं । चिंउटी इत्यादिकोंके स्पर्शन,रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें हैं भौंरा,मक्खिका,डाँस,इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन घ्राण-चक्षुः ये चार इन्द्रिये हैं और, मनुष्य,मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां हैं

इत्यनुवादः—एकैकम् ॥ इति वीप्सायाम् ॥ द्वित्वम् ॥ =एक-एक ऐसा बारबारके अर्थमें (=वीप्सायाम्) दो बार (सूत्रमें) है

एक-एकेन ॥ वृद्धानि ॥ =एकएक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढतीहैं वा अधिक होती जातीहैं

एकैकवृद्धानि ॥ स्पर्शन-अधिकारात् ॥ =सो "एकैकवृद्धानि" है ॥(बाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम् ॥ आदिम् ॥ कृत्वा-स्पर्शनम् ॥ आदिम् ॥ कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक-एक वृद्धानि ॥ इति अभिसम्बन्ध ॥ क्रियते =एक एक (इन्द्रिय) बढती है । इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः ॥ प्रत्येकम् परिसमाप्यते । =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकका लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सारांश यह है कि 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' सूत्रसे स्पर्शन(=एकम्,कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लाकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात् 'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि वृत्तिमें निम्न लिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम् ॥ स्पर्शनम् ॥ रसना(रसन)अधिकम् ॥ =कृमि आदिके रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै अर्थात् कृमिआदिके स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण अधिके ॥ स्पर्शन-रसने ॥ =चिउटीआदिकोंके नासिकाकरि, अधिकत्वचा, रसनाहै अर्थात् त्वचा, रसन, औरघ्राणहै

भ्रमरादीना स्पर्शनरसनघ्राणानि चक्षुरधिकानि । मनुष्यादीना तान्येव श्रोत्राधिकानीति यथासख्येनाभिसम्बन्धो व्याख्यात ॥ तेषां निष्पत्ति स्पर्शनोत्पत्त्या व्याख्याता उत्तरोत्तर-सर्वघातिस्पर्धकोदयेन ॥ एवमेतेषु ससारिषु द्विभेदेषु

भ्रमर-आदीनाम् ॥ चक्षु अधिकानि ॥ स्पर्शन-रसन- घ्राणानि ॥ मनुष्यादीनाम् ॥ श्रोत्र-अधिकानि ॥ तानि ॥ एव इति यथासंख्येन ॥ अभिसम्बन्ध ॥ व्याख्यात ॥ तेषाम् ॥ निष्पत्ति ॥ स्पर्शन-उत्पत्त्या ॥ व्याख्याता ॥ उत्तरोत्तर— सर्वघातिस्पर्धक-उदयेन ॥

=भौंरा आदिकोंके नेत्रकरि अधिक त्वचा-जीभ और =नासिका है अर्थात् स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु है। मनुष्यादिकोंके श्रोत्रकरि अधिक =वे ही (स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु) हैं। ऐसे क्रमानुसार सम्बन्ध वर्णित हुआ =तिन (रसनादिक इन्द्रियों) की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियकी उत्पत्तिके सदृश =(कर्मोंके निमित्तसे) कही गई है। (स्पर्शन, इन्द्रियसे) आगे आगे (जिन जीवोंके जो जो इन्द्रिय नहीं हैं तिनजीवोंके उन उन इन्द्रिया वरणकर्मके) =सर्वघाति स्पर्द्धकोंके उदय होनेपर (विवक्षित इन्द्रिय) नहीं है अर्थात् रसना-घ्राण-चक्षु —श्रोत्र इन्द्रियों की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियके समान है और

"तहां आगे आगे जइन्द्रिय जिनके नाहीं, तिनके तिनि इन्द्रियावरण कर्मका सर्वघाति स्पर्द्धकनिका उदय जानि लेना" व०२६५

( ) वीर्यांतराय और रसनेन्द्रिया वरण कर्मका क्षयोपशम, घ्राणादि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय शरीर और अगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं द्वीन्द्रिय जाति नामकर्मके उदय रहनेपर रसना इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और घ्राणेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम चक्षुआदि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अगोपांग नामा नामकर्मका लाभ रहने पर एवं त्रीन्द्रिय जाति नामकर्मके उदय रहने पर घ्राण इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और चक्षु इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम श्रोत्रेन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं चतुरिंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहनेपर चक्षु इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है

( ) वीर्यांतराय और श्रोत्रेंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर और पचेंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहने पर श्रोत्र इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

एवम् एतेषु ॥ संसारिषु ॥ द्वि-भेदेषु ॥

=इस प्रकार ये [illegible] ... दो भेद (संसारिया त्रसस्थावरा) मे

इन्द्रियभेदात्पञ्चविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह—

॥ सञ्ज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

मनो व्याख्यातम् । सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः । सञ्ज्ञिन इत्युच्यन्ते । पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिद्धम् ॥ ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा । सञ्ज्ञाऽपि सैवेति ॥ नैतद्युक्तम् । सञ्ज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात् ।

इन्द्रिय-भेदात् ॥ पञ्चविधेषु ॥ ये ॥ पञ्चेन्द्रियाः ॥ =(और) इन्द्रिय भेदसे पांच भेदों (२२, २३ सूत्र) में हैं ॥ ये पंचेन्द्रियजीव

तद्-भेदस्य ॥ अनुक्तस्य ॥ प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आह । =तिनके (=उन्ह) अकथित भेद के जानने के लिये (इस सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— सञ्ज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ (दोनों आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है)

सूत्रार्थः-संज्ञिन ॥ समनस्काः ॥ =जो जीव मनकरि सहित हैं(=समनस्काः)वेसंज्ञी हैं,सैनी हैं अर्थात् जिन्हें अपने हित अहितका वा गुण दोषादिका विचार हो तथा शिक्षा क्रिया आलापके ग्रहण करनेरूप संज्ञा हो उनका सञ्ज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं ॥

इत्यनुवादः-मनः ॥ व्याख्यातम् ॥ सह ॰ तेन ॥ ये ॥ =मन (इसीअध्यायके११वांसूत्रमें) वर्णन किया गया है । तिस(मन) सहित, जो

वर्तन्ते ते ॥ समनस्काः ॥ सञ्ज्ञिनः ॥ इति ॰ उच्यन्ते । =वर्तते हैं वे समनस्क हैं । सैनी इसप्रकार कहेगये हैं

पारिशेष्यात् ॥ इतरे ॥ =उन(मनसहित सैनी जीवों) से अवशेष अर्थात् संज्ञी समनस्कको छोड़कर अन्यशेष

संसारिणः ॥ प्राणिनः ॥ असञ्ज्ञिनः ॥ इति ॰ सिद्धम् ॥ =संसारीजीव असैनी हैं ऐसा सिद्धहुआ

ननु ॰ च ॰ सञ्ज्ञिन ॥ इति ॰ अनेन ॥ एव ॰ गत अर्थत्वात् ॥ =फिरि प्रश्न संज्ञी (सैनी) इस (शब्द) द्वाराही (सूत्रमें) अर्थ आजाने (केहेतु) से

समनस्काः ॥ इति ॰ विशेषणम् ॥ अनर्थकम् ॥ ='समनस्काः'(संज्ञीका) ऐसा विशेषण निष्प्रयोजन है

यतः ॰ मनस्व्यापारः ॥ हितप्राप्तिपरीक्षा ॥ =क्योंकि(यतः) मनका व्यापार हितके प्राप्तिकी परीक्षा और

अहितपरिहार-परीक्षा ॥ संज्ञा ॥ अपि ॰ सा ॥ एव ॰ इति ॰ =अहितकपरिहारकी परीक्षा(करना) है सो ही संज्ञा है अर्थात् संज्ञी के मन और बुद्धि अर्थ हैं

न ॰ एतत् ॥ युक्तम् ॥ संज्ञाशब्द अर्थ-व्यभिचारात् ॥ =(उत्तर)यह ठीक नहीं है क्योंकि संज्ञा शब्दके अनेक अर्थ होनेसे दोष आता है।

संज्ञा नामेत्युच्यते । तद्वन्त सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्ग ॥ सञ्ज्ञान सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषा प्राणिना ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्ग ॥ आहारादिविषयाभिलाष सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु

सञ्ज्ञा॥ नाम॥ इति॰उच्यते । तद्वन्त॥ सञ्ज्ञिन॥	=(जैसे) संज्ञा नाम है ऐसा कहागया है । उस (नाम) वाले संज्ञी हैं
इति॰सर्वेषाम्॥ अतिप्रसङ्ग ॥	=ऐसे समस्त(जीवों)के अति प्रसगहुआ अर्थात् संज्ञाका अर्थ नाम है किसीका। नामरूप संज्ञा जिसकै हो सो संज्ञी ऐसे कहनेसे सर्वही प्राणी नाम सहित हैं अतःमनसहित प्राणी भी संज्ञीहुये और मनरहितभी संज्ञीहुये अत'अतिप्रसगहुआ
सञ्ज्ञानम्॥ संज्ञा॥ ज्ञानम्॥ इति॰चेत्॰	=यदि(=चेत्)संज्ञान(=सम्यग्ज्ञान)संज्ञा ज्ञान हो तो
सर्वेषाम्॥ प्राणिनाम्॥ ज्ञान-आत्मकत्वात्॥ अतिप्रसङ्ग॥	=समस्तजीवोंके ज्ञानस्वरूप होनेस अतिप्रसंग (आता) है
आहार-आदि-विषय-अभिलाष॥ सञ्ज्ञा॥ इति॰चेत्॰	=यदि(=चेत्)आहार आदिक भोगोंकी(=विषय) कामना (=अभिलाष) संज्ञा है
तुल्यम्॥	=(तोभी)तुल्यहै या समान है अर्थात् तोभी वहीबात है भावार्थ तोभी अतिप्रसंग आता है क्योंकि भोगोंकी अभिलाषा तो सैनी असैनी सबही जीवोंके होती

है॥दीनोंकाभावार्थ ऐसाहै कि(१)यदि संज्ञा शब्दका अर्थ यदि'नाम'माना जायगा तो यह सैनी असैनी समस्त प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम बिना कोई भी प्राणी नहीं है। तो असैनी जीवोंको भी संज्ञी कहना पड़ेगा(२) 'सज्ञानं संज्ञा' सम्यग्ज्ञानको संज्ञा है तो वह ज्ञानभी सैनी असैनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है इसलिये असैनी जीवोंकोभी संज्ञी मानना पड़ेगा (३) यदि आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा शब्दका अर्थ माना जाय तो य चारो आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञायें भी समस्त संसारी जीवोंके विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ मानने परभी असैनी जीवोंकी व्यावृत्ति नहीं होसकी इसलिये असैनी जीवोंकी व्यावृत्तिके लिये सूत्रमें'समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है

तस्मात्॰समनस्का॥ इति॰उच्यते । एवम्॰च॰	=तिससे (सूत्रमें) समनस्का:ऐसा(पद) कहा गया है। और (=च) इस प्रकार
कृत्वा—गर्भ-अण्डज-मूर्च्छित-सुषुप्तिआदिअवस्थासु॥	=(सूत्रमेंसमनस्का:विशेषणकाग्रहण)करकेगर्भ,अंडज,मूर्च्छित,शयन,आदिकदशाओंमें

(१)अतिप्रसंग=प्रसंगका होजाना जिसका सबन्ध सूत्रकेसाथ नहीं[illegible]का सबन्धहोताहै उसे प्रसंगकहतेहैंऔरउसके विपरीत बहुअतिप्रसंगहै

हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मन सन्निधानात्सञ्ज्ञित्वमुपपन्न भवति ॥ यदि हिताहितादिविपयपरिस्पन्द प्राणिनां मन प्रणिधानपूर्वक अथाभिनवशरीरग्रहण प्रत्यागूर्णस्य विशीर्णपूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

सिद्धि सूत्र२४, २५

॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

हित–अहित–परीक्षा–अभावे अपि॰ मन –सन्निधानात्॥ सञ्ज्ञित्वम्॥ उपपन्नम्॥ भवति I =(जीवोंकी) हित अहितकी परीक्षाके अभाव होनेपर भी =मनके सद्भावसे सैनीपन सिद्ध (=उपपन्न) होता है अर्थात्

सूत्रमें यदि समनस्क शब्द न लाया जाता केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लेख होता और संज्ञी शब्दका अर्थ हित अहितकी परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो जीव गर्भ वा अंडेके भीतर हैं वा मूर्छित वा सोये हुये हैं वेभी यद्यपि मन उनके विद्यमान है हित अहित की परीक्षासे शून्य हैं इसलिये वेभी संज्ञी न कहेजावेंगे इसलिये सूत्रमें समनस्क शब्दका उल्लेख सार्थक है ॥

यदि॰हित–अहित आदि विपय–परिस्पन्द॥ प्राणिनाम्॥ मनः–प्रणिधान–पूर्वकः॥ अथ॰ अभिनव–शरीर–ग्रहणम्॥ प्रति॰ आगूर्णस्य॥ विशीर्णपूर्व मूर्तेः॥ निर्मनस्कस्य॥ यत्॥ कर्म॥ तत्॥ कुतः॰ इति॰ उच्यते I

=(प्रश्न) जो हित अहित आदिक विषयोंकी रचना वा हिलन (=परिस्पन्द) =जीवोंके मनके प्रयत्न (=प्रणिधान) निमित्तक है तो अब (=अथ) =नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उद्यमी =और प्रथम शरीरके छूट जानेसे वा अभावहो जाने से(=विशीर्ण)मनरहित(आत्माके) =नोकर्म(काआस्रव) रूप कर्म किससे(=कुतः)वा क्योंकर(=कुतः) है ऐसे प्रश्न परकहा गया है कि

सन्धार्थः–विग्रह–गतौ॥ कर्मयोगः॥

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

=नवीन शरीर (ग्रहण वा धारण करने) के लिये गमन करनेमें (=गतौ) =कार्मण(शरीर ही) योग है अर्थात् कार्मण शरीर द्वारा आत्माके प्रदेश कम्प होते हैं यह कार्मण शरीर समस्तकर्म ग्रहण करनेका बीज है और विग्रहगतिमें ...

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें — ' पाठ और ...

विग्रहो देह । विग्रहार्था गतिर्विग्रहगति ॥ अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रह व्याघात कर्मादानेऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थ । विग्रहेण गति विग्रहगति ॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूत कार्मण शरीर कर्मेत्युच्यते । योगो वाङ्मनसकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्द । कर्मणा कृतो योग कर्मयोग । विग्रहगतौ भवतीत्यर्थ ॥ तेन कर्मादान देशान्तरसंक्रमश्च भवति ॥ आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दताम्

शब्दार्थ —विग्रह॰ देह ॥ विग्रह–अर्था ॥ गति ॥ =विग्रहका अर्थ शरीर है। नवीन शरीरके लिये गमन(वह)
विग्रहगति ॥ अथवा॰विरुद्ध ग्रह ॥ विग्रह ॥ =विग्रहगति है अथवा विरुद्ध ग्रहण है सो विग्रह है अर्थात्
व्याघात ॥ कर्म आदाने ॥ अपि॰नोकर्म–पुद्गल– =व्याघात वा रोकना है। कर्मका आस्रव होनेपरभी नोकर्म पुद्गलके
आदान निरोध ॥ इति॰अर्थ ॥ विग्रहेण ॥ गति ॥ =आस्रव या ग्रहणकी रोक ऐसा आशय या अभिप्राय है। विग्रहकरि गमन
विग्रहगति ॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतम् ॥ =सो विग्रहगति है। समस्त शरीरोंका उत्पन्नकरने वाला बीजभूत
कार्मणम् ॥ शरीरम् ॥ कर्म ॥ इति॰उच्यते ॥ योग ॥ =कार्मण शरीर है सो (सूत्रमें) कर्म ऐसा कहागया है ॥ योग (वह है कि)
वाङ्मनसकायवर्गणानिमित्त ॥ =वचन मन कायके पुद्गल वर्गणा हैं निमित्त जिसका (इनवर्गणाओंके द्वारा)
आत्म–प्रदेश–परिस्पन्द ॥ –ऐसे आत्माके प्रदेशोंका चलाचलहोना है अर्थात् कायवर्गणा भाषाऔरमना वर्गणा आदिके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके अंदर जो हलनचलन होना सो योग है ॥
कर्मणा ॥ कृत ॥ योग ॥ कर्मयोग ॥ विग्रहगतौ ॥ =कार्मण शरीरसे क्रियायोग कर्मयोग है। नवीन शरीरके लिये गमनकरनेमें
भवति । इति॰अर्थ ॥ तेन ॥ कर्म–आदानम् ॥ =(कार्मण शरीर होयोग)होता है ऐसा अभिप्राय है। तिस (योग) से कर्मका ग्रहण
देशान्तर–संक्रम ॥ च॰ भवति ॥ =और देशांतरका जाना या संक्रमण होता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंके भीतर हलनचलनरूप योग विग्रहगतिमें कार्मण शरीरके द्वारा होता है उसीयोगके द्वारा विग्रहगतिमें आत्माके कर्मोंका आदान तथा मनसे रहितभी उस आत्माकी नवीन शरीर धारण करनेके लिये गति ये दोनों कार्य होते हैं ॥
आह ॥ जीव पुद्गलानाम् ॥ गतिम् ॥ आस्कन्दताम् ॥ =(शिष्य) पूछता है कि जीव पुद्गल गतिका आश्र–होनेवालोंके

देशान्तरसक्रम किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह—

॥ अनुश्रेणिगतिः ॥ २६ ॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पङ्क्ति श्रेणिरित्युच्यते । अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्ति ।

देशान्तरसक्रम ॥ किम् ॥ आकाश-प्रदेश-क्रम =देशान्तर-गमन (गति) क्या आकाशके प्रदेशोंकक्रम-
वृत्त्या ॥ भवति =वर्तनकरि होता है अर्थात् आकाशके प्रदेशोंके अनुसार श्रेणीबद्ध होता है
उत ॥ अविशेषेण ॥ इति॰ अत॰ आह =अथवा अविशेषकरि होता है इसलिये कहते हैं कि

'अनुश्रेणिगति =(आकाशप्रदेशानाम्)अनुश्रेणि (जीवानाम् पुद्गलानाम् च)गति (भवति)

सूत्रार्थ -आकाशप्रदेश अनुश्रेणि ॥ =आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप या सीधी पंक्तियें
जीवानाम् ॥ च =(मृत्युअनन्तर नवीन शरीर धारण करनके लिये) जीवोंका तथा
पुद्गलानाम् ॥ =(जब चौदहराजू शुद्ध परमाणु एक समयमें गमन करै तब ऐसे) पुद्गलोंका
गति ॥ भवति =गमन होता है ॥ (आकाशप्रदेशानुश्रेणि जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति)

वृत्त्यनुवाद—लोकमध्यात् ॥ आरभ्य—ऊर्ध्वम्॰ अधः॰ तिर्यक्॰ च॰ =लोकके बीचसे लगाय ऊपर नीचे और तिर्यक् (इधर उधर)
आकाशप्रदेशानाम् ॥ क्रमसन्निविष्टानाम् ॥ पंक्ति ॥ =आकाशके प्रदेशोंका अनुक्रमसे पंक्तिरूप अवस्थान
श्रेणि ॥ इति॰ उच्यते । अनुशब्दस्य ॥ आनुपूर्व्येण ॥ वृत्ति ॥ =ऐसी श्रेणी कहीगई है । अनुशब्दका अर्थ (=वृत्ति) यथा क्रमकरि है

(१) विग्रहका अर्थ शरीरहै । उस शरीरके लिये जो गमन कियाजाताहै वह विग्रहगति कही जाती है । जीव जिस समय दूसरा नवीन शरीर धारण करनके लिये प्रवृत्त होता है उस समय पहिले शरीरका परित्याग करिही प्रवृत्तहोता है॥ तत्त्वार्थसार श्लोक९९। योगोंकी चंचलता हुयेबिना शरीर तथयो कुछभी हीनाधिकता नहीं होनेपाती इसलिये विग्रहगतिमेंभी कोई योग होना चाहियेविग्रहगतिमें कर्मोंका ग्रहण अर्थात्कर्मबन्धकाकार्य और नवीन शरीर धारणकरनेकाकार्य ये दोकार्य होतेहैंजोकि किसीयोगकीअपेक्षा रखतेहैं।दूसरा कोईयोग वहांहो नहीं सकता इसलिये उक्त दोनों कार्योंका साधन कार्मण योगहीहै ऐसा भगवान जिनेश्वरने कहा है क्योंकेयि इसकानाम कार्मण शरीरहै उसका अवलंबनलेकर आत्मा वहां उन दोनों कार्य करता है श्लोक ९७ ॥ (२) दोनों आचार्योंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ सर्वार्थसिद्धि से आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति लीगई है इससे इससूत्रमें 'आकाशप्रदेशा' वाक्यका अध्याहार किया है ॥ जीवानाम् की अनुवृत्तिप्रथम सूत्रसे है । गतिः शब्द सूत्रमें आया है इससे पुद्गलानाम् का अध्याहार किया है जीवानाम् और पुद्गलानाम् को मिलानके लिये च समुच्चायी उपसर्गका अध्याहार किया है -

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थ ॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत् गतिग्रहणात् । यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धे । उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्ययः ॥

श्रेणे ॥ आनुपूर्व्येण ॥ अनुश्रेणि ॥ इति ॥ जीवानाम् ॥ च ॥ पुद्गलानाम् ॥ गतिः ॥ भवति ॥ इति ॥ अर्थः ॥ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है । ऐसे जीवोंकी =और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकमाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकमाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है अनुकूल भी गमन करसक्ते हैं । प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है ॥

अनधिकृतानाम् ॥ पुद्गलानाम् ॥ कथम् ॥ ग्रहणम् ॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है ॥
इति ॥ चेत् ॥ गतिग्रहणात् ॥ =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं किसूत्रमें) गतिके आदानसे ॥ यदि ॥ जीवानाम् ॥ एव ॥ गतिः ॥ इष्टा ॥ स्यात् ॥ गतिग्रहणम् ॥ अनर्थकम् ॥ =गमन इच्छितहोता तो(इससूत्रमें) गति' शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता अधिकारात् ॥ तत् ॥ सिद्धेः ॥ =क्योंकि (विग्रहगतौकर्मयोग'सूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गतिः') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणि गति 'मेंगतिशब्दनहीलाते यदिपुद्गलगमनकाआशयनहोता)
च ॥ उत्तरत्र ॥ जीवग्रहणात् ॥ =और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अग्र) आगलासूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकाग्रहणकरनेसे
पुद्गलसम्प्रत्ययः ॥ =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि

किसीकाऐ करनपर कि यहां तो जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणि गतिः' सूत्रमें कैसे आसकता है उसके उत्तरमें कहते हैं कि'विग्रहगतौ कर्मयोगः''सूत्रसे मगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषय और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस''अनुश्रेणिःगतिः''में गति शब्द लाये हैं यदि केवल जीवकी गति सही सूत्रका अभिप्राय होता तो इससूत्र''अनुश्रेणि ''इत्यादिमें लाना नहीं क्योंकि गति शब्द'विग्रहगतौ कर्मयोगः' सूत्रमें विद्यमान है उसकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आजाती ॥

५ प्रश्न नतु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च ...
तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियम...

ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः ॥ तत्रकालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भवान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गतिः॥देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः॥अधोलोकादूर्ध्वगतिः । तिर्यग्लोकादधोगतिः ऊर्ध्वा वा । तत्रानुश्रेण्येव ॥ पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव ।

और 'अविग्रहा जीवस्य' सूत्रमें यदि इस छब्बीसवें सूत्रमें केवल जीवकी गतिसे अभिप्राय होता। 'अविग्रहाः' ऐसे होता जीवस्य शब्द न होता अतः इन तीनों सूत्रोंको मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे यह फल हुआ कि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' में केवल जीव और 'अनुश्रेणि गतिः' में गति शब्दसे जीव और पुद्गल दोनोंकी गति ग्रहण की गई है यथात् 'जीवस्य' पदसे ग्रहण कराया गया २६ वां सूत्रमें दोनोंसे केवल ग्रहण अर्थात् मुक्तजीवकी ही गति या गमनसे अभिप्राय है ॥

ननु=चन्द्रादीनाम्॥ज्योतिष्काणाम्॥मेरु–प्रदक्षिणा–
काले॥विद्याधरादीनाम्॥च=विश्रेणि–
गतिः॥अपि=दृश्यते। तत्र=किम्॥अनुश्रेणि–
गतिः॥इति=उच्यते। काल=देशनियम॥अत्र=वेदितव्यः॥
तत्र=कालनियम॥तावत्=जीवानाम्॥मरणकाले॥
भवान्तर–संक्रमे॥च=मुक्तानाम्॥च=ऊर्ध्वगमनकाले॥
अनुश्रेणी॥एव=गतिः॥ देशनियमः॥ अपि
ऊर्ध्वलोकात्॥अधोलोकात्॥अधोलोकात्॥ऊर्ध्व–
गतिः॥तिर्यग्लोकात्॥अधोगतिः॥ऊर्ध्वगतिः॥वा
तत्र=अनुश्रेणी॥एव=पुद्गलानाम्॥याऽपि
लोकान्त प्रापिणी॥सा॥नियमात्॥अनुश्रेण्येव॥

=प्रश्न(=ननु) चन्द्र आदिक ज्योतिषी (देव) जिनका मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणाके
=समयमें और (=च) विद्याधर आदिकोंका आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तिके विरुद्ध
=गमन भी देखाजाता है तहां(अर्थात् इस सूत्रमें) क्योंकर श्रेणीके क्रमानुसार
=गमन ऐसा कहागया है।(उत्तर) यहां(इस सूत्रमें) कालनियम तथा देशनियम जानो ॥
=वहां कालनियम है कि समस्त (=तावत्) संसारी प्राणियोंका मृत्युसमयमें
=अन्य भवको जानेपर और मुक्तजीवोंका ऊर्ध्वगतिकालमें
=(आकाशके प्रदेशोंकी) पंक्ति रूपही गमन है। देश नियम भी है कि
=ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकको गमन, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकको
=गमन(और) तिर्यग्लोकसे अधोलोकको गमन अथवा ऊर्ध्व (गमन)
=वहां श्रेणीके अनुसारही है तथा(=च) पुद्गलोंकी जो
=लोकके अन्त प्राप्तकरनेवाली (शुद्धपरमाणु) है सो नियमसे श्रेणीके अनुकूल है

अर्थात् जब पुद्गलकी शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करती है तब यह आकाशके प्रदेशोंके पंक्तिरूपही सीधी गमन करती है अन्यथा श्रेणीरूप गमनका नियम नहीं है ॥

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थ ॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत् गतिग्रहणात् । यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धेः । उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसम्प्रत्यय ॥

श्रेणेः॥आनुपूर्व्येण॥अनुश्रेणि॥इति॥जीवानाम्॥ पुद्गलानाम्॥गति॥भवति॥इति॥अर्थः॥ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है। ऐसे जीवोंका और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनेकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकजाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकजाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है श्रेणिके अनुकूल भी गमन करसके है। प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है॥

अनधिकृतानाम्॥पुद्गलानाम्॥कथम्॥ग्रहणम्॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है॥

इति॥चेत्॥गतिग्रहणात्॥यदि॥जीवानाम्॥एव॥ =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं कि सूत्रमें) गतिके आदानसेभी प्राणियोंकाही

गतिः॥इष्टा॥स्यात्॥गतिग्रहणम्॥अनर्थकम्॥ =गमन इच्छितहोता तो(इससूत्रमें) गति'शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता

अधिकारात्॥ तत्॥ सिद्धेः॥ =क्योंकि (विग्रहगतौकर्मयोग सूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गति') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणिःगतिः'मेंगतिशब्दलाते यदिपुद्गलगमनकाआशयनहोता)

च॥उत्तरत्र॥जीवग्रहणात्॥ पुद्गलसम्प्रत्यय ॥ और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अत्र) आगलेसूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकाग्रहणकरनेसे =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि

किसीकातर्क करनेपर कि यहां तो जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणि गतिः' सूत्रमें कम आसकता है उसके उत्तरमें कहते हैं कि'विग्रहगतौ कर्मयोगः'सूत्रसे प्रगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषयहै और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस"अनुश्रेणिःगतिः"में गतिशब्द लाये हैं यदि केवल जीवकी गति सेही सम्बन्ध अभिप्राय होता ऐसा यहसूत्र"अनुश्रेणि"इतनाहीहोता क्योंकि गति शब्द विग्रहगतौ कर्मयोग... हैं उसकी अनुवृत्ति ...

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि कचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धे ॥ यथसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिवन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गति किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥ कचित्॰ विश्रेणि- =(उत्तर) पहिले(छब्बीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगति) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध
गतिः॥अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थंइदम्॥वचन=(जीवऔर पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है
ननु॰तत्र॰एव॰देशकालनियमः॥उक्तः॥ =प्रश्न वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है
अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण या प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥

किम्॥ न॰ ? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहा कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया)
अतः॰तत् सिद्धेः॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम'अनुश्रेणिगतिः''सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा यहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥,
"किम् " निंदा या तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

रहि॰असङ्गस्य॥आत्मनः॥अप्रतिबन्धेन॥गतिः॥=परिग्रह रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन
आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥प्रतिज्ञायत T =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवानगति प्रतिज्ञारूप करिये है या लोकके अन्ततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो
पुन॰सदेहस्य॥गतिः॥"किम्॥" प्रतिबन्धिनी॥=फिर(=पुन) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित या मोड़ासहित है
उत॰मुक्त-आत्मवत्॰इति॰अत॰आह T =या (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः ॥ कस्य? । जीवस्य ॥ कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः । नार्थोऽनेन ।

इतरा॥गतिः॥भजनीया॥ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है

पुनः॰अपि॰गति–विशेष प्रतिपत्ति अर्थम्॥आह । =फिरभी गमनके भेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गति) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः–अविग्रहा॥गतिः॥मुक्तजीवस्य॥भवति । =वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माका होता है अर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधा सात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

इत्यनुवाद -विग्रहः॥व्याघातः॥कौटिल्यम्॥इति॰=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता वा कुटिलता ऐसा अर्थ॥सः॥यस्याम्॥न॰विद्यते । असौ॥अविग्रहा॥=अर्थमें है । वह (विग्रह या वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह गतिः॥कस्य॥? जीवस्य॥ =गमन है । (वह मोड़ारहित गति) किसकी है? ।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है कीदृशस्य॥मुक्तस्य॥ कथम्॰गम्यते । मुक्तस्य॥इति॰ =किस प्रकारके(जीव)की है । मोक्षजीवकी है मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय? उत्तरसूत्रे॥संसारिन् ग्रहणात्॥ इह॰ =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहण करनेसे यहां (इस सूत्रमें) मुक्तस्य॥इति॰विज्ञायते । ननु॰च॰अनुश्रेणि॥गतिः॥=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य प्रश्न ‘अनुश्रेणिगतिः’ इति॰अनेन॥एव॰श्रेणि–अन्तर-संक्रम-अभावः॥ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव व्याख्यातः॥न॰अर्थः॥अनेन॥ =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(=अनेन) प्रयोजन नहीं है अर्थात् इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल वा अभिप्राय रहित है क्योंकि ‘अनुश्रेणिगतिः इस छब्बीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुसार मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे निश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धे ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गति किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥ क्वचित्॰ विश्रेणि- गति ॥ अपि अस्ति इति ज्ञापन अर्थ इदम्॥ वचनं=(जीव और पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचित करनेके लिये यह सूत्र है

=(उत्तर) पहिले(छब्बीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध

ननु॰तत्र॰एव॰देश काल नियम॥उक्त॥ =परन्तु वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण किया है और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः'अविग्रहा जीवस्य' इस सूत्रका निर्माण या प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥

किम्॥ न॰? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहा कहागया अर्थात्) नहीं (कहागया)

अत॰तत् सिद्धः॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धि का (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम' अनुश्रेणिगतिः"सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा यहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धि है।, "किम् " निंदा या तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि॰असङ्गस्य॥आत्मन ॥अप्रतिबन्धेन॥गतिः॥=परिकर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥प्रतिज्ञायते ॥ =लोकके अन्त तक(=आ) एकसमयमात्र कालवानगति प्रतिज्ञारूप करिये है या लोकके अन्ततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो

पुन॰सदेहस्य॥गति ॥"किम्॥ प्रतिबन्धिनी॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित या मोड़ासहित है उत॰मुक्त-आत्मवत्॰इति॰अतः॰आह॥ =या (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

इतरा गतिर्भंजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? । जीवस्य ॥ कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।

इतरा॥गति॥भजनीया॥ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है
पुन॰अपि॰गति–विशेष प्रतिपत्ति अर्थम्॥आह। =फिरभी गमनके भेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गति) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थ:–अविग्रहा॥गति॥मुक्तजीवस्य॥भवति। =वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माका होता है अर्थात् मुक्तजीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

शब्दानुवाद -विग्रह:॥व्याघात:॥कौटिल्यम्॥इति॥ =विग्रह है सो व्याघात, वक्रता या कुटिलता ऐसा
अर्थ॥स॥यस्याम्॥न॰विद्यते।असौ॥अविग्रहा॥ =अर्थमें है । वह (विग्रह या वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह
गति॥कस्य॥?जीवस्य॥ =गमन है । (वह मोड़ारहित गति) किसकी है? ।(वह वक्रतारहित गति) जीवकी है
कीदृशस्य॥मुक्तस्य॥ कथ॰गम्यते।मुक्तस्य॥इति॰ =किस प्रकारके(जीव)की है । मोक्षजीवकी ही मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?
उत्तरसूत्रे॥संसारिन् ग्रहणात्॥ इह॰ =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनेसे यहां (इस सूत्रमें)
मुक्तस्य॥इति॰विज्ञायते।ननु॰च॰अनुश्रेणि॥गति:=मुक्तजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगति:'
इति॰अनेन॥एव॰श्रेणि–अन्तर-संक्रम-अभाव:॥ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव
व्याख्यात:॥न॰अर्थ:॥ अनेन॥ =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(॰अनन) प्रयोजन नहीं है अर्थात्
इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल या अभिप्राय रहित है क्योंकि
'अनुश्रेणिगति:'इस छब्बीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुक्रम मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धे ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥ क्वचित्० विश्रेणि-गतिः॥ अपि अस्ति इति ज्ञापनार्थम् इदम्॥ वचनं॥ ननु० तत्र० एव० देशकालनियमः॥ उक्तः॥ किम्॥ न०? अत० तत् सिद्धः॥ यदि० असङ्गस्य॥ आत्मनः॥ अप्रतिबन्धेन॥ गतिः॥ आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥ प्रतिज्ञायते॥ पुन० सदेहस्य॥ गतिः॥ किम्॥ प्रतिबन्धिनी॥ उत० मुक्त-आत्मवत्० इति० अत० आह॥

=(उत्तर) पहिले(छब्बीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध वचन=(मोक्ष और मुक्तजीवोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है =प्रश्न यहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः 'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण या प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥ =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम नहीं कहागया अर्थात्) नहीं (कहागया) =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम'अनुश्रेणिगतिः''सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा यहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम् " निंदा या तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है =यदि कर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालयानुगति प्रतिज्ञारूप करिये है या लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो =फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित या मोड़ासहित है =या (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? । जीवस्य ॥ कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे ससारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसक्रमाभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।

इतरा॥गतिः॥भजनीया॥ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है
पुनः॰अपि॰गति-विशेष प्रतिपत्ति अर्थम्॥आह I=फिरभी गमनके भेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गति) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः-अविग्रहा॥गतिः॥मुक्तजीवस्य॥भवति I=वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माका होता है अर्थात् मुक्तजीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

शब्दानुवादः-विग्रहः॥व्याघातः॥कौटिल्यम्॥इति॰=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता या कुटिलता ऐसा
अर्थ॥सः॥यस्याम्॥न॰विद्यते I असौ॥अविग्रहा॥=अर्थमें है । वह (विग्रह या वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह
गतिः॥कस्य॥ ? जीवस्य ॥ =गमन है । (वह मोड़ारहित गति) किसकी है? ।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है
कीदृशस्य॥मुक्तस्य॥ कथं॰गम्यते I मुक्तस्य॥ इति॰ =किस प्रकारके(जीव)की है । मोक्षजीवकी ही मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?
उत्तरसूत्रे॥संसारिन् ग्रहणात्॥ इह॰ =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनसे यहां (इस सूत्रमें)
मुक्तस्य॥इति॰विज्ञायते I ननु॰च॰अनुश्रेणि॥गतिः॥=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है ॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगतिः'
इति॰अनेन॥एव॰श्रेणि-अन्तर-संक्रम-अभावः॥ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव
व्याख्यात॥न॰अर्थः॥ अनेन॥ =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(=अनन) प्रयोजन नहीं है अर्थात्
इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल या अभिप्राय रहित है क्योंकि
अनुश्रेणिगतिः इस छब्बीसवां सूत्रसेही श्रेणीके अनुसार मुक्तजीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे निश्रेणिगातिरपि कचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धे ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गति किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥ कचित्॰ विश्रेणि-गति ॥ अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थम् इदम् ॥ वचनं ॥ ननु॰तत्र॰एव॰देशकालनियमाः॥उक्त॥ किम् ॥ न॰? अत॰तत् सिद्धः॥

=(ऊपर) पहिले(अभीसबा)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परन्तु कहीं श्रेणीके विरुद्ध गमन यहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही देश तथा कालका नियम कहा गया है अर्थात् 'अनुश्रेणिगतिः' सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण किया है और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति 'अनुश्रेणिगतिः' सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः 'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण वा प्रतिपादन निरर्थक ही है ॥ =(ऊपर)क्या ? (विकल्प सूत्रमें देश,कालका नियम कहा कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया) =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धि ता (परसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम 'अनुश्रेणिगतिः' सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु 'अविग्रहा जीवस्य' इसी सूत्रके द्वारा यहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम्" निंदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि॰असङ्गस्य॥आत्मन ॥अप्रतिबन्धेन॥गति ॥=परिग्रहसे रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकरि रहित गमन आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥प्रतिज्ञायते । =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवान्गति प्रतिज्ञारूप करिये है वा लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप सिद्धित (=प्रतिज्ञायते) है तो पुन ॰सदेहस्य॥गति ॥किम्॥ प्रतिबन्धिनी॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित वा मोड़ासहित है उत॰मुक्त-आत्मवत्॰इति॰अत ॰आह ॥ =वा (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यमित्यर्थ । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ॥ कस्य? । जीवस्य ॥ कीदृशस्य? । मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति? । उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यात । नार्थोऽनेन ।

शरीरंगति भजनीया॥

उसी प्रकार मिसगतिमें तीन मार्टेलेनेपड़ रह गो मूत्रिकागति है, और उसके हानेमें चार समय लगते है । चारोंगतियोंमें पहिली

और नियकरत है कि अद्धुर्गतिमें ससारी जीव आहारक वना रह सकता है ॥ टाडुमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे निम्न लेरा है ॥
"आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है । सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण
आहारकका काल है। इहां प्रश्न जो मरण तो आयु पूरी भए पीछैं होय ही होय तहां अनाहार होय इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका
समाधान-जो मरण भए जिस जीवके वक्ररूप विग्रहगति न होय सुधी एक समयरूप गति होय ताकै अनाहारकपणा न होई आहारकपणा ही रहैहै
तातैं आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनेकरि कह्या है । बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना
भाग क्षुद्रभव विषैं विग्रहगतिके समय घटाय इतना काल हो है बहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक
समय जानना अन्य विग्रहगति विषैं इतने काल पर्यन्त नो कर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है क्योंकि टोडरमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७० ॥'
( )इस अट्ठाईसवां सूत्रमें च शब्दःसमुच्चयार्थ। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति' (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति इसी सूत्रके नीचे देखो)=च शब्द समुच्चय वा समूहके
लिये है ।(संसारी जीवकीगति क्योंकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल संसारी जीवोंसे संबन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है)
( ) तहां इषुगति तो विग्रहरहितहै । ताका दृष्टांत जैसे इषु कहिये तीर वाणे सो सूधा ठिकाणें पहुंचे तैसे इषुगतिहै। याका काल एक समय ही है
सासंसारीनिकैं भी होई बहुरि मुक्तजीवकैं भी हो है। बहुरि पाणिमुक्तादिकैं एक मोड़ा होई त्याका काल दोय समयहै, जयचंद्रजीकृत वचनिकापृष्ठ२७८
( ) 'च शब्दःसमुच्चयार्थः-॥ २ ॥ च शब्द उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा कुटिला विग्रहवती" तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७ ॥ इस अट्ठाईसवां
सूत्रमें चशब्द समुच्चय के लिये है अर्थात् चकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति ये हैं
तनके समुच्चयके लियेहै आचार्य इस अट्ठाईसवा सूत्रमें जो केवल संसारी जीवोंके कथनमेंहै सयगति(विग्रहागति और अविग्रहगति)कामदस्के अय च' है।
( ) 'आसां चतसृणां गतीनामार्षकाः संज्ञाः इषुगतिःपाणिमुक्ता=ये आर्षीक चारगतियोंके नाम हैं कि इषुगति पाणिमुक्तागति
लांगलिका गोमूत्रिका च इति । तत्राविग्रहा प्राथमिकी =लांगलिकागति और गोमूत्रिकागति ऐसेहैं।तहांप्रथमकीइषुगति जोहै सोतो अविग्रहागतिहै
अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो बाण तिसके समान सरलहै सीधीगति है

शेषा विग्रहवत्यः =अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति लांगलिकागति गोमूत्रिकागति)विग्रहवानहैं मोड़ासहितहैं

इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिरिव इषुगतिः) क उपमार्थः? =तिसमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै । यहां उपमाअर्थ क्या है ॥
यथेषोगतिरालक्ष्यदेशादृज्वी,तथाससारिणांसिध्यतांचजीवानां=जैसे बाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यन्त सरल है तैसे संसारिनिकें तथा सिद्धहुये जीवनिकें
ऋजुगतिरेकसमयिकी तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ९७ =सरलगतिहै सो एक समयकीहै आचार्य जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक वाणकीगति

॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८॥

विग्रहवती च संसारिण प्राक्चतुर्भ्य ॥ २८ ॥

-विग्रहवती(गति) अविग्रहा गति.(=च) संसारिण प्राक्-चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ -विग्रहवती॥गति॥अविग्रहा॥गति॥च =मोड़ेरूपगति या विग्रहसहित गमन और विग्रहरहित गमन भी (=च) संसारिण॥ प्राक्चतुर्भ्य॥ =संसारी जीवका चार समयस पहिले २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें सीधीगति, एक मोड़ावालीगति दो मोड़ावालीगति, तीन मोड़ावालीगति ऐसे ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति, और गामूत्रिका गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोंगतियोंमें इषुगति मोड़ारहित है और शेष गतियां मोड़ासहित हैं॥ इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने लक्ष्य स्थानतक बाणकी गति सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जा मोड़ारहित सीधीगति होती है उसको इषुगति कहते हैं। इस इषुगति विषैं एक समय लगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हाजाते हैं॥ इसलिये इषुगतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं होवाहै।जिस प्रकार हाथसे तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोड़ालेकर होती है। उसी प्रकार संसारी जीवकी जो गति एक मोड़ालेकर हो वह पाणिमुक्तागति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( ) जिस प्रकार लांगल हलमें दो जगह मोड़रहती है उसी प्रकार जिस गतिमें दो मोड़ेलेनेपड़े उसे लांगलिकागति कहते हैं। और उसके हानेमें तीन समय लगते हैं॥ ( ) तथा जिस प्रकार गौके मूत्रमें बहुत मोड़ेरहते हैं

(१) विग्रहवती=मोड़ेरूप मोड़ावाली मोड़ेसहित वक्रतासहित विग्रहसहित कुटिलगति (२) दोनों आचार्योंमें इससुत्र का पाठ औरअर्थएकसा है (३) प्रथम आवश्यक है यह उपपादशयनमें आनेके लिये संसारी जीवों की सीधी भी गति होती है और मोड़ेवाली कुटिलगति भी होती है इस प्रकार दोनों भांतिकी गतियोंके समुच्चय के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी अविग्रहगति भी होती है और विग्रहगति भी होतीहैपरंतु मुक्तजीवकी केवल अविग्रहगति होती है और एक समयाविग्रहा' सूत्रके अनुकूल इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी और संसारी जीवकाभी संसारीजीवअविग्रह गति में (अर्थात् सीधीगति इषुगतिमें)एकही समयमें शरीर त्यागकर जन्म लेलेताहैऔर ऐसी अवस्था में अनाहारक नहीं होता आहारक बना रहता है॥ बहुतस महाशयों की ऐसा कि इसका अनुभव है यह धारणा है कि संसारीजीव जन्म लेनेमें अवश्यही एक या दो या तीनसमय तक अनाहारक रहते ही भोजनाआहारका सूत्रके अनुकूल रहता ही है [illegible] संसारी जीव उनकी धारणाके अनुसार एसा नहींहैजा अनाहारक न होनाहो विग्रहगतिमे आहारकही बना रहनाहो [illegible]

उसी प्रकार मिश्रगतिमें तीन मोड़लेनेपड़े यह गो मूत्रिकागति है, और इसके होनेमें चार समय लगते है। चारोंगतियोंमें पहिली

और निश्चयरूप है कि चतुर्गतिमें संसारी जीव आहारक बना रह सकता है॥ दोड़शमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे मिल लेख है॥ आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है। यहां प्रश्न जो मरण तो आयु पूरी भये पीछें होय ही हाय तहां अनाहार होय यहां आहारका काल इतना कैसे कह्या? ताका समाधान-जो मरण भए जिस जीवके वक्ररूप विग्रहगति न होय सूधी एक समयरूप गति होय तार्कै अनाहारकपणा न होहि आहारकपणा ही रहैहै तातें आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनेकरि कह्या है। बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना बहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषै उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जाते विग्रहगति विषे इतने काल पर्यन्त ही नो कम वर्गणानिका ग्रहण न हो है टोडरमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७० ॥

( )इन अट्ठाईसवां सूत्रमें च शब्दसमुच्चयाय। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति' (सर्वार्थसिद्धि इसी सूत्रके नीचे देखो) = अर्थात् समुच्चय या समूहके लिये है।(संसारी जीवकीगति क्योंकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल संसारी जीवोंसे संबन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है॥

( ) तहां इषुगति तो विग्रहरहितहै। ताका दृष्टान्त जैसे इषु कहिये तीर ताकी जो सूधा निशानें पहुचे तैसे इषुगतिहै॥ याका काल एक समय ही है सो संसारीनिकें भी होहि बहुरि मुक्तजीवकें भी हो है॥ बहुरि पाणिमुक्ताविषै एक मोड़ा होहै याका काल दोय समयहै जयचंदजीकृत वचनिकापृष्ठ२७८

( ) "चशब्दःसमुच्चयार्थः॥ २॥ अथवा उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा कुटिला विग्रहवती' तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ८७॥ इस अट्ठाईसवां सूत्रमें चशब्द समुच्चय के लिये है अर्थात् उपकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति ये है तिनके समुच्चयके लियेहै भावार्थ इस अट्ठाईसवां सूत्रमें जो केवल संसारी जीवोंके कथनमेंहैसर्वगति(विग्रहागति और अविग्रहगति,कामइसके अर्थ "च"है॥

( )"चार्थो मतसूर्य। गतीनामार्षेकासंज्ञा इषुगति पाणिमुक्ता = ये आर्षोक्त चारगतियोंके नाम है कि इषुगति पाणिमुक्तागति

लांगलिका गोमूत्रिका च इति। तत्राविग्रहा प्राथमिकी = लांगलिकागति और गोमूत्रिकागति ऐसेहैंतहांप्रथमजोइषुगति जोहैसोतोअविग्रहागतिहै अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो बाण तिसके समान सरलहैसीधीगति है ऋजुगतिहैऔर

शेषा विग्रहवत्यः = अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति लांगलिकागति गोमूत्रिकागति)विग्रहवामहैमोड़ासहितहै

इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिरिव इषुगतिः) क उपमार्थः? = तिसमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै। यहां उपमाअर्थ क्या है॥

यथाशेषगतिरालक्ष्यदेशागाज्वी,तथासंसारिणांसिध्यतांचजीवानां = जैसे बाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यंत सरल है तैसे संसारिनिके तथा सिद्ध हुये जीवनिके

ऋजुगतिरेकसमयिकी" तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ८७ = सरलगतिहै सो एक समयकीहै भावार्थ जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक बाणकीगति

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागितिवचनं मर्यादार्थं, चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति ॥ कुत इति चेत्-सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे उत्पित्सु प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात् ॥

इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परन्तु शेष गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

इत्यनुवाद—काल-अवधारण-अर्थं प्राक्-चतुर्भ्यः इति =कालके निश्चय करने के लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)
उच्यते। प्राक् इति वचनम् मर्यादा-अर्थम् =कहा गया है। प्राक् ऐसा वाक्य सीमा के लिये है
चतुर्थात् समयात् प्राक् विग्रहवती गतिः भवति =चौथे समयसे पहिले विग्रह गति होती है
न चतुर्थे इति। कुतः इति चेत् =चौथे (समय) विषें (विग्रह कहिये मोड़ा) नहीं है। ऐसा क्योंकर होता है ?
सर्वोत्कृष्ट-विग्रह-निमित्त-निष्कुट क्षेत्रे उत्पित्सु =(उत्तर) सर्वोत्कृष्ट विग्रह है कारण जिसको ऐसे निष्कुट क्षेत्रमें उपजनेवाला
प्राणी निष्कुट-क्षेत्र-आनुपूर्वी-अनुश्रेणि अभावात् =जीव निष्कुट क्षेत्र (=लोकका अग्रकोण) आनुपूर्वी सहित अनुश्रेणीके नहोनेसे
इषुगति-अभावे निष्कुटक्षेत्र प्रापण-निमित्ताम् =बाणगति या सीधीगतिके अभाव होने पर निष्कुट क्षेत्र में पहुंचनेके लिये
त्रि-विग्रहाम् गतिम् आरभते न ऊर्ध्वाम् =तीन मोड़ेवाली गतिको आरम्भेहै न कि अधिक (मोड़ेवाली गति)को (आरम्भेहै)
तथाविध—उपपादक्षेत्र—अभावात् =क्योंकि इसप्रकारसे (=तथाविध) उपजनेका क्षेत्र विद्यमान नहीं है अर्थात् निष्कुट क्षेत्रके उपरांत कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें जीव तीन मोड़से अधिकवाले उपजे

न भी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ा रहित सीधी गति है होती है उसे इषुगति या बाणगति कहते हैं इस इषुगतिमें एक समय लगता है अर्थात् एक ही समय में शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हो जाते हैं। इसीलिये इषु गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु अवशेष तीन गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

( ) यही बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है। अविग्रह गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं रहता है श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३३३ ३३४स और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके ३०वां सूत्रके इनवाक्योंसे ["कथम् [illegible] कार्मणशरीर सद्भाव उपपाद [illegible] आहारक। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः =कर्म [illegible] ग्रहण लगातार ही है कार्मण शरीरकी विद्यमानतामें उपजनके [illegible] आहाररहितगमन (=ऋजुगति) में जीव आहारक है अन्य तीन समयोंमें (जिनमें एक मोड़ा दो मोड़ा या तीन मोड़े लिये हुए हैं) जीव अनाहारक है] स्पष्ट है कि ऋजुगति वाला संसारी जीव [illegible] में भी आहारक है ॥

चशब्द समुच्चयार्थ । विगूहवती चाविगूहवती चेति ॥ विगूहवत्या गते कालोऽवधृत । अविगूहाया कियान् काल इत्युच्यते—

॥एकसमयाऽविग्रहा॥२९॥

एक समयो यस्या सा एकसमया । न विद्यते विगूहो यस्याः सा अविगृहा ॥ गतिमतां हि जीवपुद्गलानामव्याघतेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

च०शब्द ॥ समुच्चय-अर्थ ॥ =(इस सूत्रमें) चकार समुदय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी(गति)
विग्रहवती ॥ च०अविग्रहवती ॥ च० इति० =विग्रह सहित भी (=च) है विग्रह रहित भी इस प्रकार है
विग्रहवत्या ॥ गते ॥ कालः ॥ अवधृतः ॥ =विग्रहवाले (जीव) निका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया
अविग्रहाया ॥ =विग्रहरहित(जीव) निका(अर्थात् उन संसारी जीवोंका जो विग्रहगतिमें ऋजुगति धारण करते हैंएक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में जन्म धारण करलेते हैंऔरविग्रहगतिमें भी अनाहारक नहीं होते आहारक ही बने रहतेहैंऔर मुक्तजीवोंकाजो सीधेमोक्षकोपधारतेह

कियान् ॥ काल ॥ इति ० उच्यते ॥ =कया काल है इस प्रकार(प्रश्न होने पर)कहा जाता है कि

एकैसमयाऽविगूहा ॥ २९ ॥ =एक समयाऽविगृहा (गति भवति) ॥ २९ ॥

शब्दार्थ –एकसमया ॥ अविग्रहा ॥ गति ॥ भवति । =एक समय है काल जिसका एसी मोड़ारहित गति,ऋजुगति वा इषुगति है अर्थात् मोड़ा रहित गति एक समय मात्र ही होती है। मोड़ा रहित गति लोक के अग्रभाग पर्यंत भी एक ही समय में निष्पन्न हो जाती है।

इ.पर्थ –एक ॥ समय ॥ यस्या ॥ सा ॥ एकसमया ॥ न=एक है समय जिसका सो एक समया है। नहीं है
विद्यते विग्रहः ॥ यस्या ॥ सा ॥ अविग्रहा ॥ =विद्यमान वा वर्तमान विग्रह जिसके सो अविग्रह है
गतिमताम् ॥ हि ॥ जीव–पुद्गलानाम् ॥ अव्याघातेन ॥ =गतिवान (=गतिसहित) ही जीव और पुद्गलोंको विग्रह शून्य वा अविग्रहकरि
एकसमयिकी ॥ गति ॥ आ-लोकअन्तात् ॥ अपि० इति =एक समय मात्र गमन उसकी अपेक्षा से लोक पर्यंत भी है

१ २९का श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें एक समयोऽविग्रहः =विगह रहित गति एक ही समयमें होती है। दोनों आम्नायोंमें एकमयंहै

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्याददानो विग्रहगतावप्याहारक प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादि प्रत्यय-वशात् कर्माणि आददानः विग्रहगतौ अपि =अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय) =वश (यह जीव) कर्मोंका ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी

आहारक प्रसक्तः ततः नियमार्थं इदम् उच्यते =आहारक(का)प्रसंग आता है जिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि

"एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः"[1] =जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारक भवति

सूत्रार्थः—जीवः विग्रहगतौ एकम् द्वौ त्रीन् वा समयान् अनाहारकः भवति =जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय =दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजे है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करता है और उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेता है अनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूजेसमय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर प्राप्तिको ग्रहण करके आहारक होजाता है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थ० में "एक द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे "त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां —एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। अब दोनों सम्प्रदायका विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोक्त तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो 'विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः' और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो ॥

(२) प्रश्न—एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है यहां पर आहार क्रियाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है वहां पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये 'एक द्वौ त्रीन्' यहांपर 'एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये? (देखो सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६ पाणिनीय अष्टाध्यायी = अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होती है) आधारो अधिकरणं १।४।४५ । अधिकरणका अर्थ आधार है। [illegible]

अधिकारात्समयाभिसम्बन्ध । वाशब्दो विकल्पार्थ । विकल्पश्च यथेच्छातिसर्ग ॥ एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थ ॥ त्रयाणां शरीराणां पण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहण- माहार । तदभावादनाहारक ॥ कर्मादान हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे ॥ उपपादक्षेत्र प्रति ऋज्व्या गतौ आहारक । इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारक ॥ एव गच्छतो

इत्यनुसार अधिकारात् समय-अभिसम्बन्धः वाशब्दः विकल्प अर्थः विकल्पः च यथा इच्छा- अतिसर्गः ।

एकम् वा द्वौ वा त्रीन् वा समयान् अनाहारकः भवति । इति अर्थः । त्रयाणाम् शरीराणाम् षण्णाम् पर्याप्तीनाम् योग्य पुद्गल-ग्रहणम् आहारः तद् अभावात् अनाहारकः । कर्म आदानम् हि निरन्तरम् । कार्मणशरीरसद्भावे उपपादक्षेत्रम् प्रति ऋज्व्याम् गतौ आहारकः इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः । एवम् गच्छतः ।

=प्रकरण(वश)से (इससूत्रमें) समयका संबंध है । (सूत्रमें) वा शब्द
=विकल्पके लिये है । और(=च) विकल्प है सो इच्छानुकूल (चलना) है
=(उक्त विकल्प है सोही) अतिसर्ग है (=जो चाहा सो करे)
=एकको अथवा दोको अथवा तीन समयको (जीव)
=अनाहारक होता है ऐसा आशय है । तीन (औदारिक वैक्रियिक आहारक)
=शरीर,छह(आहार शरीर इन्द्रियश्वासोच्छ्वास-भाषा-मन)पर्याप्तीके
=योग्य पुद्गल(वर्गणाओं) का आदान सो आहार है उसके विद्यमान न होनेसे
=अनाहारक है । कर्मवर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है ।
=कार्मणशरीरके रहनेपर उपजनेके क्षेत्रकी ओर
=मोड़ारहितगमन(=ऋजुगति)में(जीव)आहारक है । अन्य तीन
=समयोंमें(जीव) अर्थात् एक विग्रहगतिमें, दो विग्रहगतिमें,तीन विग्रहगतिमें
=(नोकर्मकी अपेक्षा) अनाहारक है । ऐसे (भवान्तरप्रति) गमन करतेहुये जीवको

अत्यन्त समागमकी विवक्षा है अर्थात् एक समय दो समय तीन समयोंमें अखंडरूपसे अनाहारक रहता है किसी एक खंडमें नहीं यह यहां पर विवक्षा है तथा यह नियम है कि जहांपर कालकृत अत्यन्त संयोग रहता है वहांपर अधिकरण अर्थके विद्यमान होते संतेभी सप्तमी विभक्तिकी बाधक द्वितीया विभक्ति ही होती है इसलिये सूत्रमें एकं द्वौ त्रीन् द्वितीया विभक्तियोंका प्रयोग ही ठीक है ॥ द्वितीया विभक्तिका प्रमाण यह है कि अष्टाध्यायी२ ३-५ कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे(द्वितीया,अत्यन्त संयोग गम्यमानहो तौ काल और अध्ववाची(मार्गवाची) शब्दोंमें द्वितीया विभक्ति हो॥ मासमधीत(=मासम् अधीत)=अखंडरूपसे मासभर पढ़ता है । यहां मासके स्थानमें मासम् द्वितीया विभक्ति लाये हैं । मासस्य द्विरधीते=मासमें दोवार पढ़ता है क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः=कोशके एक भागमें पर्वत है यहां दोनोंउदाहरणोंमें अत्यन्त संयोग नहीं है

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्याददानो विग्रहगतावप्याहारक प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ॥मिथ्यादर्शनादि प्रत्यय- =अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय)
वशात्॥ कर्माणि॥ आददानः॥ विग्रहगतौ॥ अपि॥ =वशसे (यह जीव) कर्मोंको ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी
आहारकः॥ प्रसक्तः॥ ततः॥ नियमार्थम्॥ इदम्॥ उच्यते। =आहारक(का)प्रसंग आता है तिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जावा है कि

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः =जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारक भवति

सूत्रार्थः—जीव॥ विग्रहगतौ॥ एकम्॥ =जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय
द्वौ॥ त्रीन्॥ वा॥ समयान्॥ अनाहारकः॥ भवति। =दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजै है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करता है और उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेता है अनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूसरे समय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर आदिको ग्रहण करके आहारक होजाता है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में "एक द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे "त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां "एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। अब यानों सभाष्य० का विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोंके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो "विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो॥

(२) 'प्रश्न—एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है' यहां पर आहार बिनाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है यहां पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये एक द्वौ त्रीन् यहांपर "एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु" यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये? (इसी सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६ सूत्रव्यापी अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होती है ... अधिकरण २।३।५। ... आधारहै ...)

मिश्रणं गर्भः । मात्रोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः । उपेत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारको-
त्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमि
त्तकर्मभेदविपाककृताः ॥

अथाधिकृतस्यसंसारिविषयोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्याइत्यतआह

मिश्रणम्॥गर्भः॥वा॰मातृ उपभुक्त आहार-	=मिश्रित होना(=मिश्रण) सो गर्भ है । अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके
गरणात्॥ गर्भः॥	=निगलनेसे होना सो गर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय
उपेति । उपपद्यते । अस्मिन्॥ इति॰उपपादः॥	=जिसमें पहुंचता है(=उपेति)या जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है अर्थात् जिसमें पहुंचकरि [illegible] जिसका आसरा होकर उपजता है सो उपपाद है
देव नारक-उत्पत्ति-स्थान-विशेष-सञ्ज्ञा ॥	=देव और नारकियोंके उपजनके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है
एते त्रयः॥ संसारिणां॥जीवानां॥जन्म-प्रकाराः॥	=ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके हैं ।
शुभ-अशुभ-परिणाम निमित्त-कर्मभेद-	=(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके
विपाककृताः॥	=उदयसे किये जाते हैं अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै । शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पत्ति होती है ।
अथ॰अधिकृतस्य॥	=अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार या प्रकरण चलाआरहाहै और
संसारि-विषय—उपभोग—उपलब्धि—	=जो संसारीजीवोंका विषयभोगोंकी (संसारि-विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के
अधिष्ठान—प्रवणस्य॥जन्मनः॥	=आधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है या प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके
योनिविकल्पाः॥वक्तव्याः॥इति॰अतः॰आह ।	=योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये । इस लिये कहते हैं कि

(१ उपेति - उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण हुआ है । इ अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद' जाना'के अर्थमेंहै अध्यायपृष्ठ ५६ के अनुसार इ का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालकी जोड़ा एति बना उप॰एति= उपैति=समीप (=उप) आता है=एति इसवास्ते समीप आताहै अर्थात् पहुंचता है ॥(२)उपपद्यते=उप पद्-य-ते ॥ उप=आरम्भ(पद्मचन्द्र॰कोशपृष्ठ७५) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्ति होना—है । य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे औरए-से-न्ते इत्यादि प्रत्य यों के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै ॥ उपपद्यते का शब्दार्थ आरम्भता को (संसारमें) प्राप्त होता है ऐसा है अर्थात् उपजता है ॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति अन्तर-निर्वृत्ति जन्म-प्रकार-प्रतिपादन अर्थम्॥ आह।	=नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) का और जन्मके =भेद बतानेके लिये वा कहनेके लिये कहते हैं कि

'सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म॥ ३१॥=सम्मूर्च्छनात् गर्भात् उपपादात्[२]-जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनात्॥	=सम्मूर्च्छन(अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनने) से
गर्भात्॥	=गर्भ (अर्थात् माताकेरज और पिताके वीर्यके संयोग वा सम्बन्ध) से
उपपादात्॥	=उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्न हो वहां) से-उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देवऔरनारकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)
जन्म॥	=(जीवके) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठ —सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छन-गर्भ उपपादाः॥जन्म॥	=सम्मूर्च्छन,गर्भ और उपपादशय्यारूप (जीवकेये) तीन जन्म हैं
टीकानुवादः त्रिषु॥लोकेषु॥ऊर्ध्वम्॥अधस्॥तिर्यक्॥च॥	=तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्
देहस्य॥ समन्ततः॥मूर्च्छनम्॥सम्मूर्च्छनम्॥	=चारों ओर वा जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छन)सो सम्मूर्च्छन है
अवयव प्रकल्पनम्॥	=(अर्थात् देहके)अवयवकी (सर्वत्र) रचना वा उत्पत्ति(प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥
स्त्रियाः॥उदरे॥शुक्र-शोणितयोः॥गरणम्॥	=नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरण)

१ इसतत्त्वार्थ॰के समाप्य॰में 'उपपाद' शब्दके स्थानमें'उपपाता'लाये हैं अथ च 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म' ऐसा पाठ है अर्थ दोनोंकाएकहीहै
(२) यहांपर [illegible]

मिश्रणं गर्भः । मात्रोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः । उपेत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारको त्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमि त्तकर्मभेदविपाककृताः ॥

अथाधिकृतस्य संसारिविषयोपभोगोपलब्ध्यधिष्ठानप्रवणस्य जन्मनो योनिविकल्पा वक्तव्या इत्यत आह

मिश्रणम्॥ गर्भः॥ मात्रा उपभुक्त आहार- =मिश्रित होना(=मिश्रणं) सोगर्भ है। अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके गरणात्॥ गर्भः॥ =निगलनसे होना सोगर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय

उपैति। उपपद्यते। अस्मिन्॥ इति॰उपपादः॥ =जिसमें पहुंचता है(=उपैति)वा जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है अर्थात् जिसमें पहुंचकरि वा जिसको प्राप्तहोकर उपजता है सो उपपाद है

देव नारक उत्पत्ति-स्थान-विशेष-सञ्ज्ञा ॥ =देव और नारकियोंके उपजनके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है

एत त्रय ॥ संसारिणाम्॥जीवानाम्॥जन्म प्रकाराः॥ =ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके हैं।

शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद- विपाककृताः॥ =(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके =उदयसे किये जाते हैं अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुरूपही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै। शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पत्ति होती है।

अथ॰अधिकृतस्य॥ =अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार वा प्रकरण चलाआरहाहै और

संसारि-विषय—उपभोग—उपलब्धि— अधिष्ठान—प्रवणस्य॥ जन्मनः॥ =जो संसारीजीवोंका विषयभोगोंकी (संसारि विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के =आधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है वा प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके

योनिविकल्पाः॥ वक्तव्याः॥ इति॰अतः॰आह। =योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये। इस लिये कहते हैं कि

(१ उपैति– उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण ईका है। ई अयादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद 'आना' के अर्थमेंहै अध्याय२पृष्ठ ५६ के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालको जोड़ो एति बना उप॰एति=उपैति=समीप (=उप) आता है=एति अर्थात् समीप आताहै अर्थात् पहुंचता है ॥(२)उपपद्यते=उप-पद्-य-ते ॥ उप=आरम्भ(पसर्गम्प्र॰कोशपृ॰३७) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्ति होना—है। य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे और ए–से–ते इत्यादि प्रत्ययों के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै ॥ उपपद्का शब्दार्थ आरम्भता को (संसारमें) प्राप्त होता है ऐसा है अर्थात् उपजता है ॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम् । स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति अन्तर-निर्वृत्ति जन्म-प्रकार-प्रतिपादन अर्थम् आह = नवीन अन्य शरीरकी रचना (=निर्वृत्ति) का और जन्मके भेद बतानेके लिये या कहनेके लिये कहते हैं कि

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥ = सम्मूर्च्छनात्-गर्भात् उपपादात्[1]-जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-सम्मूर्च्छनात् = सम्मूर्च्छन (अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनन) से

गर्भात् = गर्भ (अर्थात् माताकरज और पिताके वीर्यके संयोग या सम्बन्ध) से

उपपादात् = उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्न हो वहां) से—उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देव और नारकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)

जन्म = (जीवके) नवीन शरीरका धारण (=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्च्छनजन्म, गर्भजन्म, उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठ —सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ -सम्मूर्च्छन-गर्भ उपपादाः जन्म = सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपादशय्यारूप (जीवके ये) तीन जन्म हैं

टीकानुवाद त्रिषु लोकेषु ऊर्ध्वम् अधस् तिर्यक् च = तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्

देहस्य समन्ततः मूर्च्छनम् सम्मूर्च्छनम् = चारों ओर या जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छन) सो सम्मूर्च्छन है

अवयव प्रकल्पनम् = (अर्थात् देहके) अवयवकी (सर्वत्र) रचना या उत्पत्ति (प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥

स्त्रिया उदरे शुक्र-शोणितयोः गरणम् = नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरण)

१ श्वेताम्बरसम्प्रदायके तत्त्वार्थसूत्रमें 'उपपाद' शब्दके स्थानमें 'उपपात' आते हैं अर्थात् 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म' ऐसा पाठ है सर्वार्थसिद्धिकारके
(२) यहांपर जन्म के उपपाद अनुवादमें है उपपादका संबंधी ... यह शब्द प्रयोगकी दिखलाते यहां ... विद्यमान हैं ॥

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥ शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृत सवृत। सवृत इति दुरुपलक्ष्य प्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतरा। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥ के पुनरितरे? अचित्तोष्णविवृताः॥

---

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित वा ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले हैं–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहता है उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत वा निवृतियोनि–जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय हैं वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ वा खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गलके स्कन्ध कितने ही ढके हों कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भजहैं वे संवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वाले हैं उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहताहै।

चैतन्य-विशेष-परिणामः॥ चित्तं॥ =आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्तहै
सह॰चित्तेन॥ वर्तते॥ इति॰सचित्त॥ =जिसकरि सहित(=सह)होता है ऐसा सचित्त है
शीत॥ इति॰स्पर्शविशेषः॥ =शीत ऐसा स्पर्शका भेदहै। श्वेतादिक(वर्णकभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का
शुक्लादिवत्॥ उभय-वचनत्वात्॥ =वाचक होनेसे उस(शीत)मिश्रित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को
तद् युक्तम्॥ द्रव्यम्॥ अपि॰आह॥ =भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यका भी कहते हैं॥
सम्यग्वृत॥ संवृत॥ =भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित वा आवृत है सो संवृत है
दुर्-उपलक्ष्य॥ प्रदेशः॥ इति॰संवृत॥ उच्यते॥ =नहीं देख्याओरनहींजान्याजायाहै जिसका(=दुरुपलक्ष्य)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै
सह॰इतरैः॥ वर्तन्ते॥ इति॰ सेतराः॥ =उलटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है
स-प्रतिपक्षाः॥ इति॰अर्थः॥ =विपक्षी वा विरोधपक्षीपक्षि का है ऐसा अभिप्राय है।
के॥ पुनः॥ इतरे॥? =और इतर कौन है
अचित्त-उष्ण-विवृताः॥ (=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे)हैं

॥ सचित्तशीतसंवृता:सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

"सचित्तशीतसंवृता सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ - सचित्त-शीत-संवृता:॥ =सचित्त, शीत, संवृत(और सचित्त-शीत-संवृत इन एक एकके)

सा—इतरा:॥ =प्रतिपक्षी, विपक्षी वा उलटे(जो अचित्त-उष्ण-विवृत) सहित (=सा)

च एकश: मिश्रा:॥ =और(सचित्त-शीत-संवृत)एकएकके मिश्र (जैसे सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृत)सहित

तद्-योनय:॥ =उन(सम्मूर्छनादि जन्मों)की योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं(=योनयः) अर्थात्

(१) सचित्तयोनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सहित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एकही शरीरमें बहुत जीव हैं जिससे परस्पर आश्रयसे सचित्त हैं

(२) अचित्त योनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां पुद्गलस्कन्धवा पुद्गलप्रचय अचित्त हों जैसे देवनारकियोंके उपपादके स्थान अचित्त हैं

(३) सचित्ताचित्त-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां चेतना और अचेतन पुद्गलके स्कन्धहों जैसे जो जीव गर्भसे जायमान हैं गर्भज हैं वे सचित्ताचित्तस्वरूप मिश्रयोनिके धारक हैं क्योंकि उनके उत्पत्तिके स्थानस्वरूप माताके उदरमें वीर्य, और रज(खाद्) अचित्त पदार्थ है उनका संबन्ध सचेतन माताके आत्माके साथ है ॥

(४) शीतयोनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीत स्पर्शरूप पुद्गलहों जैसे किसी किसी देव और नारकियोंके शीतरूप पुद्गलकेस्कन्धही उत्पत्तिकास्थान हैं (किसी किसी देव नारकियोंके उष्णरूपही पुद्गलके स्कन्ध उत्पत्तिका स्थान है) देवनारकियोंकबहुतोंकेउपपादस्थान उष्णहोते हैंबहुतोंकेशीतहोते हैं अतःवेशीतयोनिवालेभीहोते हैंऔरउष्ण योनिवालेभीहोते हैं

(५) उष्णयोनि जीवकावहउत्पत्तिस्थानहैजहांउष्णस्पर्शरूपपुद्गलहोंजैसेअग्निकायिकजीवकेसकायिकोंकेउत्पत्तिस्थानउष्णरूप ही हैं

(६) शीतोष्णयोनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीतोष्णके मिश्ररूप पुद्गलहों अर्थात् देव और नारकी और अग्निकाय जीवोंसे भिन्न जो जीव हैं उनमें बहुतसे शीत योनिवाले होते हैं बहुतसे उष्णयोनिवाले होते हैंऔर बहुतसे शीतोष्णस्वरूप मिश्रयोनिवाले होते हैं इसप्रकार उनमें शीत, उष्ण, और शीतोष्णतीनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें 'संवृता' पाठ है कहीं कहीं पर (संवृता) पाठ है जहां हमारे यहां (संवृता) पाठ है उसके अनुकूल शास्त्रों आचार्योंका पाठ यह है कहीं भी यह है संवृत—ढका हुआ विवृत-खुला संवृता और संवृता दोनों पाठ ठीक है ॥

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृतः संवृतः। संवृत इति दुरुपलक्ष्यप्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥के पुनरितरे?। अचित्तोष्णविवृताः॥

---

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित या ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले हैं–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहता है उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत या निवृतियोनि } जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय हैं वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ या खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गलके स्कन्ध कितने ही गूढ़ हों कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भज हैं वे संवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वाले हैं। उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहता है।

चैतन्य-विशेष-परिणामः चित्तम् =आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्त है

सह चित्तेन वर्तते इति सचित्त =चित्तकरि सहित(=साथ)होता है ऐसा सचित्त है

शीत इति स्पर्शविशेषः =शीत ऐसा स्पर्शका भेद है। श्वेतादिक(वर्णकभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का

शुक्लादिवत् उभयवचनत्वात् =वाचक होनेसे उस(शीत)मिश्रित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को

तद् युक्तम् द्रव्यम् अपि आह =भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यको भी कहते हैं॥

सम्यग्वृत संवृत =भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित या आवृत है सो संवृत है

दुर्-उपलक्ष्यः प्रदेशः इति संवृतः उच्यते =नहींदेख्याऔरनहींजाणागयाहै जिसका(=दुरुपलक्ष्य)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै

सह इतरैः वर्तन्ते इति सेतराः =इतर करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है

स-प्रतिपक्षा इति अर्थः =विपक्षी या विरोधवालीपद्धति का है ऐसा अभिप्राय है। और इतर कौन हैं

के पुनः इतरे ? अचित्त-उष्ण-विवृताः (=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे)हैं

उभयात्मको मिश्र। सचित्ताचित्त शीतोष्ण संवृतविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थ। मिश्राश्च योनयो भवन्तीति॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषण स्यात् ॥ एकश इति वीप्सार्थ ॥ तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्त्यर्थम्॥यथैवं विज्ञायेत। सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च सवृतश्च विवृतश्चेति॥मैव विज्ञायि सचितश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहण जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्।तेषा सम्मूर्च्छनादीना जन्मना योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः॥योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

उभय-आत्मकः ॥ मिश्रः ॥ सचित्ताचित्तः ॥ शीतोष्ण ॥ संवृतविवृत ॥ इति चशब्दः ॥ समुच्चय अर्थः ॥ मिश्रा ॥ च योनय ॥ भवन्ति ॥ इति इतरथा हि

पूर्व उक्तानाम् ॥ एव विशेषणम् ॥ स्यात् ॥ एकशः इति वीप्सा-अर्थः ॥ तस्य ॥ ग्रहणम् ॥ क्रम-मिश्र-प्रतिपत्ति अर्थम् ॥ यथा एवम् विज्ञायेत ॥ सचित्तः ॥ च अचित्तः ॥ च शीतः ॥ च उष्णः ॥ च संवृत ॥ च विवृत ॥ च इति मा एवम् विज्ञायि ॥ सचित्तः ॥ च शीत ॥ च इत्यादि ॥ तद्-ग्रहणम् ॥ जन्म प्रकार प्रति निर्देश-अर्थम् ॥ तेषाम् ॥ सम्मूर्च्छनादीनाम् ॥ जन्मनाम् ॥ योनयः ॥ इति त ॥ एते ॥ नव ॥ योनयः ॥ वेदितव्याः ॥ योनि जन्मनोः ॥ अविशेषः ॥ इति चेत्

(सचित्त-शीत-संवृत को यथासंख्य अचित्त-उष्ण-विवृतसे मिलाओ तो) =दोनों रूप मिश्र हैं ॥ (वे) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, और =संवृतविवृत इस प्रकार(मिश्र) हैं। चकार समुच्चय केलिये है =(अर्थात्) मिश्र भी (=च) योनियें होती हैं क्योंकि (=हि)अन्यथा होतो अर्थात् (यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिश्रयोनियें नहोता) =पहिले कहे हुये (सचित्त-शीत-संवृत) का ही (मिश्रशब्द) विशेषण हो जाय॥ =एकएक(=एकशः)ऐसा(शब्द)वारवारकेलियेहै तिस(एकशःशब्द)काआदान =क्रमसे(सचित्त शीत-संवृतका यथासंख्य अचित्त-उष्ण विवृतके साथ) मिश्रकी =प्राप्ति वा प्रवृत्तिके लिये है। जैसे इसप्रकार जानो कि =सचित्त और अचित्त और (=च) शीत और (=च)उष्ण =और(=च)संवृत और(=च)विवृत ऐसे(इनकामिश्र)है। ऐसे मतिमानो कि =सचित्त और शीत इत्यादिका(मिश्र) है। (इससूत्रमें)तद्(शब्द) का आदान =जन्मके भेदोंके जनानेके लिये है। तिन -सम्मूर्च्छन आदिक जन्मकी(येनव)योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं =सो इतनी नव योनियें जानना चाहिये =योनि और जन्ममें अभेदही(=अविशेष) ऐसी शंकाहोवे तो (=इसमें कहते हैं कि)

न आधाराधेयभेदात्तद्भेद ॥ त एते सचित्तादयो योनय आधारा । आधेया जन्मप्रकारा ॥ यत सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनय । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्त ॥ गर्भजा मिश्रयोनय । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्त, तदात्मना चितवता मिश्रणान्मिश्रयोनि ॥ सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनय । केचित्सचित्तयोनय । अन्ये अचित्तयोनय । अपरे मिश्रयोनय ॥ सचित्तयोनय साधारणशरीरा । कुत । परस्पराश्रयत्वात् ॥ इतरे अचित्तयोनयो-

न॰आधार–आधेय–भेदात्॥
तद् भेद ॥ ते ॥ एते ॥ सचित्त–आदय ॥ योनय ॥
अधारा ॥ । आधेया ॥ जन्म–प्रकारा ॥ यत॰ सचित्त
आदि–योनि अधिष्ठाने ॥ आत्मा ॥ सम्मूर्च्छन–आदिना ॥
जन्मना ॥ शरीर–आहार–इन्द्रिय–आदि योग्यान् ॥
पुद्गल न् ॥ उपादत्ते ॥ देव–नारका ॥ अचित्त–योनय ॥
तेषाम् ॥ हि॰योनि–उपपाददेश–पुद्गल–प्रचय ॥
अचित्त ॥ गर्भजा ॥ मिश्रयोनय ॥ तेषाम् ॥ हि॰मातु ॥
उदरे ॥ शुक्र–शोणितम् ॥ अचित्तम् ॥ तद्–चितवता ॥
आत्मना ॥ मिश्रणात् ॥ मिश्रयोनि ॥ सम्मूर्च्छनजा ॥
त्रि–विकल्पयोनय ॥ केचित्॰सचित्त–योनय ॥ अन्ये ॥
अचित्त योनय ॥ अपरे ॥ मिश्र–योनय ॥
सचित्त योनय ॥ साधारणशरीरा ॥
कुत॰परस्पर
आश्रयत्वात् ॥ इतरे ॥ अचित्त-
योनय ॥

=नहीं, (योनि और जन्ममें भेद है)। आधार और आधेय के भेद से
=उन(योनि और जन्म)में भेद है। वे इतनी(=एते)सचित्त आदिक (योनियें)
=आधार वा आश्रय हैं। जन्मके भेद हैं वे आधेय वा आश्रित हैं। क्योंकि सचित्त
=आदिक योनियोंके आधारविषैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक
=जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रिय आदिक योग्य
=पुद्गलोंका ग्रहण करता है। देव और नारकी अचित्त योनिवाले हैं
=क्योंकि तिन(देव-नारकियों)की योनि उपजनेका स्थान(=उपपाददेश)पुद्गलका स्कंध
=अचित्त है। गर्भसे उत्पन्न हुये जीव मिश्र(सचित्ताचित्त)योनिवाले हैं क्योंकि तिनकी माताके
=उदरमें वीर्य और लोहू(रज)अचित्त है। उस(माता)का चितवान्
=आत्मासे(शुक्र-शोणित अचित्तके) मिलापसे मिश्रयोनि है। सम्मूर्च्छनजन्मवाले
=तीन प्रकारके योनिवाले हैं। कितने सचित्त योनिवाले हैं। दूसरे
=अचित्तयोनिज हैं। (इनसे)भिन्न मिश्रयोनिवाले अर्थात् सचित्ताचित्त योनिवाले हैं
=सचित्तयोनिज साधारणशरीरवाले हैं अर्थात् जिनके एक ही शरीरमें बहुत जीव होते हैं
=क्योंकर(साधारणशरीरवाले सचित्तयोनिज हैं)क्योंकि आपसमें(एकजीव दूसरेके)
=आश्रयसे वा आधारसे है ॥(साधारण शरीरसे) भिन्न(सम्मूर्च्छनजीव)अचित्त
=योनिवाले हैं अर्थात् उनके उपजनका स्थान अचेतन पुद्गलके स्कन्ध ही है ॥

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारका तेषा हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्कायिका ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनय केचिदुष्णयोनय अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रिया सवृतयोनय ॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनय ॥ गर्भजा मिश्रयोनय ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्त च। णिचिदरधा दु सत्त य तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेवासु रणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा

मिश्रयोनयः च शीत-उष्ण-योनयः देवनारकाः =और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं। देव और नारकी शीतोष्ण योनिज हैं
तेषाम् हि उपपादस्थानानि कानिचित् =क्योंकि(=हि) तिन (देव–नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितने
शीतानि कानिचित् उष्णानि तेजस्कायिकाः =शीत हैं कितने उष्ण हैं। तैजसकायके जीव
उष्ण-योनय इतरे त्रिविकल्प-योनय केचित् =उष्णयोनिवाले हैं। भिन्न प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं। केई
शीतयोनय केचित् उष्णयोनयः अपरे =शीत योनिज हैं। केई उष्ण योनिज हैं। अन्य
मिश्रयोनयः इति देव–नारकएकेन्द्रियाः =मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले हैं। देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव
संवृतयोनय विकल–इन्द्रियाः =संवृतयोनिवाले हैं। विकलेन्द्रिय जीव अर्थात् द्वीन्द्रियसे चौइन्द्रियतक
विवृतयोनयः गर्भजा मिश्रयोनयः =विवृत वा निवृत योनिज हैं। गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये
जीवोंकी संवृत विवृत योनि है भावार्थ योनिके केवे प्रदेशगूढ हैं केतेप्रदेश उघड़े हैं
तद्भेदा चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती
आगमतः वेदितव्याः उक्तम् च =शास्त्रसे जानना चाहिये। कहाभी है
णिचिदरधादु(=नित्य–इतर–धातु) =नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु(पृथिवीकायिक, अपकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक) की
सत्त य(=सप्त च) तरुदस(=तरवः दश च) =सात सात और (=य=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)
वियलिंदिएसु छच्चेव(विकलेन्द्रियेषु षट् एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषैं छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, त्रीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो
सुर-णिरिय-तिरिय चउरो(सुर-निरय तिर्यक् चतुरः)=सुर–नारक और तिर्यचोंकी चार चार(और)
चोद्दस मणुए सदसहस्सा(चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि)=चौदहलाख मनुष्यविषै हैं(अर्थात् ४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

भावार्थः—नित्यनिगोद, इतरनिगोद पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें ऐसे ४२ लाख हुईं, वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें, दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इन विकलेन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुईं। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाख योनियें हुईं मनुष्योंकी चौदहलाख योनियें मिलकर सर्व (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुईं

एवम् ॥ एतस्मिन् ॥ नवयोनि भेदसङ्कटे ॥ =ऐसें तिस नवभेदरूपयोनि सङ्कट विषैं त्रिविधजन्मनि ॥ सर्वप्राणभृताम् ॥ अनियमेन ॥ =तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंकें नियमकरिरहित प्रसक्ते ॥ तद्—अवधारण अर्थम् ॥ आह ॥ =प्राप्त होनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चय करनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः=जरायुजाण्डजपोतानां गर्भ (जन्म) ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ –जरायुज–अण्डज =जरायुमें उत्पन्न होनेवाले(जीव)निका, और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और पोतानाम् ॥ गर्भः ॥ जन्म ॥ =पोत(जीव) निकागर्भजन्म है अर्थात् जोजीव जालके समान मांस और रुधिर से व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य (क) माताकेरुधिर पिताकेवीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसेगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्न होते हैं अंडज कहते हैं जैसे कुक्कट (ख)जिसकेऊपरजरा या अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगता है वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली, सिंह, बंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहांपर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शंखावर्त कूर्मोन्नत और वंशपत्र। शंखावर्त योनिमें गर्भ नहीं ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलभद्र और उनके भाईयोंके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नहीं होता और वंशपत्र योनिमें शेषगर्भ जन्मवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२ हमारे यहां कहीं कहीं पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४० ५४१की टिप्पणी॥ इस सूत्रमें 'जन्म शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ वांसे आती है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०का पाठ"जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः ऐसा है हमारे यहांके पाठमें प्रकार जरायु और अंड के साथ है सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु–अंड–पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म म इजस्य गर्भः जन्म पोतजस्य गर्भः जन्म ऐसे रूप होजाते हैं जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारका तेषा हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति ॥ उष्णयोनयस्तेजस्कायिका ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनय केचिदुष्णयोनयः अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रिया संवृतयोनय ॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनय ॥ गर्भजा मिश्रयोनय ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्त च ।
णिचिदरधा दु सत्त य तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेवासु रणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा

मिश्रयोनयः॥ च॥ शीत-उष्ण-योनयः॥ देवनारकाः॥ =और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं। देव और नारकी शीतोष्ण योनिज हैं
तेषाम्॥ हि॥ उपपादस्थानानि॥ कानिचित्॥ =क्योंकि(=हि) तिन (देव-नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितने
शीतानि॥ कानिचित्॥ उष्णानि॥ इति॥ तेजःकायिका ॥ =शीत हैं कितने उष्ण हैं। तैजसकायके जीव
उष्ण-योनयः॥ इतरे॥ त्रिविकल्प-योनयः॥ केचित्॥ =उष्णयोनिवाले हैं। मिश्र प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं। कई
शीतयोनय ॥ केचित्॥ उष्णयोनयः॥ अपरे॥ =शीत योनिज हैं। कोई उष्ण योनिज हैं। अन्य
मिश्रयोनयः॥ इति॥ देव-नारक-एकेन्द्रिया ॥ =मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले हैं। देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव
संवृतयोनय ॥ विकल-इन्द्रियाः॥ =संवृतयोनिवाले हैं। विकलइन्द्रिय जीव अर्थात् द्विइन्द्रियसे चौइन्द्रियतक
विवृतयोनय ॥ गर्भजाः॥ मिश्रयोनय ॥ =विवृत या विवृत योनिज हैं। गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये जीवोंकी संवृत विवृत योनि है भावार्थ योनिके केते प्रदेशगुप्त हैं केतेप्रदेश उघड़े हैं
तद्भेदाः॥ चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या ॥ =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती
आगमत॥ वेदितव्याः॥ उक्तम्॥ च॥ =शास्त्रसे जानना चाहिये। कहाभी है
णिच्चिदरधादु(=नित्य-इतर-धातु) =नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु(पृथिवीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक)की
सत्त॥ य॥ तरुदस॥ च(=सप्त॥ च तरुदश॥ च) =सात सात और (=च=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)
वियलिंदिएसु॥ छच्चेव॥ (विकलेन्द्रियेषु॥ षट्॥ एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषें छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, त्रीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो
सुर णिरिय-तिरिय चउरो॥ (सुर-निरय-तिर्यक् चतस्र॥)=सुर-नारक और तिर्यंचोंकी चार चार (और)
चोद्दस मणुए सदसहस्सा (चतुर्दश॥ मनुष्ये शतसहस्राणि)=चौदहलाख मनुष्यविषें हैं (अर्थात् ४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजाण्डजपोताना गर्भः ॥३३॥

भावार्थ–नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें[1] ऐसे ४२ लाख हुई, वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें, दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इन विकलन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुई। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाखयोनियें हुई मनुष्योंकी चौदहलाख योनियें मिलकर ऐसे सर्व (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुई

एवम्॰एतस्मिन् ३। नवयोनि भेदसङ्कटे ३। =ऐसें तिस नवभेदरूपयानि सङ्कट विषै
त्रिविधजन्मनि३।। सर्वप्राणभृताम्६। अनियमेन ३। =तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंकें नियमकरिरहित
प्रसक्ते३।। तद्–अवधारण अर्थम् ३।। आह I =प्राप्तहोनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चय करनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम् जरायुजाण्डजपोताना गर्भ =जरायुजाण्डजपोताना गर्भ (जन्म) ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ –जरायुज–अण्डज =जरायुमें उत्पन्नहोनेवाले(जीव)निका, और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और
पोतानाम् ६। गर्भः१। जन्म१॥ =पोत(जीव) निका गर्भजन्महै अर्थात् आजीव जालके समान मांस और रुधिर से

व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य (क) माताके रुधिर पिताके वीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसेगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्नहोवे हैं अंडज कहते हैं जैसे कुक्कुट (ख)जिसकेऊपरजरा वा अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली,सिंह,बंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहांपर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शंखावर्त कूर्मोन्नत और वंशपत्र। शंखावर्त योनिमें गर्भ नहीं ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलभद्र और उनके भाईयोंके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नहीं होता और वंशपत्र योनिमें साधारण जनवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२)हमारे यहां कहीं कहीं पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४० ५४१की टिप्पणी॥ इस सूत्रमें 'जन्म'शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ वांसे आती है॥ श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थ०का पाठ'जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः 'ऐसा हैपहमारे यहांके पाठमें अकार जरायु और अंड के साथ है तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु–अंड–पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म अण्डजस्य गर्भः जन्म पोतजस्य गर्भः जन्म ऐसे रूप होजाते हैं जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरण विततमांसशोणितं तज्जरायु । यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमण्डलं तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपपेतः पोतः ॥ जरायौ जाता जरायुजाः । अण्डे जाता अण्डजाः । जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोता गर्भयोनयः ॥ यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—

दन्वयानुवादः—यद् ॥ जालवत्॰प्राणि-परिवरणं ॥	=जो जालके सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण)
वितत-मांस-शोणितम् ॥ तद् जरायु ॥ यद् ॥ नख	=जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है। जो नों (=नख) के
त्वक्-सदृशम् ॥ उपात्त-काठिन्यम् ॥	=त्वचा या छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत(=उपात्त) हो
शुक्र-शोणित-परिवरणम् ॥ परिमण्डलम् ॥	=जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो
तद् ॥ अण्डम् ॥	=सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं
किञ्चित्-परिवरणम् ॥ अन्तरेण॰परिपूर्ण-अवयवः ॥	=कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित
योनि-निर्गतमात्रः ॥ एव॰परिस्पन्द आदि-सामर्थ्य	=योनिसे निकलते परही हलन चलन आदि सामर्थ्य
उपपेतः ॥ पोतः ॥	=सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा या अंड कुछभी आवरण नहीं होता है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगजावे उसे पोत कहते हैं
जरायौ॰जाता ॥ जरायुजाः ॥ अण्डे ॥ जाताः अण्डजाः ॥	=जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं। अंडेमेंसे उपजें सो अंडज हैं
जरायुजाः ॥ च॰अण्डजाः ॥ च॰पोताः ॥ च॰	=और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत
जरायुज अण्डज-पोताः ॥ गर्भ-योनयः ॥	=(यथासंख्य) जरायुज-अंडज-पोत हैं (और ये सब) गर्भयोनिवाले हैं
यदि॰अमीषाम् ॥ जरायुज-अंडज-पोतानाम् ॥	=जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान)
गर्भः ॥ अवध्रियते ॥ अथ॰उपपादः ॥ केषाम् ॥	=गर्भ निश्चयकियागया है तो अब उपपाद (जन्म) किन(जीवों) के
भवति ॥ इति॰ अतः॰आह ॥	=होता है इसलिये (आचार्य भगवान सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह—

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्य औपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्च्छनजन्मेति॥ एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः।

सूत्रम्— (१)देवनारकाणामुपपाद =देवनारकाणामुपपाद (जन्म भवति) ॥३४॥

सूत्रार्थ —देव—नारकाणाम् =(भवनवासी आदि चारों प्रकारके)देव और नारकियोंके

उपपाद जन्म भवति =उपपाद जन्म होता है। (जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इसमें आती है)

इत्यनुवादः—देवानाम् नारकाणाम् च =देव और (=च) नारकियोंके

उपपादः जन्म वेदितव्यम् अथ अन्येषाम् =उपपाद जन्म जानना चाहिये। अब दूसरे(जीव)निके अर्थात् जरायुज अण्डज और पोतोंको और देवनारकियोंको छोड़कर अवशेष जीवोंका

किम् जन्म इति अत आह =कौन जन्म है इस लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— (२)शेषाणां सम्मूर्च्छनम् =शेषाणां सम्मूर्च्छनम् (जन्म भवति) ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ —शेषाणाम् =अवशेष(जीव)निके अर्थात् गर्भज और उपपाद जन्मोंके अतिरिक्त

सम्मूर्च्छनम् जन्म भवति =सम्मूर्च्छन जन्म होता है(जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आती है)

इत्यर्थ गर्भजेभ्यः औपपादिकेभ्य च अन्ये शेषाः =गर्भजजीवोंसे उपपाद जन्मवाले(देव नारकियों) से भिन्न शेष (जीव रहते) हैं

तेषाम् सम्मूर्च्छनम् जन्म इति =तिन (गर्भज और औपपादिकों से अतिरिक्तजीवोंके) सम्मूर्च्छन जन्म होता है

एते त्रयः अपि योगाः नियमार्थाः =ये तीनों ही युक्तियें अर्थात् तेतीसवां,चौतीसवां,पैंतीसवां सूत्र) नियमके लिये हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्र का शुद्ध पाठ सर्वत्र एक है। 'नारकदेवानामुपपादः' ऐसा पाठ समाष्य० का है दोनों आम्नायों में अर्थ एक सा है॥

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतियोंमें सम्मूर्च्छन संमूर्च्छन सम्मूछन समूर्छन ये चार पाठ प्राप्त हैं यही ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१ ज०) सूत्रके अंतमें जहां"संमूर्च्छन"है वह पाणिनि और शाकटायनकेमतमें अशुद्ध है।संमूर्च्छनम् चाहिये॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरण विततमासशोणित तज्जरायु । यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्य शुक्रशोणितपरिवरण परिमण्डल तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेत पोत ॥जरायौ जाता जरायुजा । अण्डे जाता अण्डजा । जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोता गर्भयोनय ॥ यद्यमीषा जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवधियते, अथोपपाद केपा भवतीत्यत आह—

शब्दानुवाद —यत् ॥ जालवत् प्राणि-परिवरण ॥	=जो जालक सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण)
वितत-मांस-शोणितम् ॥ तत् जरायुः ॥ यत् ॥ नख	=जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है । जो नों (=नख) के
त्वक्-सदृशम् ॥ उपात्त-काठिन्यम् ॥	=त्वचा वा छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत (=उपात्त) हो
शुक्र-शोणित-परिवरणम् ॥ परिमण्डलम् ॥	=जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो
तत् ॥ अण्डम् ॥	=सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं
किञ्चित्-परिवरणम् ॥ अन्तरेण॰परिपूर्ण अवयव ॥	=कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण बिना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित
योनि-निर्गतमात्र ॥ एव॰परिस्पन्द आदि-सामर्थ्य	=योनिसे निकलने परही हलन चलन आदि सामर्थ्य
उपपेत ॥ पोत ॥	=सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा वा अंड इत्यादि आवरण नहीं होवा है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगजावे उसे पोत कहते हैं
जरायौ जाता ॥ जरायुजा ॥ अण्डे ॥ जाता अण्डजा ॥	=जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं । अंडेमें उपजें सो अंडज हैं
जरायुजा ॥ च॰अण्डजाः ॥ च॰पोता ॥ च॰	=और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत
जरायुज अण्डज-पोता ॥ गर्भ—योनय ॥	=(यथासंख्य) जरायुज—अंडज—पोत हैं (और ये सब) गर्भयोनिवाले हैं
यदि॰अमीषाम् ॥ जरायुज-अंडज-पोतानाम् ॥	=जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान)
गर्भ ॥ अवधियते । अथ॰उपपादः ॥ केषाम् ॥	=गर्भ निश्चयकियागया है तो अब उपपाद (जन्म) किन(जीवों) के
भवति । इति॰ अतः॰आह ।	=होता है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषोदयप्राप्तवृ त्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्— [1]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः औदारिक-वैक्रियिक- =इन्द्रियोंसे देखने योग्य स्थूल शरीर, जिसमें एक अनेक स्थूल सूक्ष्म हलका भारी इत्यादि विकार होने की [योग्यता हो;

आहारक =ओ सूक्ष्म पदार्थके निर्णयके लिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेके लिये वा असंयमके दूर करनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके प्रगट हो [वा उन कर्मोंका समूह हो

तैजस-कार्मणानि॥ =जो तेजका कारण हो वा जिसमें तेज रहता हो, ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका जो कार्य हो

शरीराणि ॥ =(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, क्रमसे पांच) शरीर हैं॥

वृत्त्यर्थ -विशिष्ट-नामकर्म उदय आपादित-वृत्तीनि॥ =शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)

शीर्यन्त इति शरीराणि॥ औदारिक- =सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक

आदि-प्रकृति- =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके

विशेष-उदय-प्राप्त-वृत्तीनि॥ =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) वे(क्रमानुसार)

औदारिक आदीनि॥ उदारम्॥ स्थूलम्॥ =औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है

उदारे॥ भवम्॥ औदारम्॥ औदारम्॥ =स्थूलविषें हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है

प्रयोजनम्॥ अस्य॥ इति औदारिकम्॥ =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है

अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्॥ एक-अनेक-अणु =[2]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध जैन हैं वहां सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। सभाष्य० में 'वैक्रियिक' शब्दके स्थान में "वैक्रिय" शब्द है। दोनों आम्नायोंमें अन्य पाठ और भेद [illegible] है। (२) आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक ३५में ऐसे हैं कि "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं । वशित्वं चाष्टसिद्धयः। (१) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोंमें

उभयतो नियमश्चद्रष्टव्य ॥जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भ ।गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्॥ देवनारकाणामेवोपपाद ।उपपाद एव देवनारकाणाम् ॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम्। सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति ॥ तेषा पुन संसारिणा त्रिविधजन्मनामाहितवहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्मविपाकनिर्वर्तितानि वन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

च • उभयत • नियम: • द्रष्टव्य: •	=और (=च) (इन गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंके) दोनों ओर नियम जानो
जरायुज-अण्डज-पोतानाम् • एव• गर्भ •	=(सो उपर्युक्त नियम दोनों तरह ऐसे है कि) जरायुज, अंडज, पोतनिकें ही गर्भ है
च• गर्भ • एव• जरायुज-अण्डज-पोतानाम् •	=और (च) गर्भ ही है(जन्म) जरायुज, अंडज, पोतनिके भावार्थ दोनों वाक्योंका यहहै कि जरायुज, अडज और पोतनिकें ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंके गर्भ जन्म नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई जन्म है जिनके ऐसे जरायुज अडज पोतज हैं।
देव-नारकाणाम् • एव• उपपाद: •	=देव और नारकियोंके ही उपपाद (जन्म) है (नकि किसी और जीवोंके)
उपपाद • एव• देवनारकाणाम् •	=उपपाद ही है (जन्म न कि कोई और जन्म) जिनके ऐसे देव नारकी हैं
शेषाणाम् • एव• सम्मूर्च्छनम् •	=बचे हुये (जीव) निकें ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है (न कि किसी और जीवोंके)
सम्मूर्च्छनम् • एव• शेषाणाम् • इति•	=सम्मूर्च्छन जन्म (नकि कोई अन्य जन्म) है बचे हुये जीवोंके ॥
पुन• त्रिविध जन्मनाम् • तेषाम् • आहित-बहु-विकल्प-	=और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनके और ग्रहण किये हैं (=आहित) बहुत विकल्प रूप
नवयोनिभेदानाम् • संसारिणाम् • शुभ अशुभ	=नव योनिके भेद जिनने ऐसे संसारी जो हैं तिनके शुभ, अशुभ
नामकर्म-विपाक निर्वर्तितानि • बन्ध-फल अनुभवन	=नाम कर्म करिरचे और बंधको जो फल है तिसके अनुभव करने के
अधिष्ठानानि • शरीराणि • कानि • इति• अत• आह	=स्थान वा आधार शरीर (ते) कितने हैं। इस लिये कहते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन प्रकारके जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नौ प्रकारकी योनियोंके धारक संसारीजीवोंकेशुभ अशुभ नाम कर्मों से रचित और कर्म बन्धके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितने हैं सूत्रकार उन्हें गिनाते हैं कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषदयप्राप्तवृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्—— [1]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ [योग्यवाले;

मूलार्थः औदारिक वैक्रियिक- =इन्द्रियोंसेदेखनेयाग्यस्थूलशरीर, जिसमेंएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-

आहारक =आसूक्ष्मपदार्थकनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असयमके

दूरकरनेके लिये मयत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके मगटहो [वा उन कर्मोंका समूहहो

तैजस-कार्मणानि॥ =जा तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो,ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जा कार्य हो

शरीराणि॥ =(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस,कार्मण,क्रमसे पांच)शरीर हैं॥

शब्दार्थ विशिष्ट नामकर्म उदय आपादित-वृत्तीनि॥=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)

शीर्यन्ते इति॰शरीराणि॥औदारिक- =जा गलते हैं-सडते हैं वा झडते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं वा औदारिक

आदि-प्रकृति- =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके

विशेष-उदय-प्राप्त-वृत्तीनि॥ =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) वे(क्रमानुसार)

औदारिक आदीनि॥उदारम्॥स्थूलम्॥ =औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है

उदारे॥भवम्॥औदारम्॥ औदारम्॥ =स्थूलविषैं हो सो औदार है। स्थूलताना व स्थूलपना है

प्रयोजनम्॥अस्य॥ इति॰औदारिकम्॥ =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है

अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्॥ एक-अनेक-अणु- =[2] आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध लग है वहां सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। तत्त्वार्थ॰ में "वैक्रियिक" शब्दके स्थान में "वैक्रिय" शब्द है। दोनों आचार्योंमें अन्य पाठ और अर्थ एक है।(२)आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक३०में येस हैं कि "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं। वशीत्वं चाष्टसिद्धयः (य) अणिमन् (पु॰) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब कामोंमें

महच्छरीरविधिकरणं विक्रिया,सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसं-यमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्त तेजसि वा भवं तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्-शरीर-विविधकरणम्॥ विक्रिया॥ =बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रिया है

सा॥ प्रयोजनम्॥ अस्य॥ इति वैक्रियिकम्॥ =विक्रिया(=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है

सूक्ष्म-पदार्थ-निर्ज्ञान-अर्थम्॥ वा असंयम- =सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके

परिजिहीर्षया॥ प्रमत्तसंयतेन॥ =दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि

आह्रियते। निर्वर्त्यते। =रचाजाता या प्राप्त किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है या सिद्ध किया जाता है

तत्॥ इति आहारकम्॥ =सो ऐसा आहारक(शरीर)है।तात्पर्यहै कि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिकेवलीमेंको शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लिये,मुनियोंके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसका आहारक शरीर कहते हैं ॥

यत्॥ तेजस्-निमित्तम्॥ तेजसि॥ वा भवम्॥ तैजसम्॥ =जो तेजका कारण अथवा तेजमें (दीप्ति रूप करनेको निमित्त अथवा तेजमेंविशेषमेया) हो तैजस है।

कर्मणाम्॥ कार्यम्॥ कार्मणम्॥ =जो कर्मोका कार्य सो कार्मण है

सर्वेषाम्॥ कर्मनिमित्तत्वे॥ अपि॥ =सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मोके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

आत्म वा गमन करनेवाली (६) महिमा (पुल्लिंग) महत्त्व बड़प्पन जिससे जीव बड़ी मूर्तिका बनाने आदि (७) गरिमन् (पुल्लिंग) भारीपन (८) लघिमन्=लघुत्व हलकापन(९) प्राप्ति (स्त्री०)=जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (१०) प्राकाम्य (न०) प्राकाम्य इच्छानिर्घात रूप ऐश्वर्य (११) ईशित्व (न०) ईशिता प्रभु प्राप्ति आठ ऐश्वर्यों मेंसे उपपद माहिक वशा (१२) वशित्व (न०) = वशिता स्वाधीनता अर्थात् जितेन्द्रिय ध्यानस्थ जिसमें इन्द्रियशीलताहैं हैं दूसरा सोम पापपद्मकोष पृष्ठ ८ में यह है "अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावसायिता" ॥ इन्हीं शक्तियोंसे प्राप्त होता है कि इस स्थानमें गरिमन् के बदलेमें "कामावसायिता (स्त्री) मन [illegible] प्रस्तु = (स्त्री०) अणिमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्योमें सत्य संकल्पता (जो इच्छा करे सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पवनमें [illegible] (१) परमार्थ व जोहकर प्रत्यय प्रयोजन रहता है इस लिये प्रयोग और माने प्रयोग बनाये जाते हैं यदि पासकी जिसमें अन्तर पैदा हो सो [illegible] किसके पहिले संयता प्रयोजन नहीं हट [illegible] लिये दोसरी [illegible]

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भव-
तीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगति ॥

रुढिवशात्॥ विशिष्ट-विषये ॥ =रूढिके वशसे विशेषपनार्थे(''कार्मणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप)
वृत्तिः॥ अवसेया॥ यथा=औदारिकस्य॥ इन्द्रियैः॥ =निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि
उपलब्धिः॥ तथा=इतरपाम् ॥ =ग्रहण है (=उपलब्धिः) वैसेअन्य(वैक्रियिक आहारक-तैजस-कार्मण शरीर) निका
कस्मात् ॥ न=भवति ॥ इति=अतः=आह ॥ =क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम् परम्परस् सूक्ष्मम्

=(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरस् सूक्ष्मम् (भवन्ति)।३७

समासः- 'तेषाम् ॥ परम् ॥ परम् ॥ =उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण)मेंसे अगले अगले
सूक्ष्मम्॥ भवन्ति ॥ =(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूल हैं अर्थात् औदारिककी अपेक्षासे वैक्रियिक सूक्ष्म है,
वैक्रियिककी अपेक्षासे आहारक सूक्ष्म है, आहारकसे तैजस सूक्ष्म है, तैजससे कार्मण सूक्ष्म है,॥

वृत्त्यनुसार -परशब्दस्य॥ अनेक अर्थ-वृत्तित्वे॥ अपि=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी
विवक्षातः॥ व्यवस्था-अर्थ-गतिः॥ =विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें मानिये वा समझे है ॥

(१,अन्य शरीरको कामण निमित्त है तो कार्मणको क्या निमित्त है(कार्मणका कार्मणही निमित्त है वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिक निमित्त हैं॥
(२)श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाप्य में तेषाम् शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिक है यथपाठ यकही और अथभी एकही हमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमें
परं परं सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कहीं कहीं परं परं परं सूक्ष्मं पाठ है ॥ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनुकूल यह पाठ भी शुद्ध है परंतु पाणिनिमुनि
यथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमें अशुद्ध है॥(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ)(३)यहां षष्ठीविभक्ति सप्तमीके अर्थमें आई है(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ १८)
(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः ॥
पूर्व अपेक्षया॥ परत्वम् ॥ =पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)
इति=परशब्दः॥ व्यवस्था अर्थः॥ =ऐसे(सूक्ष्म) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

महच्छरीरविविधकरणं विक्रिया,सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसँयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसँयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्त तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कुर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्-शरीर-विविधकरणम्[१] विक्रिया[२]
सा[१] प्रयोजनम्[२] अस्य[३] इति[४] वैक्रियिकम्[५]
सूक्ष्म पदार्थ-निर्ज्ञान-अर्थम्[१] वा असंयम-परिजिहीर्षया[२] प्रमत्तसंयतेन[३]
आह्रियते[४] निर्वर्त्यते[५]
तत्[६] इति[७] आहारकम्[८]

यत्[१] तेजस्-निमित्तम्[२] वा तेजसि[३] भवम्[४]
तत्[५] तैजसम्[६] कर्मणाम्[७] कार्यम्[८] कार्मणम्[९]
सर्वेषाम्[१] कर्मनिमित्तत्वे[२] अपि[३]

=बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रिया है
=विक्रिया (=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है
=सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके
=दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि
=रचामाता वा प्रगट किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है वा सिद्धि किया जाताहै
=सो ऐसा आहारक(शरीर)है तात्पर्य यह है कि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिको तत्त्वोंमेंकोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लियेमुनिके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं ॥
=जो तेजका कारण अर्थात् देहको दीप्ति रूप करनेको निमित्त अथवा तेजकेविषैभया
=सो तैजस है । कर्मोंका कार्य सो कार्मण है
=सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

जासके या गमन करसके (र) महिमन् (पुल्लिंग) महत्व बड़ापन जिससे जीव बड़ी मूर्तिमान स्थानोंमें आसके (ल) गरिमन् (पुल्लिंग) भारीपन (ब)लघिमन = लघुत्व हलकापन(श) प्राप्ति (स्त्री०) = जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (ष) प्राकाम्य (न०) प्राकाम इच्छानिपात रूप ऐश्वर्य ॥ (स) ईशित्व (न०) ईशिता अब आदि आठ ऐश्वर्यों मेंसे सबपर मालिक प्रभा (ह) वशित्व (न०) = वशिता स्वाधीनता अर्थात् जितेन्द्रिय स्वातन्त्र्य जिसमें इन्द्रियजीतली है दूसरा श्लोक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६ में यह है 'अणिमा लघिमा प्राप्ति । प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वंच वशित्वंच तथा कामा वसायिता ॥ दोनों श्लोकोंके मिलानसे प्रगट होता है कि इस श्लोकमें गरिमन् के नाममें कामवसायिता (सा) पता" है ॥ कामावसायिता = (स्त्री०) अथमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंमें सत्य संकल्पता (जो इच्छा करै सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०५ ॥ (१) धातमें य जोड़कर आत्मनेपद प्रत्यय लगानेसे कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग बनाये जाते हैं यदि धातके अंतका अक्षर ऐसा न हो जिसके पहिले संयोग व्यंजन नहीं हो तो य के स्थानमें ि हो जाते हैं जैसे = ह = ह्रि आ+ह्रि+य+ते = आह्रियते निर्+वृत्+य+ते = निर्वर्त्यते॥

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भवतीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगतिः ॥

रूढिवशात्॥ विशिष्ट-विषये॥ वृत्तिः॥ अवसेया॥ यथा॰औदारिकस्य॥ इन्द्रियैः॥ उपलब्धिः॥ तथा॰इतरेषाम्॥ कस्मात्॥ न॰भवति॥ इति॰अत॰आह॥

=अंदृक वशसे विशेषपनामें(१)कार्मणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप) =निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि =ग्रहण है (=उपलब्धिः) तैसे अन्य(वैक्रियिक आहारक-तैजस-कार्मण शरीर) तिका =क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम् परम्परंसूक्ष्मम् ३७

सूत्रार्थः- तेषाम्॥ परम्॥ परम्॥ सूक्ष्मम्॥ भवन्ति॥

=(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरं सूक्ष्मम्(भवन्ति)।३७

=उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्मण)मेंसे अगले अगले =(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूल हैं अर्थात् औदारिककीअपेक्षासेवैक्रियिकसूक्ष्म है, वैक्रियिककीअपेक्षासेआहारकसूक्ष्म है,आहारकसेतैजससूक्ष्म है, तैजससेकार्मणसूक्ष्म है,॥

वृत्त्यनुवादः-परशब्दस्य॥ अनेक-अर्थ-वृत्तित्वे॥ अपि=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी विवक्षातः॰व्यवस्था॰-अर्थ-गतिः॥ =विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें मानिए या मानते हैं ॥

(१ अन्य शरीरको कार्मण निमित्त है तो कार्मणको क्या निमित्त है?कार्मणका कार्मणही निमित्त है वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिकनिमित्तहैं॥
(२)श्वेताम्बर सम्प्रदायके तत्त्वार्थाधिगमभाष्यमें तेषाम् शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिक है यह पाठ पहले और अर्थमी एकहीहमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमें परं परं सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कहीं कहीं परं परं परं सूक्ष्म पाठ है । काव्यरूपमालाव्याकरणके अनुकूल यह पाठ भी शुद्ध है परंतु पाणिनिमुनि तथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमें अशुद्ध है॥(देखोटिप्पणीअध्याय१ पन्ना)(३)यहांषष्ठीविभक्ति सप्तमीकेअर्थमें आई है(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ१८)
(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः॥

पूर्व अपेक्षया॥ परत्वम्॥ =पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)
इति॰परशब्दः॥ व्यवस्था अर्थः॥ =ऐसे(सूत्रमें) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

पृथग्भूताना शरीराणा सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देश क्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूल, तत सूक्ष्मं वैक्रियिक, तत सूक्ष्ममाहारकं, तत सूक्ष्मं तैजस, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यदि परम्परं सूक्ष्म, प्रदेशतोऽपि नून परम्परं हीनमितिविपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

पृथक्* भूतानाम् ॥	= { संज्ञा(नाम)लक्षण(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } पृथक् भूत
शरीराणाम् ॥ सूक्ष्मगुणेन॥ वीप्सानिर्देश ॥	=(औदारिक आदिक) शरीरनि है तिनका सूक्ष्मगुण करि वीप्सारूपनिर्देश
क्रियते । परम्परम्॥	=कियागया है कि परे परें सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यहां सूक्ष्मगुणके साथ वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे क शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है
इति*औदारिक॥ स्थूलं॥ तत*सूक्ष्मं॥ वैक्रियिकम्॥	=इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है । तिस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है
तत सूक्ष्मम्॥ आहारकम्॥ तत*सूक्ष्मम्॥	=तिस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर)है । तिस(आहारक)से सूक्ष्म
तैजसम्॥ तैजसात्॥ कार्मणं॥ सूक्ष्मम्॥ इति*	=तैजसशरीर है । तिस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है
यदि*परम्परं॥ सूक्ष्मम्॥ प्रदेशत:*	=जो आगसे आगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तो परमाणुओंकी अपेक्षासे
अपि*नूनम्*परम्परम्॥ हीनम् ॥	=भी निस्सन्देहकरि (=नून)उपर उपर शरीर हीनहोंगे अर्थात् प्रत्येक अग्रिमअग्रिम शरीरमें पहिले पहिले शरीर से थोड़े थोड़े प्रदेश होंगे
इति*विपरीत-प्रतिपत्ति-निवृत्ति-अर्थम्॥ आह ।	=ऐसी विरुद्ध प्रवृत्तिके दूर करनके लिये कहते हैं कि

(१) प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्=परं परं प्रदेशत असंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्॥३८॥

सूत्रार्थ:-परं॥ परं॥ प्रदेशत:*प्राक्*तैजसात्॥	=अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजससे पहिलेके (शरीर)
असंख्येयगुणम्॥	=असंख्यात गुणे हैं अर्थात् औदारिक शरीरमें जितने परमाणु हैं उनसे संख्यातगुणे

(१)यामो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमे इस सूत्रका पाठ थोर भन पड़ताहै ॥ परं परं शब्द की अनुवृत्ति पिछले सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै ॥
(२)गान्द यह न समझे कि यहांपर न्यूनम् शब्द है क्योंकि न्यूनके अर्थमें हीनम् शब्द आते हैं नूनम् का अर्थ निस्सन्देह है ऐसी मेदिनीकोश पञ्च३३०

प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः परमाणवः । सङ्ख्यामतीतोऽसङ्ख्येयः । असङ्ख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसङ्ख्येयगुणम्॥ कुतः ? प्रदेशतः । नावगाहतः । परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह प्राक्तैजसादिति ।

परमाणु वैक्रियिक शरीरमें हैं और वैक्रियिक शरीरसे असंख्यात गुणे परमाणु आहारकशरीरमें हैं

इत्यनुवादः प्रदिश्यन्ते । इति॰प्रदेशाः॥ परमाणवः॥ =जो अविभाज्य होकर प्ररूपण कियाजाये हैं ऐसे प्रदेश हैं या परमाणु हैं ॥ या जिनकरि प्रमाणकरिये है ऐसे प्रदेश हैं अर्थात् जिनके द्वारा भिन्न भिन्न अंककिये जाय सो प्रदेश हैं ॥

संख्याम्॥ अतीतः॥ असंख्येयः॥ असंख्येयः॥ गुणः॥ =जो गणनासे बाहिरहो वे असंख्यात हैं असंख्यात हैं गुणाकार[1] वा[1] गुणक

अस्य॥ तत्॥ इदम्॥ असंख्येयगुणम्॥ कुतः॥ =जिसका सो यह असंख्येयगुणा है क्योंकर वा कहांसे (असंख्येयगुणा) है

प्रदेशतः ॥ अवगाहतः ॥ =परमाणुओं (की अपेक्षा)से (असंख्येयगुणा) है अवगाहना (की विवक्षा) से

न॥ = असंख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक शरीर असंख्यातगुणा है और वैक्रियिकसे आहारक असंख्यातगुणा है सो औदारिकसे गणनामें वैक्रियिककी परमाणुओंकी गणना असंख्यातगुणी) है नकि उसकी अवगाहना असंख्यातगुणी अधिक है इसी प्रकार वैक्रियिकसे आहारकके परमाणुओंकी गिनती या संख्या असंख्यातगुणी है नकि आहारक शरीरकी अवगाहना वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक है

परम्॥ परम्॥ इति॰अनुवृत्तेः॥ =(पूर्व सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) "परं परं" ऐसी अनुवृत्ति(के कारण) से

आ॰कार्मणात्॥ प्रसङ्गे॥ =कार्मण (शरीर) पर्यन्त(=आ) (इस परं परं की अनुवृत्तिका) संबंधहोनेपर

तद्-निवृत्ति-अर्थम्॥ =तिस (प्रसंग) के निषेधके लिए वा निवारणके लिये (इससूत्रमें)

प्राक्॰तैजसात्॥ इति॰आह ॥ =तैजस शरीरसे पहिले पहिले (=प्राक् तैजसात्) ऐसा वाक्य कहा है

(१ गुणय =जिसअंकको गुणिये जैसे यदि १६ को ६ से गुणाकरना होतो १६ गुण्य है ॥ गणक या गणाकार जिसअंकसे गुणाकरना यहां ६ गुणक या गुणाकार है १६×६=१४४ को गुणनफल कहते हैं । गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं ॥

श्रौदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति ॥ को गुणाकार ? पल्योपमासंख्येयभाग ॥ यद्येवं, परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति । नैवम् । बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभाव । तूलनिचयाय पिण्डवत्॥ अथोत्तरयो किं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकात्॥ असंख्येयगुण प्रदेशं॥ वैक्रियिकं॥ वैक्रियिकात्॥ असंख्येयगुणप्रदेशम्॥ इति॰ आहारकम्॥ क॥ गुणाकार:॥ ?

=(इसलिये) औदारिकशरीरसे असंख्यातगुणे प्रदेशवाला वैक्रियिक शरीर है
=वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणे हैं परमाणु जिसके ऐसा
=आहारक शरीर है। (प्रश्न) क्या गुणक है अर्थात् जब असंख्यातके असंख्याते भेद हैं फिर किस प्रकारके असंख्यातका गुणाकार या गुणक यहां पर मानें

पल्योपम असंख्येय-भाग:॥ यदि॰एवम्॰

=पल्योपमके असंख्यातवां भागका है (सो गुणक यहां लेना) यदि ऐसा है अर्थात् एकएक अग्रिम अग्रिम शरीरके परमाणु उसके पूर्व पूर्व शरीरसे असंख्यात गुणे हैं तो

परम्॥ परम्॥ महत्॥ परिमाणम्॥ प्राप्नोति॥ न॰ एवम्॰

=अग्रिम अग्रिम(=परंपरं)शरीर महान् आकार वा स्थूलताको प्राप्त होता है
=(उत्तर) ऐसा नहीं है (कि अगले अगले शरीरके परमाणु असंख्यात गुणे पूर्व पूर्व शरीरसे होनेसे उन अग्रिम अग्रिम शरीरमें स्थूलपनाका प्रसंग आवे)

बन्ध विशेषात्॥ परिमाण भेद-अभाव:॥ तूल-निचय-अयस्-पिण्डवत्॰

=क्योंकि बन्धके विशेषतासे या बन्धके ढंगसे छोटेबड़ेके भेदका अभाव होजाता है
=रूईका समूह और लोहेके पिंडके सदृश अर्थात् रूईके समूहमें परमाणु थोड़े हैं परंतु परिमाणमें बड़ा है उस लोहके पिंडसे जिसमें परमाणु उस रूईके गठ्ठेसे बहुत अधिक हैं परंतु डीलडौलमें छोटा है

अथ॰उत्तरयो:॥ किम्॥ समप्रदेशत्वम्॥ उत॰ अस्ति॥ कश्चित्॰ विशेष:॥ इति॰अत ॰आह॥

=अब(=अथ) अगले दो (तैजसशरीर और कार्मणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है?
=अथवा(=उत) कुछ(=कश्चित्)भेद है। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) सम्प्रति सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'महागुणाकार' शब्द है परन्तु उसके [illegible] और [illegible] सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'महापरिमाण' पाठ है। [illegible] परिमाण शब्द आता है इसलिये 'परिमाण' शब्द हमने भी पाठमें लिया है।

॥ अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्ध क्रियते-आहारकात्तैजस प्रदेशतोऽनन्तगुण, तैजसात्कार्मण प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकार ? अभव्यानामनन्तगुण । सिद्धानामनन्तोभाग ॥ तत्रैतत्स्यात्स्वल्पकवत् । मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-

सूत्रम्— "अनन्तगुणे परे =(प्रदेशत पर पर) अनन्तगुणे परे (भवत) ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थ — परम् परम् परे =अग्रिम अग्रिम (=पर पर) अवशेष वा अन्य दो (तैजस और कार्मण शरीर)

प्रदेशत अनन्तगुणे भवत =प्रदेशोंकी अपेक्षासे (पूर्व पूर्व शरीरोंसे) अनन्तगुणे हैं अर्थात् आहारक शरीरसे तैजसशरीरमें अनन्तगुणे प्रदेश अधिक हैं और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरमें अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥

टीकानुवाद —प्रदेशत इति =(अड़तीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) प्रदेशतः (=प्रदेशोंकी अपेक्षासे) ऐसा (वाक्य)

अनुवर्तते तेन एवम् =अनुवर्तता है वा आकर्षित होता है । तिस (प्रदेशतः वाक्य) करि इस प्रकार

अभिसम्बन्ध क्रियते आहारकात् तैजसम् =संयोग कियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर

प्रदेशत अनन्तगुणम् तैजसात् कार्मणम् =परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण है तैजसशरीरसे कार्मणशरीर

प्रदेशत अनन्तगुणम् इति =प्रदेशोंकी विवक्षासे अनन्तगुण है ॥

कः गुणाकारः =गुणाकार वा गुणक कौन अनन्त है (क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद हैं)

अभव्यानाम् अनन्तगुणः सिद्धानाम् अनन्त =(उत्तर) अभव्य राशिका अनन्तगुणा है सिद्धराशिका अनन्तवां

भाग स्वल्पकवत् =भाग है (सो अनन्त गुणक है) (प्रश्न) भाला वा तीरके फाल (=शल्यक) के सदृश

तत्र एतत् स्यात् मूर्तिमत् द्रव्य उपचितत्वात् =वहां यह होता होगा कि मूर्तिमान् वस्तुके सञ्चय होनेसे

संसारिण जीवस्य अभिप्रेत-गति- =(तैजस और कार्मण शरीर सहित) संसारी जीवके जानेयोग्य (=अभिप्रेत) गमनमें

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'अनन्तगुणे परे' पाठ है और कहीं कहीं पर "अनंतगुणे परे" पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४० ५४१)॥ परं परं की अनुवृत्ति ३७ वां सूत्र से और प्रदेशतः की ३८वां से आती है

निरोधप्रसङ्ग इति । तन्न । किं कारणम् । यस्मादुभेऽप्येते—

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

निरोध-प्रसङ्ग १। इति ० =रुकावटका प्रसंग होता होगा ॥ अर्थात् ग्राण मूर्तिमान द्रव्योंका पिंडस्वरूपहै इसलिये जिस प्रकार पर्वत आदि से उसकी गतिका निरोध हो जाताहै—वह आगे नहीं जा सकता है उसी प्रकार तैजस शरीर और कार्मण शरीर भी अनंते अनंते मूर्तिमान परमाणुओंके पिंड हैं और संसारी जीवके सदाकाल उनका संबंध रहता है (यह संबंध आग सूत्र ४१ में कहा जायगा) इसलिये उनके सबंधसे संसारी जीवोंके भी जाने योग्य गतिका निरोध होगा ॥

तद्-न० =उस (अभिमत गति) में (रुकावट) नहीं होती है ।(प्रश्न) क्या कारणहै (कि रुकावट नहीं होती)

किम् कारणम् यस्मात् उभे अपि एते=(उत्तर) इस कारणसे कि (तैजस और कार्मण शरीर) ये दोनों ही (अप्रतीघात हैं)

सूत्रम् [1] अप्रतीघाते ॥४० ॥=अप्रतीघाते (परे) भवत

सूत्रार्थ– पर १ अप्रतीघात २ भवतः ३=(तैजस शरीर और कार्मण शरीरये) दोपदो वा शरीर वा अप्रतिघात हैं अराक हैं अर्थात् व्यवधान भी मूर्तिमान पदार्थोंसे इनका रुकना नहीं होता भावार्थ मूर्तीक पदार्थसे मूर्तीक पदार्थका रुकजाना प्रतीघात है । अग्निका परिणमन सूक्ष्म है इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिस प्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्र पटल आदि कैसे भी कठिन पदार्थ क्यों न पड़े दोनों शरीरोंका रुकना नहीं होता ये निरवच्छिन्न रूपसे प्रवेश करजाते हैं इसलिये ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर अप्रतिघात कहेजाते हैं ॥

(1) श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्रका पाठ एक है । 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में अप्रतिघात शब्दका अर्थ न रोकना और न रुकना ऐसा कियाहै जैसाकि लिखा है । तैजस और कार्मण ये अन्तिम दो शरीर अप्रतिघात अर्थात् प्रतिघात शून्य हैं । तात्पर्य यह है कि ये दो तैजस और कार्मण कहीं किसी से नहीं रुकते और न ये किसी को रोकते हैं पृष्ठ ५२ । प्रतिघात (दूसरेसे रुकनेवाला वा दूसरोंको रोकनेवाला) होकर अप्रतिघाति हो तथा अप्रति घाति होकर प्रतिघाति हो । यह दो ऐसा शरीरके सम्बन्धमें लगाहै । सभाष्य० पृष्ठ ५७ तक शरीर न किसी को रोकता है ऐसा अर्थ इससूत्रका इस सब य सिद्धि पृ तिमें तत्त्वार्थ राजवार्तिक अपभ्रंशकी पूतावच मिका अथ गकाशिका सम्प्रायुक्तीकृत तत्त्वार्थलघु टीका में नहीं कियाहै और न तत्त्वार्थ राज वार्तिकके ग अनुवाद में न किसी में ऐसा अर्थहै । पं० पन्नालालजी अनुवादित मोक्षशास्त्र का अर्थ सभाष्य०के अर्थसे मिलताहै जैसे उक्त मोक्षशास्त्रके ...में तैजस और कार्मण शरीर भी पदार्थ पदार्थोंसे नहीं रुकते और न किसी अन्य पदार्थको रोक सकते हैं संस्कृत टीकाओंसे भी यह आशय निकलताहै हमारी समझमें ठीक है क्योंकि सूक्ष्मोंका रोकनेके ... भी जब रहेगा नहीं तो रोकेगा कैसे ॥

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघात प्रतीघात । स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामा- दय पिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघात ॥ ननु च वैक्रियि- काहारकयोरपि नास्ति प्रतीघात । सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षित । यथा तैजसकार्मणयोरा- लोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः । न तथा वैक्रियिकाहारकयो ॥

शुल्यनुवादः—मूर्तिमत ॥ मूर्ति-अन्तरेण ॥ व्याघात ॥	=मूर्तिमानका (=मूर्तिमत) अन्य मूर्तिमानकरि रुकावट (=व्याघात) है सो
प्रतीघात ॥ स ॥ न० अस्ति ॥ अनयो ॥	=प्रतिघात है । सो (प्रतिघात=प्रतीघात) दोनों (तैजस और कार्मण शरीरोंके नहीं) है
इति अप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामात् ॥ अयस् पिण्डे ॥ तेजस्	=ऐसें दोनों प्रतिघात रहित हैं । सूक्ष्मपरिणमन(केकारण) से लोहेके पिंडमें अग्निका
अनुप्रवेशवत् ॥ तैजस-कार्मणयोः ॥	=अयसेप्रवेश(=अनुप्रवेश) के समान तैजस और कार्मण(शरीरों)का (प्रवेश)है ॥
न० अस्ति ॥ वज्रपटलादिषु ॥ व्याघात ॥	=नहीं है (इन दोनों शरीरोंका)प्रतिघात वा रुकावट वज्रपटलादिकोंमें अर्थात्
	अग्निका परिणमन सूक्ष्म है ॥ इसलिये कठिन भी लोहके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके
	कारण जिसप्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण
	शरीरोंका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्रपटल आदि कैसेभी कठिन पदार्थ क्यों न
	बीचमें आपड़ें दोनोंशरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्नरूपसे प्रवेश करजाते हैं
ननु० च वैक्रियिक आहारकयोः ॥ अपि न अस्ति प्रतीघात ॥	=बहुरि प्रश्न वैक्रियिक और आहारक(शरीर) निकै भी व्याघात वा रुकावट नहीं है
सर्वत्र० अप्रतीघात ॥ अत्र० विवक्षित ॥	=(उत्तर) सब स्थानोंका अव्याघात यहां (इससूत्रमें) अपेक्षित है अर्थात् इससूत्रमें इस
	अप्रतिघातका कथन है जो सब स्थानोंमें संबंध रखवाहो
यथा-तैजस कार्मणयोः ॥ आ० लोकान्तात् ॥ सर्वत्र०	=जैसे तैजस और कार्मण(शरीरों)का लोकके अन्ततक(=आ-लोकान्तात्)सब स्थानोंमें
न० अस्ति प्रतीघात ॥ न० तथा वैक्रियिक आहारकयो ॥	=व्याघात नहीं है ॥ तैसे नहीं है वैक्रियिक और आहारक (शरीरों) का (व्याघात)
	अर्थात् लोकके अन्त पर्यंत तैजस और कार्मणशरीरोंका कहीं भी प्रतिघात नहीं होता
	वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका वैसा अप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे
	होजाता है कि केवली और श्रुत केवलीके बिना जिसका समाधान न हो सके ऐसी
	तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निवृत्तिके लिये प्रमत्त गुणस्थान वर्ती संयमी

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थः । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारकशरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली या श्रुतकेवली विराजते हैं वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है। केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है। मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनों शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है॥

आह। किम्०एतावान्।। एव०विशेषः।। =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है

उत०कश्चित्०अन्यः।। अपि०अस्ति। इति०आह। =अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है। (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— [1]"अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवत ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः-परे।। जीवस्य।। =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके

अनादि-सम्बन्धे।। च०भवतः। =अनादिकालसे भी(और मोक्ष होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबन्धवाले हैं

वृत्त्यनुवादः-चशब्दः।। विकल्प-अर्थः।। अनादिसंबंधे।। =(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संबन्धवाले

च०सादिसम्बन्धे।। इति० =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वाले हैं भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'संबंधे' पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्धे' पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५४०-५४१ और टिप्पणी पृष्ठ । ३)॥

कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च वीजवृक्षवत् ॥
यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे ।

कार्य-कारणभाव-सन्तत्या ॥ अनादि-सम्बन्धे ॥ =कार्यकारणके होनेरूप(=भाव)संतान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धवाले हैं
च॰विशेष-अपेक्षया ॥ सादिसम्बन्धे ॥ अपि॰ =और(=च) विशेष विवक्षासे सादि सम्बन्धवाले भी
वीजवृक्षवत्॰ =बीज और वृक्षके सदृश हैं अर्थात् जिस समय बीजसे वृक्ष,वृक्षसेबीज,बीजसेवृक्ष,वृक्षसे
बीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विवक्षाकी जाती है उस समय बीज और वृक्षका
कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाताहै और जिस समय अमुक बीजसे अमुकवृक्ष,अमुकवृक्षसे,अमुकबीज
इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विवक्षा मानी जाती है उस समय बीज और वृक्षका यह सम्बन्ध
सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तैजस कार्मण शरीरके निमित्त नैमित्तक
सम्बन्धकी सामान्यरूपसे विवक्षा कीजाती है उस समय आत्मा और तैजस,कार्मण शरीरोंका अनादि
सबन्धहै क्योंकि अनादिकालसे ऐसा कोई भी समय नहीं बीता जिसमें तैजस कार्मणकी आत्मासे पृथक्ता
हुई हो और जिस समय अमुक तैजस कार्मणको अमुक अवस्थापन्न आत्माके साथ संबन्ध है पुरातन अनंत
परमाणु दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरे हैंऔर नवीन नवीन अनंत परमाणु संचयरूप होतीहैंइस विशेषकी
अपेक्षासे ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर सादि सबन्धवाले हैं। इसप्रकार विशेष विवक्षा है उस समय
उनकी आपसमें निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध सादि है। इस प्रकार सामान्य और विशेषकी अपेक्षा आत्मा
और तैजस कार्मणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है॥

सादिकालसे दोनों प्रकारका संबन्धहै यह उस चशब्दका प्रयोजनहै। चशब्दका ऐसा अर्थ प्रश्नोत्तर रूपमें
उसका शब्दश अनुवादलेनेमें यों निकल आताहै कि अनादिसम्बन्धवाले भी(=च)हैं तो प्रश्नउठता है कि कोई
और प्रकारका संबंधवालेभी तैजसऔर कार्मण शरीरहैंयह संबन्धवाले?सोसादि संबंधहीचशब्दकायह प्रभावहै॥

यथा॰औदारिकवैक्रियिकआहारकाणि॥ जीवस्य॥ =जैसे औदारिक,वैक्रियिक और आहारक शरीर जीवके
कादाचित्कानि[1]॥ न॰तथा॰तैजस-कार्मणे॥ =कभी कभी होनेवाले होते हैं नहीं है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तैजस कार्मण शरीर

(१) कादाचित्क पदचन्द्रकोश पत्र १०१ में त्रिलिंगी है इसका अन्यपुरुष (=प्रथम पुरुष) बहुवचन,नपुंसकलिंग'कादाचित्कानि' है।

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थ । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारक शरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली वा श्रुतकेवली विराजत हैं वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है। केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है। मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनों शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है॥

आह। किम्॰एतावान्॥ एव॰विशेषः॥ =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है

उत॰कश्चित्॰अन्यः॥ अपि॰अस्ति। इति॰आह।=अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है। (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— [1]अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवत ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थ-परे॥ जीवस्य॥ =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके

अनादि-सम्बन्धे॥ च॰भवत। =अनादिकालसे भी(और मोक्ष होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबंधवाले हैं

उत्थानिका-चशब्दः॥ विकल्प अर्थः॥ अनादिसम्बन्धे॥ =(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संबंधवाले

च॰सादिसम्बन्धे॥ इति॰ =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वाले हैं भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आचार्योंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ इसरटे यहां कहीं कहीं पर 'संबंधे' पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्ध' पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं(इनके सम्बन्ध प्रथम टिप्पणी पृष्ठ १५० पृ५१ और टिप्पणी पृष्ठ १ ५.)॥

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

तदादीन भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्द प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थं । ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि शरीर प्रदर्शन अर्थम्(।) इदम्(।) उच्यते । =(एक जीवमें) एकसाथहोनेवाले (=सम्भविन्) शरीरोंके दिखानेकेलिये यह कहा जाता है कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य = (१) तद् आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना चतुर्भ्य

यथार्थ –तद् आदीनि(।) भाज्यानि(।) =उन(तैजस, कार्मण)को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद्(युगपत्) एकस्मिन्(।) आ-चतुर्भ्यः(।) भवन्ति । =एककालमें एक(जीवों)में चार(शरीर)तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतो तैजस और कार्मण होते हैं। तीन हों तो औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं या वैक्रियिक, तैजस और कार्मण ये तीन भी होते हैं परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीके एक साथ चार शरीर हों तो औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण होते हैं। यह नियम है कि जिसके वैक्रियिक होता है उसके आहारक नहीं होता और जिसके आहारक होता है उसके वैक्रियिक नहीं होता है॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमें नहीं है॥

इत्यनुवाद–तद् शब्दः(।) प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति =(इससूत्रमें)तद् शब्दहै सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको

निर्देश अर्थ (।) ते(।) तैजस-कार्मणे(।) आदि(।) येषाम्(।) =प्रगट करनेके लिये है। ये तैजस और कार्मण शरीर हैं आदि जिनके

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तकों में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक में(जैसे पं० पन्नालालजी वाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १६ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमें एकस्य शब्द है परंतु इस पाठ से अर्थ भेद नहीं हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) में चार तक होते हैं यही तात्पर्य रखता है जो एकस्य–आ चतुर्भ्यः=एक (जीव) के चार तक होते हैं रखता है॥ श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य तत्वार्थाधिगम सूत्र में "एकस्याऽऽचतुर्भ्यः" पाठहै सो हमारे यहां के एक पाठ से मिलता है। अर्थ भी अब उनके यहां तैजसको अनादि मानाहै तब एक है। परंतु समाप्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५३में यह भी लेखहै कि तैजसके अनादि सम्बन्धताके खंडन पक्षमें एक ही शरीर का जब अनादि संबंध है तब केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता में कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं या कार्मण औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजसऔदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं या कार्मण तैजस औदारिक और आहारक होसकतेहैं। परंतु कदाचित् भी एक कालमेंएकके पांचोंनहींहोते।

नित्यसम्बन्धिनी हि ते आसंसारक्षयात्। न एते तैजसकार्मणे किं कस्यचिदेव भवत उत अविशेषेणेत्यत आह

॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सर्वशब्दो निरवशेषवाची। निरवशेषस्य संसारिणो जीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थः ॥ अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

नित्यसम्बन्धिनी॥ हि॰ते॥ आ॰संसारक्षयात्॥	=क्योंकि(=हि) वे दोनों(=ते) नित्य संबंधवाले(जीवके) संसारके नाश होनेतक(=आ) हैं॥
न॥ एते॥ तैजस-कार्मणे॥ किम्॰कस्यचित्॰	=वे (ये) तैजस और कार्मण शरीर क्या किसी (जीव) के
एव॰भवतः॥ उत॰अविशेषेण॥ इति॰अतः॰आह	=ही होते हैं(=भवतः) अथवा(=उत) विशेषरहित(सब जीवोंके)। इसलिये कहते हैं कि
सूत्रम् सर्वस्य	=सर्वस्य(संसारिणो जीवस्य)(परे तैजसकार्मणेशरीरेभवत)
सूत्रार्थ -सर्वस्य॥ संसारिणः॥ जीवस्य॥ परे॥	=समस्त संसारी जीवके परेके दो
तैजस कार्मणे॥ शरीरे॥ भवत	=तैजस और कार्मण शरीर होते हैं अर्थात् तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंके होते हैं यदि किसीके ये दोनों शरीर न होंगे तो वह जीव संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥
सर्व शब्द॥ निर् अवशेष-वाची॥ निरवशेषस्य॥	=(इससूत्रमें) सर्वशब्द निर्विशेष या निःशेषका वाचक है। निखिल या समस्त
संसारिणः॥ जीवस्य॥ ते॥ द्वे॥ अपि शरीरे॥ भवतः	=संसारी जीवके(=अपि)ही ये दो(तैजस और कार्मण)शरीर होते हैं
इति॰अर्थ॥ अविशेष अभिधानात्॥	=ऐसा आशय या अभिप्राय है। सामान्यरूप (=अविशेष) कहनेसे (=अभिधानात्)
तैः॥ औदारिक आदिभिः॥ सर्वस्य॥	=उन औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीरोंके साथ, सब
संसारिणः॥ यौगपद्येनसम्बन्ध-प्रसङ्गे॥	-संसारी(जीव)के एककालमें (समकालमें=यौगपद्येन) संबंधका प्रसंग आनेपर

(१)सम्बन्धिन् शब्द त्रिलिंगी है पहिले में प्रथमा विभक्ति एक वचन सम्बन्धिनी है यहां ते शब्द नपुंसकलिंग द्विवचन तद् शब्दका है और तैजस कार्मण दोनों शरीरोंके विशेषण हैं [illegible] सम्बन्धिनी प्रथमाद्विवचन नपुंसक लिंग है क्योंकि सम्बन्धिन्का प्रथमाविभक्ति द्विवचननपुंसक सम्बन्धिनी है
(२)भवतः(भू=होना) [illegible] द्विवचन वर्तमान कालकी क्रिया है [illegible]
(४)[illegible] युगपद् क्रियाविशेषण है एककालमें ऐसा अर्थ है [illegible] दोनों आचार्योंमें [illegible]

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः । ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि शरीर प्रदर्शन-अर्थम् इदम् उच्यते = (एक जीवमें) एकसाथ होनेवाले (=सम्भविन्) शरीरोंके दिखावनेकेलिये यह कहा जाता है कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः = "तद् आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना चतुर्भ्यः

शब्दार्थ—तद्-आदीनि भाज्यानि =उन (तैजस, कार्मण) को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद् (युगपत्) एकस्मिन् आ-चतुर्भ्यः भवन्ति । =एककालमें एक (जीवों) में चार (शरीर) तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतो तैजस और कार्मण होते हैं। तीन हों तो औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं वा वैक्रियिक, तैजस और कार्मण ये तीन भी होते हैं परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीके एक साथ चार शरीर हों तो औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण होते हैं। यह नियम है कि जिसके वैक्रियिक होता है उसके आहारक नहीं होता और जिसके आहारक होता है उसके वैक्रियिक नहीं होता है ॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमें नहीं है ॥

शब्दानुवाद—तद् शब्दः प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति =(इससूत्रमें) तद् शब्द है सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको

निर्देश अर्थः । ते तैजस-कार्मणे आदिः येषाम् =प्रगट करनेके लिये है। वे तैजस और कार्मण शरीर हैं आदि जिनके

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तकों में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक में (जैसे पं० पन्नालालजी बाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १६ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमें एकस्य शब्द है परंतु इस पाठ से अर्थ भेद नहीं हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ चतुर्भ्यः=एक (जीव) में चार तक होते हैं वही तात्पर्य रखता है जो एकस्य-आ चतुर्भ्यः=एक (जीव) के चार तक होते हैं रखता है॥ श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में एकस्याऽऽचतुर्भ्यः पाठही सो हमारे यहां के एक पाठ से मिलताहै। अर्थ भी अब उनके यहां तैजसका अनादि मानाहै तब एक है। परन्तु समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५१में यह भी लेखहै कि तैजसके अनादि सम्बन्धताके प्रथम पक्षमें एक ही शरीर का जब अनादि संबंध है तब केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता में कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं वा कार्मण औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजस औदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं या कार्मण तैजस औदारिक और आहारक होसकते हैं। परंत कदाचित् भी एक कालमें एकके पांचोंनहीहोते।

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुत। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मन॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभाग क्रियते॥पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि॥ तदादीनि॥	=त(=तानि)तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस-कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है
भाज्यानि॥ विकल्पानि॥ आ-कुतः	=भाज्य है सो विकल्पतारूप वा विभागरूप करना है।(विभागरूप)रहां तक (=आ) है
आ चतुर्भ्यः॥ युगपत् एकस्य॥ आत्मन॥	=चार पर्यन्त एककालमें एक जीवकें हैं।
कस्यचित् द्वे॥ तैजस-कार्मणे॥ अपरस्य॥	=किसी (जीव) कें दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमेंहोत) हैं। दूसरे (जीव) कें
त्रीणि॥ औदारिक-तैजस-कार्मणानि॥	=तीन(अर्थात्माय मनुष्य-तिर्यंचोंकें)औदारिक,तैजस और कार्मण शरीर हैं
वा वैक्रियिक-तैजस-कार्मणानि॥	=अथवा(देव-नारकियोंकें) वैक्रियिक,तैजस,कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं
अन्यस्य॥ चत्वारि॥	=अन्य(जीव-अर्थात् प्रमत्त संयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) कें चार
औदारिक आहारक-तैजस-कार्मणानि॥ इति विभाग	=औदारिक,आहारक, तैजस,कार्मण हैं इसप्रकार विभाग या बांट
क्रियते। पुनः अपि तेषाम्॥	=कियाजाता है। फिरभी उन(औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीरों)कें
विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह	=विशेष जाननेकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

सूत्रार्थः-	(औदारिक-वैक्रियिक आहारक तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)
अन्त्यम्॥ निर्-उपभोगम्॥	=अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिके) उपभोगसे रहित है।

अर्थात् जैसेऔदारिक,वैक्रियिक,आहारक,शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोंद्वारा उपभोगकाकारण होतहैं तैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रियऔर मनकीसहायता से जीवको उपभोगकाकारण नहीं है

आयर्द गोमी शरीर नहीं होत है॥ और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमें नहीं होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमें विशेषभेद है
(१)आर्षग्रन्थोंमें [illegible] एक [illegible] कहींपर [illegible] [illegible]
(२ [illegible]) [illegible]

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत्? कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः । तदभावान्निरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

वृत्त्यनुवादः–अन्ते॰ भवम्॰॥	=(छत्तीसवें सूत्रमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, के)अन्तमें जो है
अन्त्यम्॰॥ किम्॰॥ तत्॰॥ कार्मणम्॰॥	=सो अंतिम या अंतका(=अन्त्यम्) है । वह क्या है? (वह) कार्मण (शरीर) है ।
इन्द्रिय-प्रणालिकया॰॥शब्द आदीनाम्॰॥उपलब्धिः॰॥	=इन्द्रियोंके द्वारकरि(=प्रणालिकया)शब्द,स्पर्श,रस,गन्ध,वर्णोंका(=आदीनाम्)ग्रहण है
उपभोगः॰॥ तत् अभावात्॰॥ निर् उपभोगम्॰॥	=सो उपभोग है । उस(उपभोग)की अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥
विग्रह–गतौ॰॥ इन्द्रिय–	=नवीन शरीर(ग्रहण वा धारणकरने)के लिये गमनमें(मोडेमें)इन्द्रियोंकी
लब्धौ॰। सत्याम्॰॥ अपि॰	=(क्षयोपशमरूप)लब्धि होनेपर भी अर्थात् क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तसे
	भावस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी
द्रव्य-इन्द्रिय निर्वृत्ति अभावात्॰॥शब्द आदि उपभोग–	=द्रव्यइन्द्रियोंकी रचनाके(=निर्वृत्ति) न होने (कारण) से शब्दादिक उपभोगका
अभाव॰॥इति॰	=अभाव है अर्थात् विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहतेभी(देखो सूत्र १८)
	द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अभाव है इसलिये शब्दादिका
	अनुभव न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है(सोपभोग नहीं है=स–उपभोगनहीं है)
ननु॰तैजसम्॰॥अपि॰निर् उपभोगम्॰॥तत्र॰	=परन्तु तैजस(शरीर)भी उपभोगसे रहित है । तहां (विग्रहगतिमें भावस्वरूप
	इन्द्रियोंके रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंके रचनाके अभावमें)
किम्॰॥उच्यते।निर् उपभोगम्॰॥अन्त्यम्॰॥इति॰	=अन्तका(कार्मण शरीर)उपभोगरहित ऐसा क्यों कहागया?॰प्रश्नका आशय यह है
	कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे कार्मण शरीर

भावइन्द्रियों के रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भावइन्द्रियोंके होनेपर भी इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे रहित है । जब दोनोंकी अवस्था एकसी है फिर कार्मण शरीर ही निरुपभोग क्यों कहागया, तैजसभी उसके साथ साथ क्यों न निरुपभोग कहागया ॥

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुत। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभाग क्रियते॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि॥ तदादीनि॥॥	=वे(=तानि)तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस–कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है
भाज्यानि॥ विकल्पानि॥॥ आ०कुतः०	=भाज्य है सो विकल्पतारूप या विभागरूप करना है।(विभागरूप)कहां तक (=आ) है
आ चतुर्भ्य॥॥युगपत्०एकस्य॥आत्मन॥	=चार पर्यंत एककालमें एक जीवके है।
कस्यचित्०द्वे॥तैजस–कार्मणे॥॥अपरस्य॥	=किसी (जीव) के दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमें होते) है। दूसरे (जीव) के
त्रीणि॥॥औदारिक–तैजस–कार्मणानि॥॥	=तीन(अर्थात्माय मनुष्य–तिर्यचोंके)औदारिक,तैजस और कार्मण शरीर है
वा०वैक्रियिक–तैजस–कार्मणानि॥॥	=अथवा(देव–नारकियोंके) वैक्रियिक,तैजस,कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं
अन्यस्य॥ चत्वारि॥॥	=अन्य(जीव–अर्थात् प्रमत्त सयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) के चार
औदारिक आहारक–तैजसकार्मणानि॥॥इतिविभागः–	औदारिक,आहारक, तैजस,कार्मण है इसप्रकार विभाग या बांट
क्रियते। पुनः०अपि०तेषाम् ॥॥	=कियाजाता है। फिरभी उन(औदारिक–वैक्रियिक–आहारक–तैजस–कार्मण शरीरों)के
विशेष प्रतिपत्ति–अर्थम् ॥॥ आह।	=विशेष जाननेकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्" निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

पदार्थः–	(औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)
अन्त्यम् ॥॥ निर्–उपभोगम् ॥॥	=अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिक) उपभोगसे रहित है।
	अर्थात् जैसे औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोंद्वारा
	उपभोगका कारण होते हैं तैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रिय और मनकी सहायता से जीवको उपभोगका कारण नहीं है

आयक नार्म शरीर नहीं होते हैं। और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमें नहीं होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमें विशेषभेद है

(१) अनेक आचार्योंमें इसमूत्रकापाठ [illegible] यहांकहीं कहींपर अन्त्यम्"केस्थानमें अन्त्यं" है [illegible]

(२ पर्यन्त = आ) [illegible]

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम् । औदारिकमित्यर्थः ॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम् ॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम् । तद्-

सूत्रम्— [1]"गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् =गर्भजम् सम्मूर्च्छजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः—गर्भजम् १ सम्मूर्च्छनम् २ आद्यम् ३ भवति ४ =जो गर्भसे उत्पन्न होता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है =सो (अपीसर्वा सूत्रमें वर्णित) आदिका या पहिला (औदारिक शरीर) है अर्थात् वह आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

शब्दानुवाद—सूत्र-क्रम-अपेक्षया आदौ १ भवम् २ आद्यम् =(औदारिक वैक्रियिक आदि अपीसर्वा) सूत्रकीक्रम विवक्षासे आदिमें हो सो आद्य है

औदारिकम् १ इति अर्थः २ यद् ३ गर्भजम् ४ =औदारिक (शरीर) है ऐसा अभिप्राय है। जो गर्भ से उत्पन्न होता है

यद् १ च सम्मूर्च्छनजम् २ तत् सर्वम् ३ औदारिकं द्रष्टव्यम् =और जो सम्मूर्च्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्-अनन्तरम् १ यद् २ निर्दिष्टम् ३ =(उस औदारिक शरीर) के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया (वैक्रियिक शरीर)

तद् १ कस्मिन् २ जन्मनि ३ इति अतः आह =सो किस जन्म में है। इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्–औपपादिक वैक्रियकम् ॥४६॥=औपपादिक वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ –औपपादिकम् १ वैक्रियिकम् २ भवति =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है

शब्दानुवादः उपपादे १ भवम् २ औपपादिकम् ३ तद् =उपपाद (जन्म) विषै हो सो औपपादिक है। सो (उपपाद जन्म में)

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है। आद्यम् के स्थानमें जहाँ 'आद्य' है वह कातंत्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त अशुद्ध है (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५ देखो) (२) श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य में "वैक्रिय मौपपातिकम्" पाठ है। पाठ भिन्न होने पर भी दोनों का अर्थ एकसा है॥

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥

एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं॥ शरीरं॥ योगनिमित्तम्॥ अपि॰न॰भवति। =(उत्तर) 'तैजस शरीर (धनःतपन कायके) योगका कारण भी नहीं होता है
ततः॰अस्य॥ उपभोग-विचारे॥ अनधिकारः॥ तिससे,तब) इस(तैजस)का उपभोगके निर्णयमें प्रकरण वा अधिकार नहीं है

भावार्थ योगके पन्द्रह भेदोंमें औदारिक,औदारिकमिश्र,वैक्रियिक,वैक्रियिकमिश्र आहारक,आहारकमिश्र और कार्मण ये सात भेद काययोगके मानेगये हैं इनमें तैजस योग नामका कोई भी भेद नहीं है इसलिये तैजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहां पर उपभोगके विचारमें केवल वे शरीर प्रकरणमें लियेगये हैं वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तैजस शरीर उपभोगके विचारमें अधिकृत वा प्रकरणभूत नहीं है। इसीहेतुसे औदारिक वैक्रियिक आहारक और कार्मण योगनिमित्त शरीरोंमें से अन्तमें रहनेवाला कार्मण शरीरका निरुपभोग कहा है। ऐसा आशय यहां विवक्षित है॥

एवं॥ उक्तलक्षणेषु॥ जन्मसु॥ अमूनि॥ =इसप्रकार वहां कहेगये हैं लक्षण जिनके ऐसे जन्मसे हैं तिनमें ये (=अमूनि)
अविशेषेण॥ प्रादुर्भावम्॥ =शरीर क्या विशेषकरिरहित प्रगटपना को
॰कश्चित्॰अस्ति प्रतिविशेषः॥ =प्राप्त होते हैं (अर्थात् उत्पन्न होते हैं) अथवा (=उत) कुछ विशेष है ॥ उत्तर =(तीनों प्रकारके जन्मोंमें इन पांचों शरीरोंकी उत्पत्तिमेंविशेषहै)अतःऐसे कहतेहैं॥

त वचनात् अथ [illegible] साधन [illegible] =निरुपभोगम् इति वचनात्, अथवा [illegible] एतद् इतराणि स उपभोगानि राज वार्तिक पृष्ठ १०६ = निरुपभोगम् इस वचनसे अर्थापत्ति प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि और शरीर उपभोग सहित हैं॥ [illegible] गम्यते = सामर्थ्यात् अन्यत् स उपभोग गम्यते = सामर्थ्यसे अन्य शरीर उपभोग सहित जानेजाते हैं तत्त्वार्थ श्लोक- [illegible] में और इस अनुवादमें भी यही लिखा है कि अन्य शरीर उपभोग सहित हैं॥ मेरी समझमें इन सबका यह अभिप्राय [illegible] कारणकी विवक्षासे तीन औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर उपभोग सहित हैं (=सोपभोग हैं)और कार्मण शरीर उपभोगरहित है अब रहा तैजस सो योगका कारण नहीं है इससे सूत्रमें उसको विषय प्रकरण वा अधिकारसे बाहर समझकर उसका विशदरूपसे कथन नहीं किया है। सर्वार्थसिद्धिकी 'अर्थप्रकाशिकामें' तैजस शरीरके संबंधमें लिखा है 'तैजस शरीर योगका निमित्त भी नाहीं है यातें तैजस शरीर निरुपभोग है ही यातें याहू सूत्रमें नाहीं कह्या यातो बिना कह्याही निरुपभोग है॥ तैजस कार्मण शरीरकै अंगोपांग भी नाहीं हैं यातें श्रवणका [illegible] इत्यादिक नहीं॥ यातें ए दोऊही शरीर निरुपभोग हैं। परन्तु [illegible]पृष्ठ५४ में यत्यादि 'शेषाणि तु सोपभोगानि' ऐसा लेख है

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम्। औदारिकमित्यर्थः॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम्॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम्। तद्-

सूत्रम्— "गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम्" =गर्भजम् सम्मूर्च्छजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः–गर्भजम् १॥ सम्मूर्च्छजम् १॥ आद्यम्१॥ भवति। =जो गर्भसे उत्पन्न होता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है

=सो(पहिलेका सूत्रमें वर्णित)आदिका या पहिला(औदारिक शरीर)है अर्थात्

इत्यनुवाद–सूत्र-क्रम अपेक्षया आदौ॥ भवम्१॥ आद्यम्=(औदारिक वैक्रियिक आदि शरीरोंका)आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है

औदारिकम्१॥ इति अर्थ १॥ यद्१॥ गर्भजम्१॥ अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

यद्१॥ च सम्मूर्च्छनजम्१॥ तत् सर्वम्१॥ औदारिकं द्रष्टव्यम् =औदारिक(शरीर)है ऐसा अभिप्राय है। जो गर्भ से उत्पन्न होता है

तद्–अनन्तरम् १॥ यद् १॥ निर्दिष्टम् १॥ =और जो सम्मूर्च्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्१॥ कस्मिन्१॥ जन्मनि॥ इति अतः आह। =(उस औदारिक शरीर)के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया(वैक्रियिक शरीर)

=सो किस जन्म में है। इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्–औपपादिक वैक्रियकम्॥४६॥=औपपादिक वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ –औपपादिकम्१॥ वैक्रियिकम्१॥ भवति। =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है॥

इत्यनुवाद उपपादे॥ भवम्१॥ औपपादिकम्१॥ तद् =उपपाद (जन्म) जिसे हो सो औपपादिक है। सो (उपपाद जन्म में)

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है। आद्यम् के स्थानमें जहां 'आद्य' है वह कातंत्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त मधुरदे (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ १ देखो)(२)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें "वैक्रिय मौपपातिकम्" पाठ है। पाठ भिन्न होने पर भी दोनों का अर्थ एकसा है॥

सिद्धि सूत्र४५, ४६

....णिमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकार ॥
...नि किमविशेषेण भवन्ति,

सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम् ॥ यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धि प्रत्यय कारणमस्यलब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिक लब्धिप्रत्यय चभवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यतआह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्॥ वैक्रियिकम्॥ वेदितव्यम्॥ यदि॰ =समस्त वैक्रियिक(शरीर)जान लियेजाना चाहिये । जो
औपपादिकं॥ वैक्रियिकम्॥ अन् औपपादिकस्य॥ =उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तो उपपादजन्म न होनेवालेके
वैक्रियिकत्व अभावः॥ इति॰अत॰आह T =वैक्रियिकपना का अभाव होगा। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् [1]"लब्धिप्रत्यय च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्यय च(वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः-लब्धि-प्रत्ययम्॥ च॰वैक्रियिकम्॥ भवति T=तपोविशेषरूपऋद्धि की प्राप्ति(=लब्धि) है कारणजिसको ऐसा भीवैक्रियिक(शरीर)होताहै
अर्थात् तपकेद्वारा उत्पन्न हुई ऋद्धिके निमित्तसेभी वैक्रियिक शरीर मनुष्य, तिर्यचके होताहै
तत्पनुवाद -च शब्दन॥ वैक्रियिकम्॥ अभिसंबध्यते T=(इससूत्रमें)च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर सबंधित है या लियागया है
तपस-विशेषात्॥ ऋद्धिप्राप्तिः॥ लब्धिः॥ ॥ लब्धि॥ =तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है । लब्धि है
प्रत्ययः॥ कारणम्॥ अस्य॥ लब्धि-प्रत्ययम्॥ =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है
वैक्रियिकम्॥ लब्धिप्रत्ययम्॥ च॰भवति T इति॰=वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा
अभिसंबध्यते। किं॥ एतद्॥ एव॰लब्धि-अपेक्षम्=सम्बंध कियागया है । क्या यह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिक निमित्तसे है
उत॰अन्यत्॰अपि॰अस्ति T इति॰अत॰आह T =या और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय)है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें)कहते हैं कि

सूत्रम् तैजसमपि[2]" ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीर लब्धिप्रत्यय भवति) ॥ ४८ ॥

(1) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो आम्नायोंमें पाठ और बाद एकसा है ...वैक्रियिक शब्दकी अनुवृत्ति ...
(2) श्वेताम्बर ... सूत्ररूपमें नहीं ... 'तैजसमपि शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति' ...

११५

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तैजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ॥
वैक्रियिकानन्तरं यदुपदिष्टं तस्य स्वरूपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४६॥

सूत्राथ –"तैजसं[1] अपि[2] शरीरं[1] लब्धिप्रत्ययम्[2] भवति[1]" =तैजस शरीर भी (=अपि) तपविशेषरूप ऋद्धि प्राप्तिके निमित्तसे =होता है अर्थात् तैजस शरीर भी ऋद्धिहोनेसे प्राप्त होता है अतः यह भी (1) लब्धिकारणक है

शब्दानुवादः–अपिशब्देन[3] लब्धिप्रत्ययं[2] अभिसंबध्यते=(इससूत्रमें)अपि शब्द करि "लब्धिप्रत्यय" वाक्य (इसीसूत्रमें) लगाया जाता है तैजसं[1] अपि[2] लब्धिप्रत्ययं[3] भवति[1] इति* =तैजस(शरीर)भी ऋद्धिकेप्राप्ति–निमित्तक–(वा ऋद्धिकी प्राप्तिके कारणसे) होता है वैक्रियिक–अनन्तरम्[1] यद्[1] उपदिष्टम्[1] तस्य[1]=वैक्रियिक (शरीर)के अत्यन्त समीप निर्देश कियागया (आहारकशरीर) तिसके स्वरूप–निर्धारणार्थं[1] स्वामिन्–निर्देशार्थं[1] आह=स्वभाव निर्णय वा निश्चयकिये और(तिसके)अधिपति के निरूपणके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ आहारकम्[1] शुभम्[1] =शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव (2) मुनेर्भवति =आहारक शुभहै–शुभकर्मका कारण है–इसकेहोते शुभ प्रकृतिनीका बन्ध होता है

(१) "तैजसके दोय भेद हैं । एक निःसरण स्वरूप । दूसरा अनिःसरण स्वरूप ॥ तहां निःसरण तैजस शुभाशुभ भेदकरि दोय प्रकार है । तिनमें उग्र तपश्चरणके धारक मुनिकैं कोऊ क्षेत्रमें रोग मारी दुर्भिक्षादिकरि लोकनिकैं दुःखी देखि उपजी करुणा अत्यन्त उपजिआवे तदि दक्षिणस्कंध तें तैजसपिंड निकलिकरि बारह योजन प्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटि आत्मा में प्रवेश करै सो शुभ तैजस है ॥ अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपर अत्यन्त क्रोधित होय तदि अग्निके प्रमाणतें वामस्कंध "धन सिंदूर समान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माके प्रवेश निकसै सो भावि में वी सूच्यंगुलके असं ख्यातवांभाग प्रमाण अर अंत पर्यन्त प्रमाण अथवा काहलके (=बिलावके) आकार निकसि बारह योजन प्रमाण समस्त जीव पुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेश करि मुनिकूं भस्म करै है सो मुनि वा मरणकूं प्राप्त होवै है" ॥ ऐसा शुभ अशुभ निःसरण स्वरूप तैजस शरीर है ॥ अर अनिःसरण स्वरूप तैजस समस्त संसारी जीवनिकैं देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नाहीं है। देखो अध्यात्मप्रकाशिकामें सूत्र४६ ॥ (२ तृतीयवर्ष गुरुके प्रथम तैजसके कथन से पहिले आहारकका कथन होना चाहिये,परंतु लब्धिप्रत्ययकी अनुवृत्ति लेनेके लिये "तैजसमपि" प्रथम कहा पीछे आहारक (३) हमारे पाठ सर्वत्र एक है ॥ सभाष्य० में "प्रमत्त संयतस्यैव" के स्थान में "चतुर्दशपूर्वधरस्यैव" पाठ है । शेष पाठ एक है ।

... निमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकार ॥

सर्वं वैक्रियिकं वेदितव्यम् ॥ यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं, ... नि किमविशेषेण भवन्ति, अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

चशब्देन वैक्रियिकमभिसम्बध्यते। तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिः प्रत्ययः कारणमस्य लब्धिप्रत्ययम्। वैक्रियिकं लब्धिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्॥ वैक्रियिकम्॥ वेदितव्यम्॥ यदि औपपादिकम्॥ वैक्रियिकम्॥ अन् औपपादिकस्य॥ वैक्रियिकत्व अभावः॥ इति अतः आह — =समस्त वैक्रियिक(शरीर) जान लियेजाना चाहिये। जो उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तो उपपादजन्म न होनेवालेके वैक्रियिकपना का अभाव होगा। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् (१) लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्ययं च(वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थ —लब्धि-प्रत्ययम्॥ च वैक्रियिकम्॥ भवति =तपोविशेषरूप ऋद्धिकी प्राप्ति(=लब्धि) है कारण जिसका ऐसा भी वैक्रियिक(शरीर) होता है

इत्यनुवाद —च शब्देन॥ वैक्रियिकम्॥ अभिसंबध्यते =(इससूत्रमें) च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर संबंधित है या लियागया है अर्थात् तपके द्वारा उत्पन्नहुई ऋद्धिके निमित्तसे भी वैक्रियिक शरीर मनुष्य, तिर्यंचके होता है तपस-विशेषात्॥ ऋद्धिप्राप्ति॥ लब्धिः॥ लब्धिः =तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है। लब्धि है प्रत्ययः॥ कारणम्॥ अस्य॥ लब्धि-प्रत्ययम्॥ =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है वैक्रियिकम्॥ लब्धिप्रत्ययम्॥ च भवति इति =वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा अभिसंबध्यते। किं॥ एतद्॥ एव लब्धि-अपेक्षम्=सम्बंध कियागया है। क्या यह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिके निमित्तसे है उत अन्यत् अपि अस्ति इति अतः आह =या और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय) है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् तैजसमपि(२) ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीर लब्धिप्रत्ययं भवति) ॥ ४८ ॥

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है। इससूत्रमें वैक्रियिक शब्दकी अनुवृत्ति ...
(२) ... इस सूत्र ... नहीं दिया है ... इत्यादि सूत्रकी व्याख्यामें तैजसमपि शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति ...

तन्तूना कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणान्यस्य व्याघात । नाप्यन्येनाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थं चशब्द क्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ, निर्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम्॥कार्पास-व्यपदेशवत्॰ =(कपासके) धागे या डोरोंको कपास कहनेके सदृश है भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और 'कार्पासा तांतवः' तंतु कपास हैं ऐसा संसारमें व्यवहार होता है वैसही आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल या स्वच्छ(=अवद्यस्य)निर्दोष(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये वह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः॰व्याघात अभावात्॥ अव्याघाति ॥ =दोनों रीतिसे रुकावट अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न॰हि॰आहारक-शरीरेण॥अन्यस्य॥व्याघातः॥ =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न॰अपि॰अन्येन॥आहारकस्य॥ इति॰ =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट या प्रतिघात) होता है

तस्य॥प्रयोजन समुच्चय अर्थः॥चशब्दः॥क्रियते। =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा॰कदाचित्॰लब्धि विशेष-सद्भाव ज्ञापन-अर्थम्॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेषकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय या निश्चयकरनेके लिये

कदाचित्॰सूक्ष्म-पदार्थ निर्धारण अर्थम्॥

च॰संयम-परिपालन अर्थम् ॥ =और(=च) (कभी) संयमकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेष लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थंकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विषयक शंका हो जाय कि जिसका समाधान केवली या श्रुतकेवलीके बिना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विराजमान हों

...नमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकार ॥

...नि किमविशेषेण भवन्ति,

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेश । शुभकर्मण आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते । अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत्॥ विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेश । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मण अशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते ।

प० विशुद्धम् ।¹ =विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध वा निर्दोष कर्मका कार्य है और (=च)

अव्याघाति ।¹ =किसीदूसरेद्वारा रुकनेवाला नहीं है अन्यकिसी दूसरेको रोकनेवाला भी नहीं है (और)

प्रमत्तसंयतस्य ।¹ मुने ।¹ एव भवति । =प्रमत्तसंयमी छट्वां गुणस्थानवर्ती मुनियोंही (=एव) होता है । अन्य किसी दूसरे गुणस्थानवर्ती मुनिके नहीं होता है । उक्तमुनिके औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर तो होते ही हैं । परंतु सब प्रमत्तसंयमी मुनियोंके आहारक नहीं होता है

इत्यनुवाद –शुभ–कारणत्वात्।¹ शुभ–व्यपदेश ।¹ =शुभका कारण होनेसे (आहारक शरीर इससूत्रमें) शुभ-ऐसा नाम है (अर्थात्)

शुभ-कर्मण ।¹ आहारककाययोगस्य ।¹ कारणत्वात् ।¹ =आहारककाययोगके शुभकर्मका निमित्त होनेसे

शुभम् ।¹ इति उच्यते । =(इसके होते) शुभ प्रकृतियोंका बन्ध होता है (जिससे) शुभ ऐसा कहलाता है

अन्नस्य ।¹ प्राण–व्यपदेशवत् ॥ =अन्नको प्राण कहनेके समान है अर्थात् जैसे अन्न है सो प्राण यथार्थमें नहीं है परन्तु प्राणके रखनेका कारण है वैसेही आहारक शरीर वास्तविकमें शुभ नहीं है शुभका कारण है अन्नको प्राण कहना और आहारक को शुभ कहना दोनों स्थानोंमें कारणमें कार्यका उपचार वा व्यवहार किया है

विशुद्ध कार्यत्वात् ।¹ विशुद्ध–व्यपदेश ।¹ =निर्दोष(=विशुद्ध)कार्यहोनेसे (इससूत्रमें) विशुद्धऐसा नाम (आहारक शरीरका) है ।

विशुद्धस्य ।¹ अशबलस्य ।¹ निरवद्यस्य ।¹ =विशुद्ध, विशदवा निर्मल (=अशबलस्य) पाप रहित (निरवद्यस्य)

पुण्यस्य ।¹ कर्मण ।¹ कार्यत्वात् ।¹ विशुद्धम् इति उच्यते =पुन्यकर्मका (आहारक काययोगके) कार्यहोनेसे विशुद्ध ऐसा कहा जाता है

उक्त सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जहां आहारक शरीर के स्वामी का कथन किया है वहां 'आहारक के स्वामी चौदह पूर्वके धारक संयत मनुष्य हैं' ऐसा वाक्य पृष्ठ ८८ में लाते हैं इस से प्रगट है कि श्वेताम्बर समाज में प्रमत्त संयमी और अप्रमत्त संयमी दोनों गुण स्थान वर्तियों मुनियोंके आहारक शरीर होता है हमारे यहां केवल प्रमत्त संयमी छठवें गुण स्थानवर्ती मुनियों ही मस्तक से उत्पन्न होता है ॥

तन्तूना कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणा-न्यस्य व्याघात । नाप्यन्येनाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थं चशब्दः क्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ, निर्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम्॥कार्पास-व्यपदेशवत्॥ =(कपासके) धागे या डोरोंका कपास कहनेके सदृश है भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और 'कार्पासाः तंतवः' तंतु कपासहैं ऐसा संसारमें व्यवहार होताहै वैसेही आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल या स्वच्छ(=अशबलस्य)निर्दोष(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये यह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः॥व्याघात अभावात्॥ अव्याघाति ॥ =दोनों रीतिसे रुकनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न॥हि॥आहारक-शरीरेण॥अन्यस्य॥व्याघातः॥ =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न॥अपि॥अन्येन॥आहारकस्य॥ इति॥ =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट या प्रतिघात)होता है

तस्य॥प्रयोजन-समुच्चय-अर्थः॥चशब्दः॥क्रियते ॥ =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा॥कदाचित्॥लब्धि-विशेष-सद्भाव ज्ञापन-अर्थम्॥कदाचित्॥सूक्ष्म-पदार्थ-निर्धारण-अर्थम्॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेषकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय या निश्चयकरनेके लिये

च॥संयम-परिपालन अर्थम् ॥ =और(=च) (कभी) संयमकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेष लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनेके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थंकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विषयक शंकाहो जाय कि जिसका समाधान केवली वा श्रुतकेवलीके बिना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विराजमान हों

——नि किमविशेषणं भवन्ति,

आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नाय ॥यदाऽऽहारकशरीरं निर्वर्तयितुमारभते,तदा प्रमत्तोभवतीति प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते ॥इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्।यथैव विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येतिमैव विज्ञायि,प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेतिमाभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति॥एवं विभक्तानि शरीराणि विभृता संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्ग-

यहां उनके जानेकी इच्छा होजाय और यदि मैं औदारिक शरीरसे जाऊंगा तो जीवोंका विघातरूप महा-असंयम होगा ऐसा विचारकर वह मुनि औदारिक शरीरसे जाना उचित न समझें उस समय वह संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीरका निर्माण करते हैं,इसलिये संयमकी रक्षाभी आहारक शरीरका प्रयोजन है ॥

प्राग्-उक्तस्य॥आहारकम्॥इतिम्आम्नायः॥ =पहिले जो उपर्युक्त कहेहुये(शुभ-विशुद्ध अव्याघाति)को(केलिये सूत्रमें)आहारकऐसापाठहै

अर्थात् आहारकशरीर शुभ,विशुद्ध,अव्याघाति है यह बतानेको सूत्रमें 'आहारक'काग्रहण है

यदा॰आहारकशरीरम्॥ निर्वर्तयितुम्॥ =जिस समय (मुनि) आहारक शरीर रचनको (=निर्वर्तयितुम्-हेत्वर्थकृदन्त है)

आरभते।तदा॰प्रमत्त॥भवति ।इति॰ =आरम्भ करता है। तब (वह मुनि) प्रमादसहित वा प्रमादयुक्त होता है ॥

(क्रियारूप प्रवर्तनेको यहां प्रमादकहा है नकि अविरतकीज्यों प्रमादहोता है तिसकोकहा)

प्रमत्तसंयतस्य॥इति॰उच्यते । =(इसलिये) प्रमत्तसंयमीमुनिकें (=प्रमत्तसंयतस्य)ऐसा (वाक्य सूत्रमें) कहा गया है

इष्टतः॰अवधारण-अर्थम्॥एवकार उपादानम्॥ =वाञ्छित नियमकेलिये (सूत्रमें) 'एव'शब्दका ग्रहण है

यथा॰एवम्॰विज्ञायेत।प्रमत्तसंयतस्य॥ =क्योंकि (=यथा) ऐसा जाना (विज्ञायेत) कि प्रमत्तसंयमी(मुनि) कें

एव॰आहारकम्॥न॰अन्यस्य॥इति॰ =ही आहारक शरीर होता है नकि और किसी (गुणस्थानवर्ती) मुनिकें

मा॰एवम्॰विज्ञायि।प्रमत्तसंयतस्य॥ =इस प्रकार न जाना कि प्रमत्तसंयमी(छठ्ठागुणस्थानवर्ती) मुनिकें

आहारकम्॥एव॰इति॰ माभूत् । =केवलएक(=एव) आहारक शरीर है। (क्योंकि उक्तमुनिकें) नहीं होगया है (माभूत्)

औदारिक-आदि-निवृत्तिः॥ इति॰ =औदारिक शरीर,तैजस कार्मण शरीरोंका (=आदि) निषेध ॥

एवम्॰विभक्तानि॥शरीराणि॥बिभ्रताम्॥ =इसप्रकार भिन्न भिन्न या पृथक् पृथक् शरीर धारणकरनेवाले(=बिभ्रताम्)

संसारिणाम्॥ प्रतिगति॰किम्॰त्रिलिङ्ग- =संसारी (जीव) तिनकी प्रत्यकगतिमें क्या तीनोंवेद (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) के

(१)'मा निरव याभी भव्ययहै लुङ(प्रकरणीभूत क्रिया)केसाथ आनेपर लुङ के'अट्(अ कोलोप होताहै'भू'का लुङ् एकवचन अभूत् होजाता'अ'आताहै

(२) प्रतिगति'अव्ययीभाव समास है। प्रत्यादि शब्दोंमें अम्(=म)का आदेश होताहै। इत्यादि उदाहरण इसमें शब्दोंकी विभक्तिलोपका लोप होजाताहै

सन्निधान, उत लिङ्गनियम कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारका। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिन। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्च्छिन ॥ चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमांस इति नपुंसकानि भवन्ति ॥

सन्निधानम् =संनिकर्षण वा निकट है अर्थात् प्रत्येक गतिमें तीनों तीनों लिंग होते हैं

उत=लिङ्गनियमः=कश्चित्=अस्ति=इति=अतः आह =अथवा कोई और लिंगोंका नियम है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि =नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नपुंसकानि भवन्ति ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः–नारकाः=च=सम्मूर्च्छिनः=च= =नारकी जीव और सम्मूर्च्छन जीव भी

नपुंसकानि=भवन्ति =नपुंसक होते हैं। (उनमें कोईभीजीव स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नहीं होता है)

इत्यनुवाद–नरकाणि=वक्ष्यन्ते नरकेषु =नरक(तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रमें)कहेंगे। नरकविषें

भवाः नारका =जन्में वा उपजें वा होवें(=भवाः)वे नारक हैं॥

सम्मूर्च्छनम् सम्मूर्च्छः =अवयवसहितशरीरका आस्रता वा सर्वत्र बनजाना (=संमूर्च्छन) सम्मूर्च्छ है

सः=येषाम्=अस्ति=इति=सम्मूर्च्छिनः =सो(सम्मूर्च्छ=अवयवसहित सर्वत्र रचाहुआ शरीर) जिनकें हो ऐसे सम्मूर्च्छिन हैं

नारकाः=च=सम्मूर्च्छिनः=च=नारकसम्मूर्च्छिनः =तथा नारकी और सम्मूर्च्छिन हैं सो नारकसम्मूर्च्छिनः (द्वंद्वसमास पद सूत्रमें) है

चारित्रमोह–विकल्प–नोकषाय-भेदस्य =चारित्र मोहनीय कर्मका भेद (=विकल्प) जो नो कषाय तिस (नोकषाय) का भेद

नपुंसकवेदस्य=च=अशुभनाम्नः=उदयात् =नपुंसकवेद जो है तिसके और (=च) अशुभनामक नामकर्मके उदयसे

न=स्त्रिय=न=पुमांसः=इतिनपुंसकानि=भवन्ति=न स्त्रियां हैं नपुरुष हैं ऐसे नपुंसक होते हैं भावार्थ मोहनीयकर्म

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२)नोकषाय वेदनीय=ईषत्कषाय वेदनीय=अकषाय वेदनीय एकार्थवाची नामहैं
(३) स्त्री शब्दका बहुवचन स्त्रीलिंग लिया है॥ (४) पुंस् (मनुष्य) शब्दका पुल्लिंग बहुवचन पुमांस है॥

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकान्येवेति नियम ॥ तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूप रसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपि सुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवधियते, अर्थादापन्नमेतदुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति॥ यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह

दा प्रकारका है एक दर्शन मोहनीय दूसरा चारित्र मोहनीय । दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र मोहनीयके भी कषाय वेदनीय और नो कषायवेदनीय दो भेद हैं । नोकषाय वेदनीयके हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौभेद हैं इन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नामकर्म (इन दोनों) के उदय से जो जीव न स्त्री हों और न पुरुष हों वे नपुंसक होते हैं

नारक-सम्मूर्छिनः॥नपुंसकानि॥एव॥इति॥नियम ॥ =नारकजीव और सम्मूर्छिन जीव नपुंसकही हैं ऐसा नियम (स्वरूप कथन) है

तत्र ॥ हि ॥ स्त्री-पुंसविषय- =क्योंकि(=हि)उस अवसर में(=तत्र)अर्थात् नपुंसक भवमें,स्त्रीपुरुषसंबंधी(=विषय)

मनोज्ञ-शब्द-गन्ध-रूप- =मनोज्ञशब्द(कामुकता)मनोज्ञगन्ध(कार्सुधता)मनोहर(=मनोज्ञ) रूप (कादेखना)

रस-स्पर्श-सम्बन्ध- =इष्ट ,=मनोज्ञ) रस(काचाखना)और इष्ट(=मनोज्ञ)स्पर्श(कास्पर्शन करना)रूप(संबंध)

निमित्ता॥स्वल्प॥अपि॥सुखमात्रा॥न॥अस्ति॥ =कारणोंसे होनेवाला थोड़ा भीसुख(नारकी और सम्मूर्छिन जीवोंका) नहीं है

यदि॥एवम्॥ अवधियते ॥ =जो इसप्रकार निश्चय कियागया है(किनारक और सम्मूर्छिन नपुंसक हैं तो)

अर्थात्॥आपन्नम् ॥ एतद्॥ =अर्थसे यह(=एतद्)प्राप्तहोता है(=आपन्न)कि भावार्थ अर्थापत्तिप्रमाणसे (नकहेगये पदार्थका समझनेवाला ज्ञानसे)यह निकलता है कि

उक्तेभ्यः॥अन्ये॥ =कहेहुए(नारक और सम्मूर्छिन जीवों)सिवे अवशेष या बचेहुये (=अन्य)

संसारिणः॥त्रि-लिङ्गाः॥इति॥यत्र॥अत्यन्तं॥ =संसारीजीव तीन लिंगवाले हैं । जहां (जिसजन्ममें) अत्यन्त या अतिशय

नपुंसकलिङ्गस्य॥ अभावः॥तत्- =नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है । तिस (अत्यन्त नपुंसक लिंगके अभाव)के

प्रतिपादन-अर्थम्॥ आह ॥ =समर्थनके लिये या स्पष्टीकरणके लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥

स्त्रैणं पौंस्नं च यन्निरतिशयं सुखं सुर(शुभ)गतिनामोदयापेक्षं, तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति ॥ अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्—(१)नदेवा ॥ ५१ ॥	=न देवा (नपुंसकानि भवन्ति) ॥५१॥
सूत्रार्थ—न॰देवाः॥ नपुंसकानि॥॥भवन्ति T	=(भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, और कल्पवासी) देव नपुंसक लिंगी नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं
इत्यनुवाद—स्त्रैणं॥॥पौंस्नं॥॥च यत् निरतिशयं॥॥सुखम्॥॥	=स्त्री संबंधी तथा पुरुष संबंधी जो परमोत्कृष्ट(=निरतिशय पक्षक्षेत्र२१४)सुख है और
सुर(शुभ)॰गतिनाम-उदय—अपेक्षम् ॥॥	=भा(भली वा अच्छी)सुरगति नामक (नामकर्मकी प्रकृतिके) उदयकी विवक्षासे है
तद्॰देवाः॥अनुभवन्ति T इति॰तेषु॥	=तिस (सुख)का देव भोगते हैं वा अनुभव करते हैं। उन (देवों) में
नपुंसकलिङ्गानि ॥॥न॰सन्ति T	=नपुंसकलिंग नहीं है (केवल स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)
अथ॰इतरे॥ (२) कियत्-लिङ्गाः॥ इति॰अतः॰आह T	=अब अन्य(नारक, सम्मूर्च्छिन, देवोंके अतिरिक्त)कितने लिंगवाले हैं इसलिये कहते हैं कि
सूत्रम्-शेषास्त्रिवेदा (३) ॥ ५२ ॥	=शेषा जीवा त्रिवेदा भवन्ति ॥ ५२ ॥
सूत्रार्थ—शेषाः॥ जीवाः॥	=बचहुये जीव (अर्थात् नारक, सम्मूर्च्छिन और चारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त जो कर्मभूमिके गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच वे स्त्री पुरुष-नपुंसक)

(१) श्वेताम्बराचार्योंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है (२) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें तथा हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिमें "शुभगतिनामोदयापेक्ष" इत्यादि पाठ है'सुर'शब्द नहीं है पं० पन्नालाल सूनीवालोंने 'शुभगतिका और शुभनामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जिनके' इत्यादि अनुवाद किया है अर्थात् शुभगति और शुभनाम कर्म दोके उदय की अपेक्षा मानी है 'सुर'शब्द होनेसे हमने केवल सुरगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है मुद्रित प्रतिके द्वितीय संस्करणमें "गति नामोदयापेक्ष" पाठ है। (३) कियत् त्रिलिंगी शब्द है कियान् प्रथमाविभक्ति पुलिंग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है और कियत् प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग है यहां पर बहुवचन में प्रयोग है अर्थात् 'कियल्लिङ्गाः' कितने लिङ्गवाले हैं इसलिये हमने इस'कियल्लिङ्गा'को समास मानकर अनुवाद किया है। (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें यह सूत्र नहीं है। भाष्यकारने भाषा में इस सूत्रका आशय देदिया है। 'शेषास्त्रिवेदाः' यह सूत्र पं० सदासुखजी कृत सूत्रपाठ में प्रयुक्त है।

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदा ॥ के पुनस्ते वेदा । स्त्रीत्वं,पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति ॥ कथं तेषां सिद्धि । वेद्यत इति वेद । लिङ्गमित्यर्थ ॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति ॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम् ॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम् ॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री । पुंवेदोदयात् सूते

त्रि-वेदाः ॥ भवन्ति ॥	=तीनों लिंगवाले या तीनों लिंगवान होते हैं (परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंके और म्लेच्छखंडके स्त्रीपुरुषोंके पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं । देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र १)
तत्त्वानुवादः-त्रयः॥ वेदाः॥ येषाम्॥ ते॥ त्रिवेदाः॥	=तीनों लिंग या वेद जिनके वे त्रिवेदा हैं(यह त्रिवेदापदकाविग्रह या समासका अर्थ बतानेवाला वाक्य है)
के॥ पुनः-तन्॥ वेदाः॥ स्त्रीत्वम्॥ पुंस्त्वम्॥	=पुनि वे लिंग कोन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपन अर्थात् पुल्लिंग
नपुंसकत्वम्॥ इति॥ कथम्॥ तेषाम्॥ सिद्धिः॥	=नपुंसकपन या क्लीवत्व ऐसे हैं । उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति या व्युत्पत्ति है
वेद्यते ॥ इति॥ वेदः॥	=जो "वेदिये" ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवकियाजाय"(=वेद्यते) ऐसा वेद है
लिङ्गम्॥ इति॥ अर्थः॥ तत्॥ द्विविधम्॥	=लिंग ऐसा अर्थ या अभिप्राय है । वह लिंग दो प्रकार है
द्रव्यलिङ्गम्॥ भावलिङ्गम्॥ च॥ इति॥ द्रव्यलिङ्गम्॥	=द्रव्यलिंग और(=च) भावलिंग ऐसा है । द्रव्यलिंग यह है
योनि-	=जो(तिर्यचनी वा स्त्रीके) भग और
मेहन-आदि-नामकर्म-उदय-निर्वर्तितम्॥	=(मनुष्य वा तिर्यंचके) लिंग(=मेहन) आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित या [रचित है अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है
नोकषाय उदय आपादित-	=(स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद)नो कषाय(चारित्र मोहनीयकर्म)के उदयसे प्राप्तहुआ(=आपादित)
वृत्ति॥ भावलिंगम्॥	=आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) सो भावलिंग है अर्थात् नोकषाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुकूल इच्छाका होना सो भावलिंग है
स्त्रीवेद उदयात्॥ स्त्यायति॥ यस्याम्॥ गर्भः॥	=स्त्रीवेदके उदयसे इकट्ठा होता है सिमटता है वा ठहरता है (=स्त्यायति) गर्भ जिसमें
इति॥ स्त्री॥ पुंवेद उदयात्॥ सूते॥	=ऐसी स्त्री है । पुरुषवेदके उदयसे उदरमें (=सूते)

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, बालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति। अपत्यम्॥ इति॰पुमान्॥ । नपुंसक =सन्तानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक
वेद उदयात्॥ तद्–उभय- =वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी)
शक्ति-विकलम्॥ नपुंसकम्॥ रूढि शब्दाः॥ च एते॥ =शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री–पुरुष–नपुंसक) रूढि शब्द हैं
[1]रूढिषु॥ च॰क्रिया॥ व्युत्पत्ति-अर्थ-एव॰ =और(=च)रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (=एव)के लिये है
यथा॰गच्छति। इति॰गौः॥ इति॰ =जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै आचार्य यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावे तो गाय(पशु)जिससमय चले फिरे उसकाल ही गो कहना चाहिये और वही(पशु) जिस काल सोता हो लखाहो, लेटाहो, बैठाहो, उस समय व्युत्पत्तिके अनुसार गो नहीं कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वकालमें रूढि वा प्रसिद्धके वशसे उस पशुको गो कहते हैं अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युत्पत्ति मात्र ही है ॥
इतरथा॰हि॰ =क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावे तो
गर्भ-धारण आदि-क्रिया-प्रधान्ये ॥॥ =गर्भधारणक्रियाको तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यही मानमानें कि जब गर्भधारणकी सामर्थ्य है तब स्त्री है चलते-फिरते-बैठते-उठते-रसोई बनाने इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं हैं और जब संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तबहीपुरुष् वेदीहै अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
बालवृद्धानाम्॥ [2]तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्॥ च॰ =बाल-वृद्ध तिर्यंचोंके और बालवृद्ध मनुष्योंके और देवोंके और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम् ॥ =कार्मणकाययोगमें स्थिति जीवोंके अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिंग है परंतु यहां पर 'शब्दों' ऐसा इसके आगे छिपा हुआ है । अब है'रूढि शब्दों' में ...
(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेंयहां पर उपलक्षणरूपमें प्रयोग किये गये ...

—न्ति किमविशेषेण भवन्ति,

त्रयो वेदा येषा ते त्रिवेदा ॥ के पुनस्ते वेदा । स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति ॥ कथं तेषां सिद्धिः । वेद्यत इति वेदः । लिङ्गमित्यर्थः ॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति ॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम् ॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम् ॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री । पुंवेदोदयात् सूते

त्रि-वेदाः ॥ भवन्ति ॥	=तीनों लिंगवाले या तीनों लिंगवान होते हैं (परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंमें और म्लेच्छखंडके स्त्रीपुरुषोंमें पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं । देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र५१)
इत्यनुवाद—त्रयः ॥ वेदाः ॥ येषाम् ॥ ते ॥ त्रिवेदाः ॥	=तीनहैं लिंग या वेद जिनके वे त्रिवेदा हैं (यह त्रिवेदापदका विग्रह या समासका अर्थकापोतकवाक्य है)
के ॥ पुनः ॥ ते ॥ वेदाः ॥ स्त्रीत्वम् ॥ पुंस्त्वम् ॥	=पुनि वे लिंग कौन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपन अर्थात् पुल्लिंग
नपुंसकत्वम् ॥ इति ॥ कथम् ॥ तेषाम् ॥ सिद्धिः ॥	=नपुंसकपन या क्लीबत्व ऐसे हैं । उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति या व्युत्पत्ति है
वेद्यते ॥ इति ॥ वेदः ॥	=जो "वेदिये" ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवक्रियाजाय" (=वेद्यते) ऐसा वेद है
लिङ्गम् ॥ इति ॥ अर्थः ॥ तत् ॥ द्विविधम् ॥	=लिंग ऐसा अर्थ या अभिप्राय है । यह लिंग दो प्रकार है
द्रव्यलिङ्गं ॥ भावलिङ्गं ॥ च ॥ इति ॥ द्रव्यलिंगम् ॥	=द्रव्यलिंग और (=च) भावलिंग ऐसा है । द्रव्यलिंग यह है
योनि-	=जो (तिर्यंचनी या स्त्रीके) भग और
मेहन-आदि-नामकर्म-उदय-निर्वर्तितम् ॥	=(मनुष्य या तिर्यंचके) लिंग (=मेहन) आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित या [रचित है अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है
नोकषाय-उदय-आपादित-	=(स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेद) नो कषाय (चारित्र मोहनीयकर्म) के उदयसे प्राप्तहुआ (=आपादित)
वृत्तिः ॥ भावलिंगम् ॥	=आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्तिः) सो भावलिंग है अर्थात् नोकषाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुरूप इच्छाका होना सो भावलिंग है
स्त्रीवेद उदयात् ॥ स्त्यायति ॥ यस्याम् ॥ गर्भः ॥	=स्त्रीवेदके उदयसे इकट्ठाहोता है तिष्ठता है या ठहरता है (=स्त्यायति) गर्भ जिसमें
इति ॥ स्त्री ॥ पुंवेद उदयात् ॥ सूते ॥	=ऐसी स्त्री है । पुरुषवेदके उदयसे जनमें (=सूते)

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, वालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति। अपत्यम्॥ इति॥ पुमान्॥ । नपुंसक	=सन्तानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक
वेद-उदयात्॥ तद्-उभय	=वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी)
शक्ति-विकलम्॥ नपुंसकम्॥ रूढि शब्दाः॥ चएते॥	=शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री-पुंस्-नपुंसक) रूढि शब्द हैं
(१)रूढिषु॥ च॥ क्रिया॥ व्युत्पत्ति-अर्थ-एव॥	=और(=च)रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (=एव)के लिये है
यथा॥ गच्छति। इति॥ गौः॥ इति॥	=जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै भावार्थ यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावे तो गाय(पशु)जिससमय चले फिरे उसकाल ही गौ कहना चाहिये और यदि(पशु) जिस काल सोता हो खड़ाहो, बैठाहो, उस समय व्युत्पत्तिके अनुसार गौ नहीं कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वकालमें रूढि वा प्रसिद्धि वशसे उस पशुको गौ कहते हैं अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युत्पत्ति मात्र ही है ॥
	=क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावे तो
इतरथा॥ हि॥ गर्भ-धारण आदि-क्रिया-प्राधान्ये ॥	=गर्भधारणक्रियाको तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यदी मानमानें कि जब गर्भधारणकी सामर्थ्य है तब ही है चलते-फिरते-बैठते-उठते-रसोई बनाते इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं है और जब संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तबही पुंस् वेदी है अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
वालवृद्धानाम्॥ (२)तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्॥ च॥	=बाल-वृद्ध तिर्यंचोंके और बालवृद्ध मनुष्योंके और देवोंके और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम् ॥	=कार्मणकाययोगमें स्थित जीवोंके अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिंग है परंतु यहां पर 'शब्दों' ऐसा इसके आगे लिया हुआ है । अत हैं'रूढि शब्दों' में इसलिये हमने पुलिंग में रक्खा है ।
(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेंयहां पर उपलक्षणरूपमें प्रयोग किये गयेहैं । उपलक्षण=पास रहनेहारे और अपनेसे सम्बन्ध-

तद्‌भावात्स्त्रीत्वादिव्यपदेशो नस्यात्

तद् अभावात् ॥ =इस (गर्भधारण और सन्तान उपपादन क्रिया) के अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे

स्त्रीत्व आदि-व्यपदेशः ॥ =स्त्रीपणा और पुंसपनाका नाम वा कथन (स्त्री-पुंसकी व्युत्पत्ति पृष्ठ १२२, १२३ में देखो)

न स्यात् ॥ =नहीं होसकेगा भावार्थ इसका यह है स्त्यायति यस्यां गर्भ इति स्त्री=स्थितिहोता है गर्भ जिसमें वह स्त्री है और सूते जनयति अपत्यम् इति पुमान् = उदरमें संतानको उपजावे सो पुमान् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन पुल्लिंग पुमान् है (=पुरुष, मनुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रधानतासे नहीं है, यदि उन्हें मुख्यतासे माना जायगा तो जिस समय गर्भधारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होंगी उसी समय स्त्री पुंस् आदि उनको कह सकते हैं किन्तु बालक, बालिकायें, वृद्ध पुरुष, वृद्ध तिर्यंच, वृद्ध तिर्यंचनी, तिर्यंच तिर्यंचनियोंके बच्चे और देवी देवताओंको और विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भधारण सन्तान उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं कहसकते इसलिये स्त्री, पुरुष, गौआदिक शब्द रूढि हैं १ यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिसहित सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनों स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोंमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है। पुरुषवेदको फूंसकी अग्नि सदृश माना है और

रक्षा वालेका काम जिससे हो। जैसे "कौओंसे दही बचाया जाय" यहां कौआ पद अपने और अपने से भिन्न कुत्ते बिल्ली आदिका भी बोधक है॥ "कौओं से दही बचाया जावे "इसका यह सारांश है कि दही की रक्षा केवल कौओं से ही न कीजाय वरन् जितने भी कुत्ते-बिल्ली-बंदर और इतर जीव जो दही का बिना किसी स्वत्वके नाजायज रूप से उसको बचाया जाय॥ इसी प्रकार उक्त वाक्य में तिर्यंच तिर्यंचनी उनके बच्चे मनुष्य, मनुष्यणी उनके बच्चे देवी देव इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर रूढि में माने जाते हैं और उक्त सूत्र से संबंधित हैं सब आजाते हैं॥ अथर्वंशराय जीन "रूढि शब्दाप्वैते" से "व्यपदेशो न स्यात्" तक की (इस अनुवाद के देखो पृष्ठ १२३ १२४) वचनिका में मनुष्य और तिर्यंच और देव शब्दको ध्यान में न रखकर उनकी स्त्रियों पर वाक्यों को ऐसा संबंध किया है कि स्त्री पुरुष नपुंसक इनिकी संज्ञा है ना रूढि शब्द रूप है। रूढि शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये है सो सिद्ध व्युत्पत्तिमात्र प्रयोजनके अर्थि ही है। जैसे गऊ शब्द की निरुक्ति करिये जा जातें शब्द गऊ कहिये। सो यहां निरुक्ति रूढिहीतें जाननी। जातें बैठा सोवता गऊका भी गऊही कहिये। ऐसे रूढि जाननी। जो ऐसे न मानिये तो गर्भ धारण क्रियाहीकूं प्रधान मानिये तो बाल स्त्री तथा वृद्ध स्त्री तिर्यंचनी मनुष्यणी तथा देवांगना तथा कार्मण काययोग विषें अंतरालमें तिष्ठती स्त्रीनिकें गर्भ धारण नाहीं तब स्त्री पणाका नाम न ठहरे। तथा पुमानिक उपजावै बिना इनिका पुरुष पणाका नाम न ठहरे। तातें उहां नाम तिनै रूढी ही प्रधान है॥ वचनिका पृष्ठ १२४ (१) यौगिक-धातु और प्रत्यय से अपना पहले योग्य अर्थको बतलाने द्वारा शब्द अर्थात् दो या अधिक शब्दों से मिलकर बना हो जैसे विद्यालय जीवधारी जलचारी दयासागर उसके सहित द्वन्द्व समास तीन भेद हैं

त एते त्रयो वेदा शेषाणा गर्भजाना भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्बन्धाहित-विशेषा प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मवशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

नपुंसक वेदका ईटकी अग्निके अर्थात् अवेकी अग्निके समान मानाहै सारांश यहहैकि पुरुषकी कामाग्नि फूंसकी अग्निके समान जल्दी शांत होजाती है। अगारकी अग्नि गुप्त और कुछ ठहरनेवाली होती है। इसलिये स्त्रीकी कामाग्नि कुछ कालतक ठहरनेवाली होती है। जहां पर ईंट पकाई जाती है उस भट्टेकी आग बहुत कालतक रहती है और सर्वदा धधकती रहती है इसलिये नपुंसककी कामाग्नि अधिक कालतक रहती है।

ते॥एते॥त्रय॥वेदा॥शेषाणाम्॥गर्भजानाम्॥ भवन्ति। ये॥इमे॥जन्म-योनि-शरीर-लिंग-सम्बन्ध-आहित-विशेषा॥ प्राणिन॥ देव-आदय॥ निर्दिश्यन्ते। विचित्र-धर्म-अधर्म-वशीकृता॥ चतसृषु॥गतिषु॥शरीराणि॥ धारयन्त॥ ते॥किम्॥उपभुक्त-आयुष॥यथाकालम्॥ मूर्त्यन्तराणि॥आस्कन्दन्ति। उत॥अयथाकालम्॥अपि॥इति॥अत॥आह।

=सो ये तीन (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) लिंग अवशेष जे गर्भज उनकें होते हैं ॥ जो ये जन्म, उत्पत्तिस्थान (=योनि), शरीर और वेदोंका सम्बन्धकरि =धारणकिये हैं (=आहित)भेद प्रभेद (=विशेष) जिननें ऐसे प्राणी देवादिक =दिखाये गये हैं या उल्लेख किये गये हैं ते नानाप्रकारके पुन्य और पापोंके वशीभूत =चारोगतिमें शरीर धारणकरनवाले =क्या वे पूर्ण भुज्यमान आयुवाले होते हैं और ठीक समयपर (=यथाकालम्) =अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते हैं अथवा ग्रहणकरते हैं अर्थात् वे देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी,आदि जितनी आयु बांध चुके हैं उतनी आयुके पूर्णहोजानेपर वर्तमान शरीरको छोड़कर मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं =वा बिना आयु पूर्णकिये भी (अन्य शरीरोंको धारण करते हैं) इसलिये[१]कहते हैं कि

(१) स्मरण रहै कि श्रेपनवां सूत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और अन्वेषण से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पाठकों को पढ़ना चाहिये नहीं तो कुछ इच्छित परिणाम न होगा॥ कोई पाठक यदि इसपर भिन्न प्रकाश डालें तो वे मुझको कृपया सूचितकरें॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ[१])औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १८३ १८४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में चरमदेहा इति वा पाठः अर्थात् "चरमोत्तम देहाः के स्थानमें किन्हींप्रतियोंमें चरमदेहा ऐसा पाठ है। दोनपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में चरमदेहा इति केषाचित् पाठः" अर्थात् 'चरमदेहा 'ऐसा पाठ किन्हींका है। 'चरमोत्तमदेहाः अस्मिन् स्थाने चरमदेहेति केचित् पठन्तीति' ='चरमोत्तमदेहा'ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ"चरमोत्तमदेहाः"के स्थानमें "चरमदेहा 'उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जावगा इसलिये यहपाठ एक ही रहा। द्वितीय पाठ यही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) [illegible] "औपपादिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वीं है॥ 'औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। चरमोत्तमदेहाः या 'चरमदेहाः के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः है। दोनपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ सबमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें'चरमदेहाः और चरमोत्तमदेहा' मेसे "चरमदेहा" का अर्थ,चरमशरीरी अन्तिमशरीरवाले उसीदेहसे मोक्षजानेवाले तद्भवमोक्षगामी जो वर्तमान शरीर है वह संसारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह या शरीरसे मोक्षजावेंगे इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ४३ में उत्तमग्रहणं चरमस्यानुत्तमत्वयुदासार्थ =सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमी की अपेक्षाके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमी या तद्भवमोक्षगामीके सर्वथ उत्तम (वज्रवृषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त)शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः)सर्वथ उत्तम शरीरका धारक होगा। पंचाध्यायीकी पृष्ठ ७९। तत्त्वार्थराजवार्तिक [illegible] में लिखते हैं कि वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त होजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने 'चरमदेहाः इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो उत्तम' शब्दका ग्रहण किया गया है वह केवल चरम शरीरका स्वरूप प्रगट करनेके लिये हैं ॥ 'चरमोत्तमदेहाः वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि प्रकाशमान' शब्द 'प्रकाशमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही प्रकाशहै उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने अनेकवार विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है ॥

[illegible] शेषा मनुष्यास्तिर्यञ्चाश्च । सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" =इनऔपपादिक चरमदेह और असंख्यातवर्ष आयुवालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यञ्च जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहितहैं वे अपवर्त्य आयुवाले और अनपवर्त्य आयुवाले भी होते हैं ॥ [illegible] इससे ये पता निकला कि जैसे हमारे यहां दैवगतकी चरमशरीरी भोगभूमिके मनुष्य तिर्यञ्च और कुभोगभूमियों ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुके परिपूर्णताके ही अनन्तर शरीरका त्याग करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायमें

सूत्रार्थ –औपपादिक– =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम-उत्तम १-देहाः॥– =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम मोक्षशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर या देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगया संसार जन्म जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय–वर्ष–आयुषः॥=असंख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्–अपवर्ति–आयुषः॥=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिक अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वस (• उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठ –औपपादिक =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः॥ (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह या शरीर कहलाता है) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा"का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सकते हैं अन्य नहीं और चरमदेहवाले कर्मभूमिक मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सकते हैं । शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है ॥ चरम=अंतकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर या देह ।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल येही अनपवर्त्य आयुष्वाले होते हैं। इसमें संदेहनहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असंख्येयवर्ष आयुष्वाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्वाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परंतु इस भाष्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य किया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम अर्धचक्री वासुदेव और वासुदेव व तिम भरतैकी तीर्थोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे ॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं है इस उत्तम शब्दके कारण भाष्यकारोंको अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके संबंधमें लिखना पड़ा है । प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतंत्रविचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) में चरम शब्द विशेषण है उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) में उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ(१))औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १८३ १८४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में "चरमदेहा इति वा पाठः" अर्थात् "चरमोत्तम देहाः" के स्थानमें विकल्पकरिके "चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। उपपाठ [illegible] है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में "चरमदेहा इति केचित् पाठः" अर्थात् 'चरमदेहाः' ऐसा पाठ कितनोंका है। "चरमोत्तमदेहा इति अस्मिन् स्थाने चरमदेहा इति केचित् पठन्ति" = 'चरमोत्तमदेहाः' ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ "चरमोत्तमदेहाः" के स्थानमें "चरमदेहाः" उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जावेगा इसलिए उपपाठ एक ही रहा ॥ द्वितीय पाठ वही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वीं है॥ 'औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। 'चरमोत्तमदेहाः' वा 'चरमदेहाः' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ सबमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें "चरमदेहाः" और "चरमोत्तमदेहा" मेंसे "चरमदेहा" का अर्थ चरमशरीरी अन्तिमशरीरवाले उसीभवसे मोक्षजानेवाले तद्भवमोक्षगामी, जो वर्तमान शरीर है वह संसारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह वा शरीरसे मोक्ष चलेजावेंगे इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ में "उत्तमग्रहणं चरमस्यानुत्तमत्वव्युदासार्थं" =सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमी की अपेक्षासे निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीके वा तद्भवमोक्षगामीके सर्वथ उत्तम (वज्रवृषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त) शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहा) सर्वथ उत्तम शरीरका धारक होगा। पं०गजाधरलालजी पृष्ठ ७६५ तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्कृत प्रकाशितमें लिखते हैं कि वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त होजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात् कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिए किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने 'चरमदेहा इति केचित्' पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो 'उत्तम' शब्दका ग्रहण कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहा' वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि 'प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही प्रकाशी है उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने यथोत्तर विद्वानोंके मतानुकूल "उत्तम" शब्दको अनावश्यक जान माना है॥

"एषु औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुषः शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" = इनमें औपपातिक,चरमदेह और असंख्येयवर्ष आयुवालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहित हैं वे अपवर्त्य आयुवाले और अनपवर्त्य आयुवाले भी होते हैं॥ सभाष्य०पृष्ठ ९१॥ इससे यह परिणाम निकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी चरमशरीरी भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियों ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुको पूर्ण करके ही वर्तमान शरीरका त्याग करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायमें [illegible]

सूत्रार्थः-औपपादिक- =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम-उत्तम १-देहाः- =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर या देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगा संसार जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय-वर्ष-आयुषः=असंख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्-अपवर्ति-आयुषः=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिक अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वस (=उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठ -औपपादिक =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह या शरीर कहलाताहै) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का यही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सक्ते हैं अन्य नहीं और चरमदेहवाले कर्मभूमिक मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सक्ते हैं । शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है ॥ चरम=भवकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर या देह ।

समाप्यतस्यार्था धिगमसूत्रके अनुकूल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं। इसमें संदेहनहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असंख्येयवर्ष आयुवाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुवाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परंतु इस पाठ्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम प्रह्लादक चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अवस्थाकी तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे ॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे यही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं है इस'उत्तम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके सबधमें लिखना पड़ा है । प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतंत्रविचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखदें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) में चरम शब्द विशेषणहै उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) में उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ[१])औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १८३ १८४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में" चरमदेहा इति वा पाठः अर्थात् "चरमोत्तम देहाः के स्थानमें विकल्पकरिके चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में " चरमदेहा इति केषाञ्चित् पाठः अर्थात् 'चरमदेहाः ऐसा पाठ किन्हींका है। 'चरमोत्तमदेहेति अस्मिन् स्थाने चरमदेहति केचित् पठन्तीति' ='चरमोत्तमदेहाः'ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईपक्ष पाठ मानते हैं। श्रुतसागरीटीका ॥ भावार्थ'चरमोत्तमदेहाः के स्थानमें "चरमदेहाः"उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जायगा इसलिये शेषपाठ एक ही रहा। द्वितीय पाठ यही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५२ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वी है॥ औपपादिक के स्थानमें 'औपपातिक' है। चरमोत्तमदेहाः या 'चरमदेहाः के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः है। शेषपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ सबमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें"चरमदेहाः और चरमोत्तमदेहाः' मेंसे 'चरमदेहा का अर्थ चरमशरीरी अन्तिमशरीरवाले इसीदेहसे मोक्षजानेवाले तद्भवमोक्षगामी, जो वर्तमान शरीर है यह संसारमें उनका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह या शरीरसे मोक्षजावेंगे इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४९ में'उत्तमग्रहणं चरमस्योत्कृष्टत्वख्यापनार्थं,,=सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमकी उत्कृष्टताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीकें या तद्भवमोक्षगामीके सदैव उत्तम (वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त)शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः)सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। पं०आशाधरलालजी पृष्ठ ७४। तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्कृत प्रकाशितमें लिखते हैं कि वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा इसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त होजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात् कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिए वार्तिककारने चरमदेहाः इति केषाञ्चित् पाठ ऐसाभी कहा है ॥ इसलिये सूत्रमें जो उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहाः वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे व्यर्थ है जैसे कि प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही प्रकाशमान है इसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तम है ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने यथोचित विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है ॥

"एभ्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्यो शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः। सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" =इनऔपपातिक चरमदेह,और असंख्येयवर्ष आयुवालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहित हैं वे अपवर्त्य आयुवाले और अनपवर्त्य आयुवाले भी होते हैं ॥ सभाष्य०पृष्ठ ६१ ॥ इससे ये फलनिकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी चरमशरीरी भोगभूमिके मनुष्य तिर्यच और कुभोगभूमियों ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुके परिपूर्णकालमें ही वर्तमान शरीरका त्याग करते हैं इसीप्रकार श्वेताम्बर [illegible]

पूर्ण पामी नगरपसहाय मवीलकृत पञ्चछत्र और निभरस्थय सहित सर्वार्थसिद्धिवचनिका शब्दश हिन्दी अनुवाद अध्याय २ सूत्र ५३

सूत्रार्थ –औपपादिक– =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी

चरम उत्तम देहाः– =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले, अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक, अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर या देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी, तद्भवमोक्षगामी, पूर्ण होगा संसार जन्म जिनका उसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें, चरमोत्तम शरीरी,

असंख्येय–वर्ष–आयुषः=असंख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम, मध्यम, और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां

अन्–अपवर्ति–आयुषः=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारकी, चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष, शस्त्र, कटक, अग्नि, जल, सर्प, अजीर्ण भोजन, वज्रपात, शूली, हिंसक जीव और वज्रादिक अभिघात आदिसे तथा इन्द्रस (=उपद्रव) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठः–औपपादिक =उपपाद सज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी

चरमदेहाः (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले, उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह या शरीर कहलाता है) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सके हैं अन्य नहीं और चरमदेहवाले कर्मभूमिक मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सके हैं। शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है॥ चरम=भवकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर या देह।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल यही अनपवर्त्य आयुष्याले होते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असंख्येयवर्ष आयुष्याले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्याले होते हैं। ऐसा उल्लेख है परंतु इस भाष्यके नीचे उपपत्तिभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अर्धचक्री तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं है इस 'उत्तम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके संबंधमें लिखना पड़ा है। प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतंत्रविचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखदें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है॥

(क) चरम उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है॥ (ग) में चरम शब्द विशेषणहै उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) में उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(द्वितीयपाठ[१])औपपादिकचैरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १८३ १२४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ११३ में" चरमदेहा इति वा पाठः" अर्थात् "चरमोत्तम देहाः के स्थानमें विकल्पकरिके चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में चरमदेहा इति केषांचित् पाठः" अर्थात् 'चरमदेहाः 'ऐसा पाठ कितनोंका है। 'चरमोत्तमदेहाति अस्मिन् स्थाने चरमदेहाति केचित् पठन्ति' = 'चरमोत्तमदेहा 'ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। मुक्तमरीचीका ॥ आचार्य 'चरमोत्तमदेहाः के स्थानमें "चरमदेहाः 'उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जावगा इसलिये शेषपाठ एक ही पद ॥ द्वितीय पाठ यही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५२ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वीं है॥ औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। चरमोत्तमदेहाः या 'चरमदेहा' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ सबमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें' चरमदेहाः और चरमोत्तमदेहा" में 'चरमदेहा का अर्थ चरमशरीरी अन्तिमशरीरवाले उसीदेहसे मोक्षजानेवाले तद्भवमोक्षगामी, जो वर्तमान शरीर है वह संसारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह या शरीरसे मोक्षजावेंगे इसी शरीरसे सिद्ध होजायेंगे ऐसा है॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ में 'उत्तमग्रहणं चरमस्योत्कृष्टत्वख्यापनार्थं' = सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमों की अपेक्षासे निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमो होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा आचार्य चरमोंके या तद्भवमोक्षगामीके सदैव उत्तम (वज्रवृषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त) शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः)सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। पं०गजाधरलालजी पृष्ठ ७५। तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्कृत प्रकाशिनीमें लिखते हैं कि 'वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा इसी शरीरसे मोक्ष प्राप्तहोजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात् कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने 'चरमदेहाः इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है॥ इसलिये सूत्रमें जो उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहाः वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही प्रकाशमान है उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने वार्तिककार विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है॥

"एम्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्यो शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः। सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति = इनऔपपातिक चरमदेह और असंख्येयवर्ष आयुवालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहित हैं वे अपवर्त्य आयुवाले और अनपवर्त्य आयुवाले भी होते हैं॥ भाष्य पृष्ठ ६१ ॥ इससे मैं यह निकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी चरमशरीरी भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियों में अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुके पूर्णहोनेपरही शरीरका त्याग करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायमें

प्रथम इसके कि हम इस पत्रपर विचार करें कि सूत्रका यथार्थ पाठ क्या है विद्वद्वर्य पं० मूलचन्दजीने इससूत्रका अर्थ अपने रचित 'चर्चा
समाधान में किया है उसपर कुछ समालोचना करें।भाष्यका उनका कथन इसप्रकार है कि 'औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः
भव-पत अनपवर्त्यायुषा भवन्ति । इतने अनपवर्त्यायुवाले जानना । जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होय समय समयसों पूरी होय ।
विष शस्त्रादिके योग करि उपक्रमसों पूरी न होय ते अनपवर्त्यायुवाले जानना । ते कौन हैं? औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येय वर्षायुषः—औपपादिक
कहिये देव नारकी चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असंख्येयवर्षायुष्क कहिये भोग भूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर
यातें कह कि चरमदेहवाले गुरुदत्त पाण्डवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये। उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तचक्रीकी अकाल मृत्यु हुई। अरत्कुमारके
पांचसूं पुष्पाजी की अपमृत्यु हुई । इत्यादि सकल चक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाहीं। यह कथन न्याय कुमुद चन्द्रोदय नाम शास्त्रमें
तथा राजवार्तिकालंकार शास्त्र है तहां कहा है । यातें चरमोत्तमदेह तीर्थंकरकी ही है । इस सूत्रविषैं यह सिद्धान्त हुआ – देव नारकी तीर्थंकर
भोगभूमिके जीव इनके विष शस्त्रादिक योग से बाह्यकलके पाकतन् आयुकी उदीरणा न होय । इन विना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिविषै
होय । जैसे प्रदीप तेलसे भरा होय पवनके झोंकासे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुकी स्थितिका भोग निमित्तान्तरसे होय जाय" । राजवार्तिकमें
'चरमोत्तमदेह' से तीर्थंकर लिये गये हैं यह लेख हमको नहीं मिला है ।
उपयुक्त लेखसे तथा हमसे अन्य अन्य विद्वानोंसे जो वार्तालाप हुआ उससे यह परिणाम अथवा फल निकलता है कि 'चरमदेह'के अर्थके संबंधमें
विद्वानोंके दो मत हैं कुछ कहते हैं कि चरमदेह वाले तद्भव मोक्ष गामी तो होते हैं परंतु उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसे अर्जुन भीम युधिष्ठिर
इसस इस सूत्रमें 'उत्तम विशेषण' चरम का है कि चरमोत्तम देह वालोंकी अकाल मृत्यु नहीं होती है परंतु 'चरमदेह' वालों की अकाल मृत्यु हो जाती
है । अन्य विद्वानों का मत है कि जब सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १८४ और तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ 'चरमदेहा इति वा पाठः' 'चरमदेहा इति
केचित्पाठः' इस सूत्रके अन्य पाठ क्रमसे दिये हैं तब यदि हम 'चरमदेह' वालोंकी अकाल मृत्यु मानलें तो उपर्युक्त पाठ व्यर्थ हुए जाते हैं
और कहते हैं कि यदि चरमदेहवालोंकी अकाल मृत्यु मानें तो समुद्घात तो यह कर नहीं सकते, हैं क्योंकि एक साथ या तत्कालही उपसर्ग
उपद्रव इत्यादिसे अकाल मृत्यु हो जाती है और यह नियम है कि "आयुके छह मास शेष पीछे केवल ज्ञान उपजै तते मुनी नियमथकी समुद्घात
करे हैं और जिनके छह मास पूर्वे केवल ज्ञान उपजा हो ते समुद्घात करै भी और नहीं भी करै करनेको सर्वथा नियम नाहीं" और पलटकर
कहते हैं कि जब समुद्घात न करेंगे तो क्या बिना वेदनीय गोत्र और नामकर्मके विपाकहुये मोक्षपदको प्राप्त होंगे (उत्तर में कहते है कि) उपसर्गमें
केवल ज्ञानके पश्चात् केवलि समुद्घातके लिये कोई बात बाधक नहीं आन पड़ती है । उक्त समुद्घातमें आठ ही समय लगते हैं जो बहुत थोड़ा
काल है क्योंकि 'असंख्यात समय एक आवली संख्याती आवली संख्य आवली मिलें तें होत एक स्वांस है' । यदि चरमदेहा इति वा पाठः
(= 'चरमोत्तमदेहा'के स्थानमें चरमदेहा ऐसा पाठ विकल्पसेही) भाष्यकारोंके मतमें न होता तो पं०मूलचन्दजीका समाधान हृदयको बहुत सुखदा
हुआ होता क्योंकि चरमदेहवालोंमें उक्तीन पाण्डवोंकी उपसर्गसहनकर मोक्षहुई अकाल मृत्युहुई यद्यपि ये चरम शरीरीथे और उत्तमदेहधारीयोंमें
ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्ति इत्यादिकी अकाल मृत्युहुई इससे न तो केवल चरमदेहवाले और न केवल उत्तमदेहधारी अनपवर्त्य आयु
वाले होसके हैं केवल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होसकते हैं जिनमें दोनों गुणका (चरमदेहत्व और उत्तमदेहत्वका) समावेश हो ऐसे तीर्थंकर
और अन्य भी जीव तीर्थ करोंके अतिरिक्त होसके हैं क्योंकर यदि तीर्थं करोंसेही उमास्वामीका अभिप्राय होता तो सूत्र ऐसाहोता और साथही
लघु और स्पष्टता लिये हुए भी होजाता कि 'औपपादिक तीर्थकराऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः' । इसलिये यहांपर अब मननयोग्य है कि तीनों

(क) 'चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः" सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ१६४,तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४३ तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७

(ख) चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वख्यापनार्थमुत्तम- ग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ१६३ तस्य (=चरमस्य-देहस्य) उत्तमत्वप्रतिपादनार्थत्वात् (उत्तमग्रहणम्। राजवार्तिकम्पृष्ठ०१११वार्तिक ६ देखो

उत्तमग्रहण चरमस्य-अनुत्तमत्व-अनुपपत्त्यर्थम् (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३)

(ग) चरमविशेषणमुत्तमस्याचरमस्य निवृत्त्यर्थ चरमविशेषणम्-उत्तमस्य अचरमस्य-निवृत्ति- अर्थम्। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३

(घ)अन्त्यचक्रधरवासुदेवादीनामनपवर्त्यायुषामपवर्तदर्शनाद्व्याप्तिः (तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र५३ वार्तिक ६ पृष्ठ १११)

तथा चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात् ॥७॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र ५३, वार्तिक ७ पृष्ठ१११)

'ऐसा चरम उत्तम देह जिनके होय ते चरमोत्तम देह कहिये' अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देह वाले हैं। (चरमोत्तम ये देहके विशेषण हैं) जयचंदजी वचनिका पृष्ठ २६४ अकेला उत्तम शब्द देह का विशेषण नहीं है क्योंकि यदि उत्तम शरीर वाले अनपवर्त्य आयुवाले होते तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासुदेव अर्धचक्रीकी अकाल मृत्यु न होती 'इहां चरमदेहका उत्तम विशेषणहै सो उत्कृष्टपनाके अर्थि है अन्य अर्थ नाहीं है"ज०व०पृ०२६५ अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये उत्तम (शब्दकासूत्रमें)ग्रहण है अन्य अर्थविशेषके लिये नहीहै 'उस चरमदेहके उत्तम पनाको प्रतिपादनार्थ पनाहीयम'',सूत्रमेंउत्तमशब्दकाग्रहणहै अर्थात् जो चरम देह ही सबमें उत्तम है सो अब कहिये है ॥ भावार्थ चरम देह समस्त देहोंमें उत्तम देह है इस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें उत्तम शब्दका ग्रहणकियागयाहै ॥ =(सूत्रमें)उत्तम(शब्द)का ग्रहण है सो चरमीके अनुत्तमताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरम- शरीरीहोगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा चरमीके या उत्तम मात्र गामीके उत्तम शरीर अवश्य होगा भावार्थ चरम देहधारीके अनुत्तमपना होवाही नहीं इसलिये उत्तम शब्द सूत्रमें आये हैं। इसलिये यहां 'उत्तम' शब्द विशेषणहै 'चरमदेह' विशेष्यहै। चरम विशेषण उत्तम शब्दका है सो अचरम के निवारण के लिये है अर्थात् उत्तम देहधारी हो =और चरम देहधारी न हो तो वह अनपवर्त्य आयुवाला न होगा जैसे सुभौमचक्रवर्ति और अन्तका ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और अन्तके अर्धचक्री वासुदेव (कृष्णजी) तथा इनके समान और भी जिनका उत्तम शरीर तो था परन्तु चरम शरीर न था उनकी बाह्य कारणोंसे अकाल मृत्यु हुई आयुका अपवर्तन होगया ॥ यहां 'चरम' शब्द विशेषणहै 'उत्तम' शब्द विशेष्य है ('उत्तम देहधारी अनपवर्त्य आयुष के होते हैं इसपर प्रश्न करताहै कि यह ब्रह्मदत्त अंतिम चक्रवर्ति और कृष्ण अर्धचक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्तिआदिमें नहीं घटताहै क्योंकि तीनों उत्तम देहके धारी होन पर भी अकाल मृत्युको प्राप्त हुये =यह दोष नहीं क्योंकि चरम शब्दका उत्तम शब्द विशेषण है। इसलिये जो चरम और उत्तम देहका धारक होगा वही अनपवर्त्य आयुष का हो सकताहै किन्तु जो केवल उत्तम देहका धारक होगा वह अनपवर्त्य आयुवाला नहीं हो सकता सुभौमचक्रवर्ति ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति कृष्णजी आदि उत्तम देहके धारी थे चरम शरीरी नहीं थे इनके तीनोंकी अकालमृत्यु हुई।

औपपादिका व्याख्याता देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहा । विपरीतससारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थ ॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

अन्वयानुवाद औपपादिका व्याख्याता देव-नारका इति=उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले (४६वां सूत्रमें) कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं
चरमशब्दः अन्त्यवाची, उत्तमः उत्कृष्टः =(सूत्रमें) चरम शब्द अन्तका (=अन्त्य) बोधक है उत्तम है सो उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है
चरमः उत्तमः देहः येषाम् ते चरमोत्तम-देहाः =अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहके धारी हैं देहके विशेषण 'चरमउत्तम' शब्द हैं॥
विपरीत-संसाराः तत् जन्म-निर्वाण-अर्हाः =छूटनेवाला है संसार जिनका उसी जन्ममें वा भवमें मोक्ष होने योग्य हैं (=अर्हाः)
इति अर्थः, अतीत-संख्यानम् असंख्येयम् =ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है
उपमा प्रमाणेन पल्यादिना गम्यम् =उपमाप्रमाण (=उत्कृष्टप्रमाणित) पल्यआदिसे अर्थात् अद्धापल्यादिकसे जानी जाय

(भ) जिसमें थोड़े अक्षर हों जो संदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहते हैं जैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा या एक मात्राका भी लाभ होजावे तो उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि निम्न गुण कथन करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमें होना चाहिये वे समस्त सूत्ररूपसे देखनेपर 'चरमदेहा' पाठमें गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके नलानेसे सूत्रका प्रथम गुण 'थोड़े अक्षर' की निष्पत्ति होजाती है । इसी शब्दको पाठमें न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा संदेहरहित सीधा साधा स्पष्ट और सरल हाजाता है अर्थ करनेमें बुधोंको समझानेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता । एवं 'चरमदेहा' पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि संदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालनेसे सार-सत गर्भित सूत्र बनजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ अब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल आता है और सूत्रके चौथेगुणकी कि वृथाव्यर्थ शब्दोंसे रहितहो पूर्णता हो जाती है ॥
श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसंदिग्धं (=अल्पअक्षरम् ॥ असंदिग्धम् ॥)=थोड़े अक्षरहों- संदेहरहित (अर्थयुक्त) हो
सारवद्विश्वतो मुखं (=सारवान् ॥ विश्वतः मुखम् ॥) =सत या सार गर्भितहो सर्वतः (=विश्वतः) श्रेष्ठ (=मुख्य) हो
अस्तोभमनवद्यं च (=अ-स्तोभं ॥ अनवद्यम् ॥ च) =निरर्थक शब्द (=स्तोभ) रहित [=अ] और [=च] दूषण वर्जितहो
सूत्रं सूत्रविदो विदुः [=सूत्रं ॥ सूत्रविदः ॥ विदुः]=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्र कहते हैं ॥ १ ॥
श्लोक ॥ २ ॥ एकौ वार्धमात्राया [=एका ॥ वा अर्धमात्रायाः ॥]=एक अथवा आधी मात्राका
सूत्रस्य रतिलाघवे [=सूत्रस्य ॥ रति लाघवे ॥]=सूत्रकी रचनामें लाभहानेपर या न्यूनहोनेपर
पुत्रजन्मोत्सवसमस्तुल्यो [=पुत्र-जन्म-उत्सव ॥ तुल्या ॥]=पुत्रके जन्मके हर्षसमान या पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश
वैयाकरणो मन्यते [=वैयाकरणः ॥ मन्यते]=व्याकरणज्ञाता या व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

(चरमदेहाः, चरमोत्तमदेहाः, चरमदेहोत्तमपुरुषाः)पाठों में से कौनसा पाठ उमास्वामी कृत है। वास्तवमें हम इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हैं क्योंकि इसके ढूढनेके लिये हमारे पास न तो साधन ही हैं और न समय ही है परंतु निम्न लिखित हेतुओंसे यह जान पड़ताहै कि दोनों आम्नायोंमें "चरमदेहाः" सब पाठोंसे उत्तम और सूत्रके बनानेकी विधिके अनुकूल है और यही पाठ उमास्वामी कृत होना चाहिये—क्योंकर

(क)"चरमदेहाः इस पाठ का हमारे यहां सर्वार्थसिद्धिवृत्ति तत्त्वार्थराजवार्तिक, भाषावचनिका तथा अर्थप्रकाशिका वचनिकामें भी उल्लेख है और हम सिद्ध करचुके हैं कि"चरमदेहाः" का वही अर्थ है जो"चरमोत्तमदेहाः"का श्वेताम्बर आम्नायकी मोक्षकी टिप्पणीसे प्रतिभास होताहै कि उनके यहां भी यथार्थमें"चरमदेहाः" पाठ था नकि"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" अब"चरमदेहाः। का वही अर्थ है जो 'चरमोत्तमदेहाः ' का तब आचार्य 'उत्तम'शब्दका प्रयोग निष्कारण क्यों करते भला औपपातिक इत्यादि सूत्रमें(श्वेताम्बरीय टिप्पणी यहहैकि)"उत्तम पुरुषसे यहां तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव तथा वासुदेव आदिकका ग्रहण है। कोई कहते हैं कि सूत्रमें उत्तमपुरुषका ग्रहण नहीं है तो तीर्थंकरादिकका ग्रहण कैसे होगा ? इसपर कहते हैं कि चरमदेह ग्रहणसे तीर्थंकरादिकका ग्रहण होगा। क्योंकि चरमशरीरी उत्तमपुरुष अवश्य होते हैं और उत्तम पुरुषोंका चरमदेह मान्य है। इस हेतुसे चरम पुरुष ग्रहण अपार है। दोनो प्रकारके भाष्य हैं। अनिश्चित होनेसे प्रथम उत्तम पुरुष ग्रहण किया और तीर्थंकरादि उसका विवर्तकिया और पुनः उत्तर कालमें चरम पुरुषका ग्रहण किया, परन्तु निरुपक्रम सोपक्रम कथनसे यह संग्रह भाष्यसे होता है, अतएव उसी भाष्यकारके भावक प्रकृतिमें चरम पुरुष ग्रहण किया है। यहां भी यही समझना चाहिये"

(ख)श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंका चरमदेहा'पाठ मिलता है,और"चरमोत्तमदेहाः"और"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" पाठ मिलान नहीं करते॥

(ग) 'उत्तम' शब्दके लानेसे अर्थमें बहुत कठिनता होजाती है और अभिप्राय या परिणाम कुछ भी नहीं निकलता क्योंकि कोई ( ) चरम उत्तम शब्दोंको देहका विशेषण करते हैं ( ) कोई उत्तम शब्दको 'चरम देह'शब्दोंका विशेषण कहते हैं ( ) कोई चरम शब्दका उत्तम शब्दका विशेषण बतलाते हैं ( ) कोई उत्तम शब्दको चरम शब्दका विशेषण कहते हैं (देखो पृष्ठ १२८)इतनी कठिनाईयां उमास्वामी'उत्तम' शब्दलाकर क्योंउपजाते

(घ) असंख्येयसमायुष्काश्चरमोत्तममूर्तयः। इत्यत्र भारतकालेरामपद्मस्तुत्यर्थं विवक्षो श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारश्लोक॥१३५ वां॥ पं० वंशीधर शास्त्रीजीने उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद करनेमें हमारी संमतिके अनुकूलकि 'चरमदेह वाले' सब अनपवर्त्यआयुवाले होते हैं इस प्रकार अनुवाद किया है कि 'असंख्यात वर्षके आयुवाले भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंच कर्म भूमिके उसी जन्मसे मुक्त होनेवाले मनुष्य तथा, देव नारकी –इतने जीवोंकाकी आयु नियत हुआ हो उसका शस्त्रादि निमित्तों से अपघात नहीं हो सकता है। यद्यपि कल्पवृत गुरुदत्त केवली आदि कुछ ऐसे हुए हैं कि जिनका शरीर उपसर्गों से विदीर्ण किया गया था परन्तु उन्हें हम अनपवर्त्यायुवाले ही मानते हैं। सूत्रकारने तथा इस ग्रंथके कर्ताने भी उन चरमशरीरी जीवों के आयुको अनपवर्त्य लिखा है कि जो उत्तम हो। परन्तु उत्तमका अर्थ चरमशरीरी की केवल प्रशंसा है। अधिक कुछ भी नियम नहीं समझना चाहिये मोक्षगामी जीव सब ही अनपवर्त्यायुवाले मानने चाहिये॥ दोषजीवों का घात हो सकता है॥ जो लोग उत्तमका अर्थ मोक्षगामियोंमेंसे विशिष्टताकावाले अथवा कामदेवादि पदवी युक्त ऐसा करते हैं वह ठीक नहींहै क्योंकि 'चरमोऽगचरमवतो मतवो' कथन इति 'यह वचन श्री जिनसेनाचार्यके महापुराण पर्व ३६ में लिखाहै। इसका अर्थ यह है कि भरत और बाहुबली ये दोनों मोक्षगामी जीव हैं। इनका कुछ नहीं बिगड़ सकता है। केवल चरमशरीरी होनेका कारण दिखाकर अवध्य बतानेसे भी यही बात सिद्ध होती है कि यावत् चरमशरीरी जीव दीअनपवर्त्यायुवाली होनी चाहिये। जिन दिव्य, रत्नत्रय,अथ,शस्त्रघात प्रवासावरोध,तथा आहार निरोध ये अकालमरण मरनेके कारण हैं (पं०)वंशीधर अनुवादित तत्त्वार्थसार मुद्रित पृष्ठ ३०, ३१ में'उत्तम' शब्द के संबंध में विद्वज्जन विशेष खोज करके इनका मुझे सूचित करें। श्रीरमी

औपपादिका व्याख्याता देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्ट । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहा । विपरीतससारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः ॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

इत्यनुवादः औपपादिकाः व्याख्याताः देव-नारकाः इति	=उपपाद जन्मसे उत्पन्नहोनेवाले(४६वांसूत्रमें)कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं
चरमशब्दः अन्त्यवाची, उत्तमः उत्कृष्टः	=(सूत्रमें)चरम शब्द अन्तका(=अन्त्य) बोधक है उत्तम है सो उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है
चरमः उत्तम देहः येषाम् ते चरमोत्तम-देहाः	=अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तमदेहके धारी हैं।देहके विशेषण 'चरमउत्तम शब्द हैं॥
विपरीत-संसाराः तत्-जन्म-निर्वाण-अर्हाः	=छूटनेवाला है संसार जिनका उसीजन्ममेंवाभवमें मोक्षहोने योग्य हैं(=अर्हाः)ज
इति अर्थः; अतीत-संख्यानम् असंख्येयम्	=ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है
उपमा-प्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्	=उपमाप्रमाण(=उत्कृष्टप्रमाणित)पल्यआदिसे अर्थात् मद्दापल्यादिकसे जानीजाय

(अ)जिसमें थोड़े अक्षर हों जो संदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहते हैं जैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा वा एक मात्राका भी लाभ होजावे तो उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि जिस सूत्र उल्लेख करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमें होना चाहिये वे समस्त सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर 'चरमदेहा' पाठमें गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके न लानेसे सूत्रका प्रथम गुण'थोड़े अक्षर' की निष्पत्ति होजाती है । इसी शब्दको पाठमें न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा संदेहरहित सीधा साधा स्पष्ट और सरल होजाता है अर्थ करनेमें दूसरोंको समझनेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता । एवं 'चरमदेहाः' पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि संदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालनेमेंसे सार-तत्व गर्भित सूत्ररहजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ अब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल जाता है और सूत्रके चौथेगुणकी कि वृथाव्यर्थ शब्दोंसे रहितहो पूर्णता हो जाती है ॥

श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसंदिग्धं	(=अल्पाक्षरम् ॥ असंदिग्धम् ॥)	=थोड़े अक्षरहों- संदेहरहित (अर्थयुक्त) हो
सारवद्विश्वतो मुखं	(=सारवान् ॥ विश्वतः मुखम् ॥)	=तत्व या सार गर्भितहो सर्वतः(=विश्वतः)श्रेष्ठ (=मुख्य) हो
अस्तोभमनवद्यं च	(=अ-स्तोभं ॥ अनवद्यम् ॥ च)	=निरर्थक शब्द(=स्तोभ)रहित [=अ] और[=च]दूषण वर्जितहो
सूत्रं सूत्रविदो विदुः	[=सूत्रं ॥ सूत्रविदः ॥ विदुः	]=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्रकहते हैं ॥ १ ॥
श्लोक ॥ २ ॥ एकौ वार्द्धमात्राया	[=एक ॥ वा अर्द्धमात्रायाः ॥	]=एक अथवा आधी मात्राका
सूत्रस्य हतिलाघवे	[=सूत्रस्य ॥ कृति ॥ लाघवे ॥	]=सूत्रकी रचनामें लाभहोनेपर वा न्यूनहोनेपर
पुत्रजन्मोत्सवस्तुल्यो	[=पुत्र-जन्म-उत्सव ॥ तुल्य ॥	]=पुत्रके जन्मके हर्षसमान वा पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश
वैयाकरणो मन्यते	[=वैयाकरणः ॥ मन्यते	]=व्याकरणज्ञाता वा व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूता ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुष ॥ वाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादे सति संनिधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुष । न अपवर्त्यायुष अनपवर्त्यायुष ॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां वाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियम। इतरेषामनियम ॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुः। येषाम्। ते। इमे। असंख्येय-वर्ष-आयुषः। =आयु जिनकी ते ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले
तिर्यक्-मनुष्याः। उत्तर-कुरु-आदिषु। प्रसूताः। =तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होवे हैं(=प्रसूता)
च॰औपपादिकाः। च॰चरमोत्तमदेहाः। च॰असंख्येय =और औपपादिक और चरमोत्तमदेहा और असंख्येय
वर्षायुषः। औपपादिकचरमोत्तमदेहा- =वर्षायुष हैं। सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह-
असंख्येयवर्षायुषः। बाह्यस्य। उपघात- =असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ। बाहिरके अभिघात (घातक)
निमित्तस्य। विषशस्त्रादेः। सति। संनिधाने। ह्रस्वम्। -निमित्त जे माहुर और शस्त्रादिकके समीप होनेपर घटजाती
भवति। इति॰अपवर्त्यम्। अपवर्त्यम्। आयुः- =है। ऐसा अपवर्त्य है। न्यून होजाती है आयु
येषां। ते। इमे। अपवर्त्य-आयुषः। =जिनकी ते इतने अपवर्त्य आयुवाले हैं
न॰अपवर्ति-आयुषः। अन् अपवर्तिआयुषः। =न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य आयुवाले हैं
न॰हि॰एषाम्। औपपादिक-आदीनाम्। =निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी
बाह्य-निमित्त-वशात्। आयुः। अपवर्त्यते। इति॰ =बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा
अयम्। नियमः। इतरेषाम्। अनियमः। =यह नियमहै।अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहींहैअर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी
भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावे कोई नियम नहींहै॥
चरमस्य। देहस्य। उत्कृष्टत्व-प्रदर्शन-अर्थम्। =अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये
उत्तम-ग्रहणम्। न॰अर्थान्तर-विशेषः। अस्ति। =उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)ग्रहणहै अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

चरमदेहा इति वा पाठ ॥ २ ॥

जीवस्वभावलक्षणसाधनाविषयस्वरूपभेदाश्च

चरमदेहाः ॥ इति वा पाठः ॥ =अथवा ("चरमोत्तमदेहाः" के स्थानमें) "चरमदेहाः" ऐसा (भीसूत्रका अन्य प्रकारका) पाठ है

जीवस्वभावः ॥ जीवस्वभावभेदाः ॥ =चेतनके निजभाव या स्वतत्वभाव (सूत्र १) चेतनके निजभावकेभेद (दूसरे से सातवां सूत्र तक)

जीवलक्षणम् ॥ =जीवका लक्षण अर्थात् वह चिन्ह जो जीवका भेदज्ञान अन्य पदार्थोंसे करासके (देखो आठवां सूत्र)

जीवलक्षणभेदाः ॥ =जीवका उपयोगरूप लक्षणके भेद अर्थात् ज्ञानके आठ भेद और दर्शनके चार भेद (देखो सूत्र ९)

जीवसाधनम् ॥ =जीवोंकी मर्यादा अथवा प्रमाण अर्थात् जीवोंकी संसाररूप और मोक्षरूप मर्यादा करना (देखो सूत्र १०)

जीवसाधनभेदाः ॥ =जीवके साधन या उपकरणकेभेद अर्थात् दो मर्यादा जो ऊपर कहीगई हैं तिनके भेद (देखो सूत्र ११, २४, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २२, २३)

जीवविषय ॥ =जीव (की इन्द्रियों) के विषय (देखो सूत्र २० और २१)

जीव-विषय-भेदाः ॥ =जीव (की इन्द्रियों) के विषयभेद अर्थात् (i) शीत, उष्ण, रूक्ष, सचिक्कन, कठोर, कोमल, हलका, भारी ये स्पर्शविषयके आठ भेद हैं। (ii) तिक्त, कटु, कषायला, खट्टा और मीठा ये पांच रस विषयकभेद हैं (iii) सुगंध, दुर्गंध दो गंधविषयके भेद हैं (iv) श्वेत, पीत, लाल, अरुण, और कृष्ण वर्णविषयक पांच भेद हैं (v) अच्छी-बुरी प्रिय-अप्रिय इत्यादि ध्वनि और नादादिक ये शब्दविषयकभेद हैं ये सब सूत्र २०, २१ में गर्भित हैं

जीवस्वरूपं[(२)] ॥ च जीवस्वरूपभेदाः[(२)] ॥ =चेतनके निजभाव या स्वतत्वभाव (सूत्र १) और (=च) चेतनके निजभावके भेद (दूसरसे सातवां सूत्र तक)

---

(१) "जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्च अध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्ति इति सम्बन्धः ये दोनों वाक्य कठिन और गंभीररूपमें हैं इससे इनके पृथक् पृथक् पदच्छेद करके अर्थ किये गये हैं ॥ (२) हमारी समझमें स्वरूप शब्द इस वाक्यमें व्यर्थ और अधिक भूलसे छपगयाहै क्योंकि "स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथुः" अमरकोश वर्ग ८ श्लोक ३८ वां के प्रथमपादसे प्रगट है कि स्वभाव स्वरूप और निसर्ग तीनों शब्द समानार्थक हैं और वेपथु का अर्थ थरथराना या कांपनेका है। हस्त लिखित प्रतिमें भी यही पाठहै उक्त जीवस्वरूप जीवस्वरूपभेद के वेही अर्थहैं जो इस जीवस्वभाव और जीवस्वभावभेद के अर्थहैं जैसाकि अनुवादसे प्रगट है। यदि पूज्यपादस्वामी ने ही ऐसी रचना की है तो जब 'स्वभाव' शब्द आरम्भमेंही ग्रहण कियाहै तो फिर स्वरूप शब्द क्यों लाये और किस अर्थ में लाये? पाठक निर्णयकरें

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूता ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुष ॥ बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादे सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुष । न अपवर्त्यायुष अनपवर्त्यायुष ॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियम। इतरेषामनियम ॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुः॥ येषाम्॥ ते॥ इमे॥ असंख्येय-वर्ष-आयुषः॥	=आयु जिनकी से ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले
तिर्यक् मनुष्याः॥ उत्तर-कुरु-आदिषु॥ प्रसूताः॥	=तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होवे है (=प्रसूता)
च॰औपपादिकाः॥ च॰चरमोत्तमदेहाः॥ च॰असंख्येय-	=और औपपादिक और चरमोत्तमदेहा और असंख्येय
वर्षायुषः॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहा-	=वर्षायुष हैं। सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह-
असंख्येयवर्षायुषः॥ बाह्यस्य॥ उपघात-	=असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ। बाहिरके अभिघात (घातक)
निमित्तस्य॥ विषशस्त्रादे॥ सति॥ सन्निधाने॥ ह्रस्वम्॥	=निमित्तके जहर और शस्त्रादिकके समीप होनेपर घटजाती
भवति। इति॰अपवर्त्यम्॥ अपवर्त्यम्॥ आयु —	=है। ऐसा अपवर्त्य है। न्यून होजाती है आयु
येषां॥ ते॥ इमे॥ अपवर्त्य-आयुषः॥	=जिनकी ते इवन अपवर्त्य आयुवाले हैं
न॰अपवर्ति-आयुषः॥ अन् अपवर्तिआयुषः॥	=न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य,आयुवाले हैं
न॰हि॰येषाम्॥ औपपादिक आदीनाम्॥	=निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी
बाह्य-निमित्त-वशात्॥ आयुः॥ अपवर्त्यते। इति॰	=बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा
अयम्॥ नियमः॥ इतरेषाम्॥ अनियमः॥	=यह नियम है।अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहीं है अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावे कोई नियम नहीं है॥
चरमस्य॥ देहस्य॥ उत्कृष्टत्व-प्रदर्शन-अर्थम्॥	=अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये
उत्तम-ग्रहणम्॥ न॰अर्थान्तर-विशेषः॥ अस्ति	=उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)उपादान है अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

१ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारका श्रुतास्तत पृच्छति के ते नारका इति । तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देश क्रियते ॥ १

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयोघनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ तृतीयः अध्यायः = (मोक्ष-शास्त्र वा तत्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है

भवप्रत्ययः अवधि देवनारकाणां इति एवम् = जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है इत्यादि (= एवम्)

आदिषु नारकाः श्रुताः = प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र ३१, ३४, ४६, ५०, ५३) में नारकी सुनगय हैं

तत पृच्छति के ते नारका इति तत् = उस कारण से (= ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के

प्रतिपादन-अर्थं तत् अधिकरण-निर्देश क्रियते = बतलाने या पता देने के लिये, उनके आधार (= निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठा सप्ताधोऽध ।

पदच्छेद—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तम प्रभा—महातम प्रभा—भूमय घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठा (भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥१॥

सन्नाय—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा = रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, बालू के सम झलक,

पङ्कप्रभा-धूमप्रभा-तमः प्रभा- = कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अंधकार के समान आकृति,

महातम प्रभा भूमय = महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)

(जिनके रूढ़िनाम घम्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी और माघवी हैं)

(१) सभाष्य० म पृथकता ग्रन्थ में अधिक है जिसका अर्थ यह अतिशययुक्त अधिक २ विशाल होती गई हैं अर्थात् ऊपर ऊपर छोटी छोटी तथा

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

गतिभेदाः	=(च) और (जीव पुद्गलके) गमनके भेद (२५ से ३० सूत्र पर्यंत)
जन्मभेदाः	=(जीवके) नया शरीर धारण करनेके भेद (३१, ३३, ३४, ३५ सूत्र)
योनिभेदाः देहभेदाः	=(जीवके) उत्पत्तिके स्थान(योनिभेद) अधोसवासूत्र। शरीरोंकेभेद (३६से ४९सूत्र पर्यंत)
लिङ्गभेदाः	=लिङ्ग या वेदोंके भेद (५०, ५१, ५२, सूत्र)
अनपवर्तित-आयुष्कभेदाः	=नहीं घटनेवाली या न्यून होनेयोग्य आयुवालोंके भेद (देखो सूत्र५३)
अध्यायेऽस्मिन्निरूपिताः	=इस (=अस्मिन्) (दूसरे) अध्यायमें वर्णित या कहेगये
भवन्ति इतिसम्बन्धः	=हैं (=भवन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त वस्तुओं या विषयोंका कथन है॥

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौ =इसप्रकारतत्त्वोंकेस्वरूप(=अर्थ)विवरणमें[=वृत्तौ]

सर्वार्थसिद्धि- =सर्वार्थसिद्धि

सञ्ज्ञिकायाम् =नामक(ग्रन्थ)में

द्वितीयः अध्यायः =दूसरा अध्याय(समाप्त)हुआ॥ * मंगलहो। *

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारका श्रुतास्तत पृच्छति के ते नारका इति । तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देश क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ = तृतीय ॥ अध्याय ॥ = (मोक्ष-शास्त्र या तत्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है
भवप्रत्ययः ॥ अवधिः ॥ देवनारकाणां ॥ इति एवम् = जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है एवही (= एवम्)
आदिषु ॥ नारका ॥ श्रुताः ॥, = प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र ३१, ३४, ४६, ५०, ५३) में नारकी सुनगये हैं
ततः = पृच्छति के ॥ ते ॥ नारका ॥ इति = तत् = इस कारण से (= ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के
प्रतिपादन-अर्थं ॥ तत् अधिकरण-निर्देश ॥ क्रियते = जनाने या बतला देने के लिये, उनके आधार (= निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातम प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठा सप्ताधोऽध ।

पदच्छेद—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तम प्रभा—महातम प्रभा—भूमय घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठा (भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १ ॥

सन्नार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा = रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, बालू के सम झलक,
पङ्कप्रभा धूमप्रभा-तमः प्रभा- = कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अन्धकार के समान आकृति,
महातम प्रभाः ॥ भूमयः ॥ = महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)
(जिनके रूढिनाम घम्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी और माघवी हैं)

(१) सर्वार्थ में पृथमरा अन्त में अधिक है जिसका अर्थ यह अतिप्रचुरतम् अधिक व विशाल होती गई हैं अर्थात् ऊपर ऊपर छोटी छोटी नमी

रत्न च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमासि। प्रभाशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते।

२

घनाम्बुवात-(१) = घन (= स्थूल) उदधि (= अम्बु, जल) वात (= पवन) अर्थात् घनोदधि वातवलय।

घनवात- = घन (सघन, स्थूल) वात (= पवन, बयार) अर्थात् घनवातवलय।

(तनु) वात-आकाश-प्रतिष्ठाः ॥ भवन्ति T = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातवलय, और आकाश के आधार वा आश्रय हैं। भावार्थ ये भूमियें घनोदधिवातवलय जो सघन पवन और जलमिश्रित है, आधार है, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के जो स्थूल-सघन वायुका है आश्रय है, घनवातवलय तनुवातवलय के जो सूक्ष्मवायुका है आधार है और तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने आधार है और स्वयं आधेय है उसका कोई अन्य आधार नहीं इसलिये यह अपने आप आधार है।

सप्त ॥ अधः ॥ अधः ॥ = (ये भूमियें सब) सात (ही) हैं (और क्रम से एक दूसरे के) नीचे नीचे ही हैं।

सूत्रानुवाद —रत्नं ॥ च शर्करा ॥ च वालुका ॥ च = और रत्न और शर्करा (कंकरीली) तथा वालुका

पङ्क ॥ च धूम ॥ च तमः ॥ च महातम ॥ च = बहुरि पङ्क अर धूम और तम तथा महातम (शब्द आपस में)

रत्न शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमः-महातमांसि ॥ = रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमांसि रूप में इतरेतर योगद्वन्द समास है।

प्रभाशब्दः ॥ प्रत्येकं ॥ परिसमाप्यते T = प्रभा शब्द पृथक् पृथक् रत्न, शर्करा, वालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है।

हरे कुमारी उसके बीच की विशाल विशाल कुमारी के मत हैं। तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १६२ वार्तिक ११ के अनुकूल हमारे यहां भी किसी किसी आचार्य के मत में "पृथुतरा" पाठ भी है अब दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा हुआ है परन्तु वार्तिककार का मत है कि रत्नप्रभा भूमिमें अन्य प्रभय का अर्थ लागू नहीं होसकता उसका पृथुतर नाम नहीं बन सकता क्योंकि इससे अन्य कोई नरक भूमि विस्तार वेदना वा आयु की अपेक्षा न्यून हो तब तो इस प्रभा से पृथुतर कहा जासकता है किन्तु सो तो है नहीं इसलिये "पृथुतरा" शब्द के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं।

(१) वातश्च वातश्च वातौ यह यहां पर एकशेष समास आया है। एकशेष समास का यह नियम है कि समान अनेक शब्दों में एक ही शब्द अवशिष्ट रह जाता है अन्य का लोप हो जाता है इसलिये यहां पर एक वात शब्द का लोप हागया है इसलिये घनाम्बुवात शब्द से यहां पर घनाम्बुवात और घनवात समझना चाहिये तथा घन शब्द सामान्य है यह तनुरूप विशेष की आकांक्षा रखता है इसलिये वात शब्द से यहां तनुवात का भी ग्रहण है इसप्रकार घनाम्बुवात शब्द घनोदधिवात घनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों का वाचक है।

साहचर्यात्तच्छब्दम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमि रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमि शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभासहचरिता भूमि बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमि पङ्कप्रभा, धूमप्रभासहचरिता भूमि धूमप्रभा, तम प्रभासहचरिता भूमि तम प्रभा, महातम प्रभासहचरिता भूमि महातम प्रभा इति ॥ एता सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासा । किं तर्हि भूमिमाश्रिता इति॥

२

साहचर्यात् ।।।	= (रत्न-शर्करा-बालुका आदिकी प्रभा के) सदृश होनेसे या सहचारी होनेसे
तत्-शब्दम् ।।।	= उन (भूमियों) के (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा आदि) नाम धरेगये हैं
चित्र-आदि-रत्नप्रभा-सहचरिता ।। भूमि ।। रत्नप्रभा ।।	= चित्रादिक रत्नों की दीप्ति सदृश पृथिवी सो रत्नप्रभा है।
शर्करा-प्रभा-सहचरिता ।। भूमि ।। शर्कराप्रभा ।	= कंकरकी दीप्ति सदृश पृथिवी सो शर्कराप्रभा है।
बालुकाप्रभा सहचरिता ।। भूमि । बालुकाप्रभा ।।	= बालुका की चमक सम पृथिवी सो बालुका प्रभा है।
पङ्कप्रभा । सहचरिता । भूमि । पङ्कप्रभा ।	= कीचड़ अथवा कर्दम की झलक सम पृथिवी सो पङ्कप्रभा है।
धूमप्रभा । सहचरिता । भूमिः । धूमप्रभा ।	= धूंआं की दीप्ति तुल्य पृथिवी सो धूमप्रभा है।
तमःप्रभा । सहचरिता । भूमि । तम प्रभा ।	= अन्धकार की झलक सम पृथिवी सो तमःप्रभा है।
महातम प्रभा । सहचरिता । भूमि ।	= अत्यन्त अन्धकार की प्रभा तुल्य पृथिवी
महातमः प्रभा । इति । एता । संज्ञा ।। अनेन ।।	= सो महातमः प्रभा है। ये (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम। इस (= अनेन)
उपायेन ।। व्युत्पाद्यन्ते ।	= साधनकरि निरुक्ति कियेगये अर्थात व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध कियेगये।
भूमि-ग्रहणं ।। अधिकरण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।।	= (इस सूत्रमें) भूमि (शब्द) का ग्रहण आधार विशेष जतलाने के लिये है।
यथा स्वर्ग पटलानि ।। भूमिम् ।। अनाश्रित्य व्यवस्थितानि ।।।	= जैसे स्वर्गपटल भूमि का आधार न करके पृथक् व्यवस्थित ठहरे हुए हैं
न । तथा । नारक-आवासा ।।	= वैसे नारकियोंके वासस्थान नहीं हैं अर्थात् उनके वासस्थान भूमिके आधार हैं
किं । तर्हि । भूमिम् । आश्रिता । इति ।	= तो (= तर्हि) भूमिको क्या आधार-अधिकरण है अर्थात् किस पर टिकी है

३

तासां भूमीनामालम्बननिर्ज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते ॥ घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ॥ ❀ घन च घनो मन्दो महान् आयत इत्यर्थः । अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः । वातशब्दोऽन्त्यदीपकः । तत एव सम्बन्धनीयः । घनो घनवात ।

तासां ।।। भूमीनां ।।। आलम्बन-निर्ज्ञान-अर्थम् ।।। = तिन भूमियों के अवलम्बन के निर्णय के लिये अर्थात् जो भूमि नरकोंकी प्रथम बतलाई गई हैं उन का अवलम्बन क्या है। यह प्रगट करने के लिये

घन-अम्बु-वात आदि ग्रहणं ।।। क्रियते । = (सूत्र में) घन-अम्बु-वातादि (वाक्य) का ग्रहण किया गया है।

घन- अम्बु ।।। च ❀ वात ।। च ❀ आकाश ।। च ❀ = बहुरि घन-अम्बु (= महान् उदक और वात और आकाश शब्दोंका द्वंद्व समास

घनअम्बुवातआकाशानि ।।। ; तानि ।।। = घनाम्बु-वात-आकाशानि है। ते (घनाम्बुवात-आकाश)

प्रतिष्ठाः ।।। आश्रय ।। यासां ।।। ता ।।। घनाम्बु = आधार या आश्रय जिन (भूमियों) का है ते घनाम्बुवाताकाश

वाताकाशप्रतिष्ठाः ।।। = प्रतिष्ठा (कहलाती) है अर्थात् सात नरकोंकी भूमियें महान् घनाम्बु आकाशके आश्रय हैं

घनं ❀ ।।। च ❀ घन ।। मन्द ।। महान् ।। आयत ।। = बहुरि घन है सो गाढ़ा (= घन) मोटा (= मन्द) बड़ा (महान) लम्बा चौड़ा आयत है

इति-अर्थ ।। ; = ऐसा आशय है, अर्थात् घन, मन्द, महान् और आयत समानार्थवाची शब्द हैं ॥

अम्बु ।।। च ❀ जल ।।। उदकम् ।।। इति ❀ अर्थः ।। = और अम्बु है सो पानी, नीर ऐसा अभिप्राय है (अम्बु-जल-उदक एकार्थी हैं)

वात-शब्द ।। अन्त्य-दीपकः ।। = (सूत्र में) वात शब्द (घन-अम्बु के) अन्त का प्रकाशक है अर्थात् घन और अम्बु प्रत्येक शब्दके अन्तमें रहनेवाला है उसको प्रत्येक साथ जोड़ो।

ततः ❀ एव ❀ सम्बन्धनीय ।। घन ।। घनवातः ।। = तिस से ऐसे सम्बन्ध होना चाहिये, कि (घनाम्बुवात वाक्यमें) घन है सो घन वात है अर्थात् घनवात (वलय) है सो गाढ़ा या स्थूलका सघन पवनका है।

❀ अनुच्छेदवर्तस्त्या पाठ लाहनन पुस्तके एव वर्तते—श्री पीस वन में छि... लेकिन ऐसा पाठ लाहनन पर लिखित पुस्तकमें विद्यमान है।

अम्बु अम्बुवात १। वातस्तनुवात । इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्य । अन्य पाठ ॥ सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वात चेति वातशब्द सोपस्क्रियते । वातस्तनुवात इति वा ॥]

अम्बु ।।। अम्बुवात ।।

= अम्बु है सो अम्बुवात है अर्थात् सूत्र में "घनाम्बुवात" वाक्य में जो अम्बु शब्द है उसको अम्बुवातके समान वातशब्द के अन्त्यदीपक जानसे समझना चाहिए यह वायुमण्डल जल मिश्रत है अत इसको घनोदधि वातवलय कहते हैं ॥

वात ।। तनुवात ।। इति * महत्-अपेक्षया ।।

= वात है सो तनुवात है ऐसे (सूत्र में घन-सघन की (= महत्) अपेक्षा से

तनु ।।। इति * सामर्थ्यगम्य ।।

= सूक्ष्म (= तनु) सहज अर्थता से ग्राह्य है अर्थात् 'तनु' शब्दकी प्राप्ति यहां आशय के प्रसंग से हुई है क्योंकि जब सूत्र में घन (सघन) बतला है तो घन से विपरीत अवश्य विद्यमान होसकता है और उसी समय सूत्र में आसकते हैं अब उसका विरोधक सूक्ष्मता तनु है ॥ तनुवात सूक्ष्म वा पतला वायुमण्डल को कहते हैं ॥

अन्य ।। पाठ ।।

= (घनं च घनो इत्यादि सामर्थ्यगम्य पर्यन्त) दूसरा वा भिन्न पाठ हुआ

सिद्धान्त-पाठ ।। तु * घन-अम्बु ।।। च वात ।।। च इति

= परन्तु (= तु) सिद्धान्त का पाठ घनाम्बु और (= च) वात ऐसा है

वातशब्द ।। सोपस्क्रियता

= (घनाम्बु में) वात शब्द ऊपर से जोड़ा गया है (तब) घनाम्बुवात, घनवात हुए

वा * वात ।। तनुवात ।। इति * ॥]

= और (= वा) वात है सो तनु (सूक्ष्म) वात है ये सब मिलकर घनाम्बुवात घनवात तनुवात हुये । 'घनाम्बुवात' वाक्य का यही विग्रह है जो सिद्धान्तक पाठ के अनुकूल लेकर सब [illegible] गया है (देखो ३ अध्याय पृष्ठ २)

सर्वा एता भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठा । घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठम् । घनवातवलय तनुवातवलयप्रतिष्ठम् । तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम् । आकाशमात्मप्रतिष्ठ, तस्यैवाधाराधेयत्वात् ॥ त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि ॥ सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्त्यर्थम् । सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति ॥ अधोऽधोवचन

सर्वाः॥ एताः॥ भूमयः॥ घनोदधिवलय	= समस्त ये पृथिवी घनोदधिवलय के (जो जल और पवन मिश्रित है) अर्थात् घनोदधिवात जिसकी गीली या आर्द्रवायु है।
प्रतिष्ठाः॥ घनोदधिवलयम्॥ घनवातवलय	= आधार है (= प्रतिष्ठा) घनोदधिवलय घनवातवलयके (जो सघन पवनका है)
प्रतिष्ठम्॥ घनवातवलयम्॥ तनुवातवलय	= आश्रय है ॥ घनवातवलय तनुवातवलयके (जो सूक्ष्म, पतली वायुका है)
प्रतिष्ठम्॥ तनुवातवलयम्॥ आकाश-प्रतिष्ठम्॥	= आधार है ॥ तनुवातवलय आकाशके आधार है
आकाशम्॥ आत्म-प्रतिष्ठम्॥ तस्य॥ एव आधार	= आकाश अपने (= आत्मन्) आधार है क्योंकि तिस (आकाश) के ही आधार
आधेयत्वात्॥	= और आधेयभाव है अर्थात् वह स्वय ही आधार और स्वय ही आधेय है
त्रीणि॥ अपि एतानि॥ वलयानि॥ प्रत्येकम्॥	= ये तीनों ही वातवलय पृथक् पृथक्
विंशति-योजन-सहस्र-बाहुल्यानि॥ सप्तग्रहणम्॥	= बीस हजार योजन मोटे हैं। सूत्र में 'सप्त' शब्द का उपादान
संख्या अंतर निवृत्ति-अर्थम्॥ सप्त॥ भूमयः॥	= अन्य संख्या के निराकरण के लिए है ॥ सात ही पृथिवी हैं
न-अष्टौ॥ न नव॥ च इति अधः अधः वचनम्॥	= न आठ और न नौ। सूत्र में अधो अधो (नीचे नीचे) वचन है सो

भूमय घनोदधिवलय प्रतिष्ठा " तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिता और श्रुतसागरि सूरिके मतमें ये भूमियाँ घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय अम्बुवातवलय (अर्थात् घनोदधिवातवलय) के आधार है और अम्बुवातवलय तनुवातवलय के आधार है भावार्थ तत्त्वार्थराजवार्तिककारक, सर्वार्थसिद्धिकर्त्ता के इनमाकर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार तथा पं० जयचन्द्रराय जी सदासुख जी इत्यादिके अनुसार तो ये समस्त पृथिवी घनोदधिवातवलय के आधार हैं और घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाशके आधार है परन्तु श्लोक० वा० और श्रुतसागरीटीकाके अनुसार भूमियाँ घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय घनोदधिवातवलयके आधार है ऐसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रगट है॥ (क) [illegible] ...द्वीपुभासां घनवातवलय स्थितिर्वा कोपि मर्मर्म—[illegible]

अर्थः—अम्बुवातवलय (=घनोदधिवातवलय) यह तनुवातवलय के आधार है (कैसा है अम्बुवातवलय कि) घनवातवलय की स्थिति का कारण है और यह घनवात (वलय) भूमिकी स्थिति का हेतु है। भूमि की स्थिति का हेतु कछुआ इत्यादि नहीं है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४५ ॥

(ख) सप्ताः सप्त भूमयः घनवात प्रतिष्ठा वर्तन्ते स च घनवात अम्बुवातप्रतिष्ठोऽस्ति। स च अम्बुवात तनुवातप्रतिष्ठो वर्तते। स च तनुवात आकाशप्रतिष्ठो वर्तते इत्यादि इसी सूत्र के नीचे मुनिसागरि टीका पृष्ठ ८६ से उद्धृत ॥ सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकारका मत पृष्ठ ६ में उल्लेख करदियाहै ॥

सात भूमियाँ

घनोदधिवात = अम्बुवात

घनवात

तनुवात

सर्वापता भूमयः घनोदधिवातवलयप्रतिष्ठाः, घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ, घनवातवलय तनुवातवलयप्रतिष्ठ तनुवातवलय आकाशप्रतिष्ठम् राजवार्तिकपृष्ठ १६२ ॥ तत्र सर्वपृथिवी पद्मप्रतिष्ठा पद्मा घनोदधिवलयप्रतिष्ठा घनोदधिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठ ॥ ततः महातमा भूतमाकाशम् ॥ समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १४ ॥

सात भूमियाँ

घनवातवलय

अम्बुवातवलय = घनोदधिवातवलय

तनुवातवलय

तीनलो तवाल चतु गताकार सब ताके घनाद्धि घन(वात) तनुवात के आधार है। कविवर द्यानतरायके चरचाशतकसे उद्धृत।
कैसा है? सर्वतोक घनोदधिवातवलय (जो जल और पवन मिश्रित है) ताके आधार है और घनोदधिवातवलय
घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है" ॥
"ए भूमि तो घनोदधिवातवलय के आधार हैं। बहुरि घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है बहुरि
घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधार है ॥ पं० जयचन्द्ररायजी कृत वचनिका पृष्ठ मुद्रित २६६ ॥
तहां ते समस्त पृथिवी तो घनोदधिवातवलयके आधार है। और घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके
आधार है। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलय के आधार है सदासुखजी कृत अर्थप्रकाशिका [illegible] ।॥

तिर्यक्प्रचयनिवृत्यर्थम् ॥

किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तिर्यक् * प्रचय-निवृत्ति-अर्थम् ।।।। = चौरस (तिर्यक्) या तिरछा (तिर्यक्) फैलाव (= प्रचय) के निषेध के लिए अर्थात् ये पथिवी एक दूसरेके नीचे २ अवस्थित हैं तिरछे, चौरस, फैलाव या ऊर्ध्व में नहीं हैं

किम्‌ता: ।।। भूमय ।।। नारकाणाम्'। सर्वत्र*आवासा: ', = (प्रश्न) क्या वे भूमियें नारकियोंके सर्वत्र वासस्थान हैं

आहोस्वित् * क्वचित् * क्वचित् * इति * तद् = अथवा (= आहोस्वित्) कहीं कहीं पर हैं। इस (बात) के

निर्धारण अर्थम् ।।।। आह। = निर्णयके लिए (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि—

तासु त्रिंशत्पचविंशतिपचदशदशत्रिपचोनैकनरकशतसहस्राणि पच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

= तासु त्रिंशत्‌नरकशतसहस्राणि पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि, पञ्चदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिनरकशतसहस्राणि, पञ्चोनएकनरकशतसहस्राणि, च, पञ्च एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सन्धार्थ —तासु ।।। त्रिंशत्‌नरकशतसहस्राणि '।।। = उन (भूमियों) में तीस लाख बिल (= नरक)

पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि '।।। पञ्चदश- = पच्चीस लाख बिल, पन्द्रह

नरकशतसहस्राणि '।।। दशनरकशतसहस्राणि '।।। = लाख बिल (= आवास) दश लाख बिल (= निवासस्थान)

इतनामेंसे आम्नायक समाप्यनस्वाभाविगमसूत्र में इस सूत्रके स्थानमें " लाख नाहका केवल इतना सच है इसका अर्थ है कि उन (रत्नप्रभादि भूमियों) में नरक हैं और उक्तभाष्यके भाष्यकारने इस कथनका कि प्रथम भूमिमें तीसलाख बिले हैं दूसरीमें पचीसलाख तीसरीमें पन्द्रह लाख चौथीमें दशलाख पांचवीमें तीनलाख छठीमें पांचकमि एकलाख और सातवीं भूमिमें केवल पांच नरक बिलें या निवासस्थान हैं भाष्यमें समावेश करदिया है और इसी प्रकार भ प्रथमें यह कथन कि पहिली नरकभूमिमें तेरह दूसरीमें ग्यारह तीसरीमें नव चौथीमें सात पांचवीमें पांच छठीमें तीन सातवींमें एकही प्रस्तर है वर्णित है। पूज्यपाद स्वामीने प्रस्तरकी गणनाका कथन इसी सूत्रकी पुष्टिमें करदिया है यथार्थमें इसमें

तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन संख्यायन्ते यथाक्रमम् ॥ रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकशतसहस्राणि, शर्कराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, वालुकाप्रभायां पञ्चदश नरकशतसहस्राणि, पङ्कप्रभायां दश नरकशतसहस्राणि, धूमप्रभायां त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तमःप्रभायां पञ्चोनमेकं नरकशतसहस्रं महातमःप्रभायां पञ्च नरकाणि ॥ रत्नप्रभायां नरकप्रस्तारास्त्रयोदश ।

त्रि-नरकशतसहस्राणि॥ पंचोनं-एकनरक	= तीन लाख (बिले), पांच घाटि एक
शतसहस्रं॥ पञ्च॥ यथाक्रमम्॥	= लाख और (= व) पांच ही (= एव) क्रमानुसार (नारकियोंके आवास-निवास स्थान हैं) अर्थात् प्रथम पृथिवीके अब्बहुल भागविषें तीसलाख, दूसरीमें पचीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दश लाख, पांचवीमें तीन लाख, छठवीमें ९९९९५ बिल हैं सातवीं भूमिमें फक्त पांच बिल हैं ॥
शब्दार्थ — तासु॥ रत्न प्रभादिषु॥ भूमिषु॥	= उन रत्नप्रभादिक भूमियों में
नरकाणि॥ अनेन॥ संख्यायन्ते॥ यथाक्रमम्॥	= बिल या नारकियोंके निवासस्थान इस अनुक्रमसे गणना किये जाते हैं कि
रत्नप्रभायाम्॥ त्रिंशत्॥ नरकशतसहस्राणि॥	= रत्नप्रभा (प्रथमभूमि) विषें (अर्थात् उसके अब्बहुल भागमें) तीसलाख बिल हैं
शर्कराप्रभायां॥ पञ्चविंशतिः॥ नरकशतसहस्राणि॥	= शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) में पचीस लाख बिल हैं
वालुकाप्रभायां॥ पञ्चदश॥ नरकशतसहस्राणि॥	= वालुकाप्रभा (तीसरी भूमि) में पन्द्रह लाख नरक बिल हैं
पङ्कप्रभायां॥ दशनरकशतसहस्राणि॥	= पङ्कप्रभा (चौथी पृथिवी) में दश लाख बिल हैं
धूमप्रभायां॥ त्रीणि॥ नरकशतसहस्राणि॥	= धूमप्रभा (पांचवीं भूमि) में तीन लाख नरक बिल हैं
तमःप्रभायां पञ्च ऊनं॥ एक-नरक शतसहस्रं॥	= तम प्रभा (छठवीं पृथिवी) में पांच घाटि एक लाख बिल हैं
महातमःप्रभायां॥ पञ्च॥ नरकाणि॥	= महातमः प्रभा (सातवीं भूमि) में पांच नरक बिल हैं
रत्नप्रभायां॥ नरकप्रस्ताराः॥ त्रयोदश॥	= रत्नप्रभा (भूमि) में नरक पटल तेरह हैं (पटल = पाथड़ा)

पहिला सूत्र और पहिला कथन समाप्त । सूत्र और उसके भाष्यसे मिलजाता है इसलिये कह सकते हैं कि दोनों भाष्यका तात्पर्य अर्थात् इन सूत्रोंसे सम्बंध रखता है एक है।

१०

ततोऽध आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्य ॥

अथ तासु भूमिषु नारकाणां क प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

तत ॥ अध ॥ आसप्तम्या ॥ द्वौ ॥ द्वौ ॥ नरक-प्रस्तारौ ॥ = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल हीनौ ॥ = न्यून हैं अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल या पाथड़े हैं

इतर ॥ विशेष ॥ लोक-अनुयोगत ॥ वेदितव्य ॥ = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त वा लोकनियोगशास्त्रसे जानना चाहिये

अथ ॥ तासु ॥ भूमिषु ॥ नारकाणां ॥ क ॥ = आगे (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेष ॥ इति ॥ अत ॥ आह ॥ = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) हैं। इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया ॥ ३ ॥

= नारका नित्य अशुभतरलेश्या, नारका नित्य अशुभतर परिणामा, नारका नित्य अशुभतर देहा, नारका नित्य अशुभतरवेदना, नारका नित्य अशुभतर विक्रिया ॥

(१) हमारे पास तत्त्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियोंके अतिरिक्त एक प्रति तत्त्वार्थ सूत्रकी आमचन्द्रजी सेठ द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायां त्रयोदश... द्वितीया" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् 'नारका नित्या इत्यादि सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रतर हैं और नीचे २ की भूमियोंमें दो दो घाटि हैं अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रतर हैं दूसरी में ग्यारह तीसरी में नौ चौथी में सात पांचवी में पांच छठीमें तीन और सातवीमें एक प्रतर है। अन्य ग्रन्थोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति तत्त्वार्थराजवार्तिक प० सदासुखजीकी वचनिका तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रन्थों में इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय गर्भित कर दिया है देखा सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८ राजवार्तिक पृष्ठ ११८ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६। ६६ वचनिका पृष्ठ १०२ १०३ अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १५३ इन सबमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है।

हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है। श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य० में नारका शब्द नहीं है शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है। उक्त सभाष्य० के 'तासु नरका' इस हमारे सूत्रकी तीसरे सूत्रमें अनुवृत्ति आती है तब नारका शब्द जोड़ने से पाठ लगभग एकसा हो जाता है तात्पर्य दोनोंका एक है।

१०

अन्वयार्थः—नारका ! । नित्य अशुभतर-लेश्या ।। = नारकी जीव हैं व निरन्तर अशुभतर लेश्याओं सहित अर्थात् अशुभतर कापोत नील और कृष्ण लेश्याओं सहित

नित्य अशुभतर-परिणाम ।। नित्य अशुभतर देह ।। = निरन्तर अशुभतर परिणतियुक्त, सदा अशुभतर शरीरवाले

नित्य अशुभतर वेदना ।। नित्य अशुभतर विक्रिया¹। = सदैव अशुभतर पीड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होते हैं क्योंकि उनके सदा अशुभ कर्मका उदय है इस कारण निरन्तर उनके लेश्या परिणाम, देह और वेदना और विक्रिया अशुभ ही होते हैं ।।

भावार्थ यह है कि तिर्यंच गतिसे अशुभतर लेश्याओंकी अपेक्षा रत्नप्रभा प्रथम भूमिमें अशुभतर लेश्या हैं। रत्नप्रभासे शर्कराप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना, विक्रिया हैं, शर्कराप्रभा से बालुकाप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना विक्रिया हैं बालुकाप्रभासे पङ्कप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; पङ्कप्रभासे धूमप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना,

(१) "अशुभतर" तर=कुछ अधिक तम=बहुत अधिक। यदि दो वस्तुओंमेंसे एकका शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता प्रगट करनी हो तो उस शब्द के अन्त में 'तर' प्रत्यय लाते हैं जैसे इस सूत्र में अशुभतर लेश्या। और यदि बहुतसी (दो से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सबके ऊपर प्रगट करनी हो तो तम प्रत्यय लाते हैं "जैसे अशुभतम लेश्या" इत्यादिसे जानना।

(२) लेश्या शब्दका एकवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या' शब्द है उसका बहुवचन स्त्रीलिंग 'लेश्याः' होता है। परन्तु समासमें "नित्याशुभतर लेश्याः" आया है जिसका अर्थ यह है कि निरन्तर अशुभतर हैं लेश्या जिनके (ऐसे नारकी हैं) अर्थात् नारका शब्द का विशेषण है अतः पुल्लिङ्ग बहुवचनमें रक्खा है।

(३)वेदना और विक्रिया शब्दों का क्रम से एक वचन स्त्रीलिंग वेदना और विक्रिया हैं उनके बहुवचन स्त्रीलिंग क्रमसे वेदनाः विक्रियाः होते हैं परन्तु समास में नित्याशुभतरवेदना' 'नित्याशुभतरविक्रिया' आये हैं जिनका क्रम से अर्थ है 'निरन्तर अशुभतर है वेदना जिनके और निरन्तर अशुभतर है विक्रिया जिनके' अर्थात् नारका शब्दका ... ।।' विक्रिया शब्दों का बहुवचन पुल्लिङ्ग में रक्खा है ।।

ततोऽध आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्य ॥

अथ तासु भूमिषु नारकाणां क प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

ततः ॥ अधः ॥ आसप्तम्याः ॥ द्वौ ॥ द्वौ ॥ नरक प्रस्तारौ[1] = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल

हीनौ ॥ = न्यून हैं अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल या पाथड़े हैं

इतरः ॥ विशेषः ॥ लोक-अनुयोगतः ॥ वेदितव्यः ॥ = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त या त्रिलोकप्रज्ञप्ति शास्त्रसे जानना चाहिये

अथ ॥ तासु ॥ भूमिषु ॥ नारकाणां ॥ कः ॥ = आगे (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेषः ॥ इति ॥ अतः ॥ आह ॥ = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) हैं । इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया ॥ ३ ॥

= नारकाः नित्य अशुभतरलेश्याः, नारकाः नित्य अशुभतर परिणामाः, नारकाः नित्य अशुभतर देहाः, नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः, नारकाः नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे पास तत्त्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियोंके अतिरिक्त एक प्रति तत्त्वार्थ सूत्रकी कल्याणजी शेठ द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायां [illegible] द्वितीया" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् नारका नित्या इत्यादि सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रस्तर हैं और नीचे ६ की भूमियोंमें दो दो घाटि हैं अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रस्तर हैं दूसरी में ग्यारह तीसरी में नौ चौथी में सात पांचवीं में पांच छठीमें तीन और सातवीमें एक प्रस्तर है । अन्य ग्रन्थोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति तत्त्वार्थराजवार्तिक प० [illegible] तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रन्थोंमें इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय वर्णित कर दिया है देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८ राजवार्तिक पृष्ठ ११५ [illegible] पृष्ठ ६१ ६६ [illegible] पृष्ठ १०२ १०३ अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४३ इस अर्थमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है ॥

हमारे यहां इस ग्रन्थ का [illegible] और अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के [illegible] में नारका शब्द नहीं है [illegible] दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ [illegible] 'तासु नरका' इस सूत्रमें सूत्रके नीचले सूत्रकी अनुवृत्ति आती है तब नरका शब्द जोड़ने से [illegible] तात्पर्य दोनोंका एक है ॥

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अध कृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा। स्वायुष्प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ता॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः॥ तेषामुत्सेधः॥ प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडङ्गुलयः।

प्रथमा-द्वितीययोः कापोती लेश्या तृतीयायाम् = पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) में कापोतलेश्या है। तीसरी (बालुकाप्रभा) में

उपरिष्टात् कापोती = ऊपर (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है।

अधः नीला चतुर्थ्याम् = (इस तीसरी बालुकाप्रभा भूमिके) नीचे नील लेश्या है। चौथी (पङ्कप्रभा भूमि) में

नीला पञ्चम्याम् उपरि = नीललेश्या है। पांचवीं (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)

नीला अधः कृष्णा = नीललेश्या है। (इसके) नीचे (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है।

षष्ठ्याम् कृष्णा सप्तम्याम् परम कृष्णा = छठी (तमःप्रभा भूमि) में कृष्ण लेश्या है, सातवीं (महातमःप्रभा भूमि) में उत्कृष्ट कृष्णलेश्या है।

स्व आयुषः प्रमाण अवधृता द्रव्य लेश्या उक्ता = अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित कीगई द्रव्य लेश्यायें कही गई हैं। अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुतक एकसी रहती हैं।

भावलेश्या तु अन्तर्मुहूर्त-परिवर्तिन्यः = परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती है।

परिणामाः स्पर्श रस-गन्ध-वर्ण शब्दाः क्षेत्र-विशेष = परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण और शब्द हैं। स्थानभेदके

निमित्त-वशात् अतिदुःखहेतव अशुभतराः = निमित्तके वशसे (वे परिणाम) अति दुःखके कारण अशुभतर हैं।

देहाः च तेषाम् अशुभ-नामकर्म उदयात् = और (= च) उन (नारकी जीवों) के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे

अत्यन्त-अशुभतराः विकृत-आकृतयः हुण्ड— = अतिशय अशुभतर हैं (और) बुरी आकृतिवाले, हुण्डक—

संस्थानाः दुर्दर्शनाः तेषाम् उत्सेधः प्रथमायाम् = संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमें बुरे) हैं उन (नारकियों) की उंचाई प्रथम भूमिमें

सप्त धनूंषि त्रयः हस्ताः षट् अङ्गुलयः = सात धाप तीन हाथ छै अंगुल है। अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः ॥ नित्यमशुभतरा लेश्या-दयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः ॥

विक्रिया है; पङ्कप्रभा से तमः प्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है; और तमःप्रभासे महातमः प्रभामें (सातवीं भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया है ॥

वृत्त्यर्थ—लेश्या-आदयः।। = लेश्या, परिणाम-देह वेदना-विक्रियाएं (आदय) हैं

व्याख्यात अर्थाः।। = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये हैं

अशुभतरा।। इति प्रकर्ष-निर्देश।।, तिर्यक्-गतिविषय-अशुभलेश्या-आदि अपेक्षया।। अधः अधः स्वगति अपेक्षया च।। वेदितव्य।। = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाका अर्थ है। तिर्यंच-गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकों में) अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की मणानता) जाननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि हैं उनकी अपेक्षासे नरक-गति में अशुभतर लेश्या है और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रिया हैं

नित्य शब्द।। आभीक्ष्ण्य-वचन।। नित्यम्।।। = (इस सूत्र में) नित्य शब्द बारबार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है निरन्तर

अशुभतराः।। लेश्या आदयः।। येषाम्।। = अशुभतर हैं लेश्या, परणति, शरीर, पीड़ा, और विक्रिया (= आदय) जिनके

ते।। नित्य अशुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रिया।। नारकाः।। = वे नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त और = तथा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित = और सदाकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव हैं ॥

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधः कृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा। स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः॥ तेषामुत्सेधः॥ प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडङ्गुलयः।

प्रथम-द्वितीययोः॥ कापोती॥ लेश्या॥ तृतीयायां॥ = पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) में कापोतलेश्या है। तीसरी (बालुकाप्रभा) में
उपरिष्टात् कापोती॥ = ऊपर (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है।
अधः नीला॥ चतुर्थ्याम्॥ = (इस तीसरी बालुकाप्रभा भूमिके) नीचे नील लेश्या है। चौथी (पङ्कप्रभा भूमि) में
नीला॥ पञ्चम्याम्॥ उपरि = नील लेश्या है। पांचवी (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)
नीला॥ अधः कृष्णा॥ = नीललेश्या है। (इसके) नीचे (के बिलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है
षष्ठ्याम्॥ कृष्णा॥ सप्तम्याम्॥ परम कृष्णा॥ = छठी (तम प्रभाभूमि) में कृष्ण लेश्या है, सातवीं (महातमःभूमि) में उत्कृष्ट कृष्णलेश्या है
स्व आयुषः॥ प्रमाण अवधृता॥ द्रव्य लेश्या॥ उक्ता॥ = अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित की गई द्रव्य लेश्यायें कही गई हैं
अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुतक एकसी रहती हैं।
भावलेश्याः॥ तु॥ अन्तर्मुहूर्त-परिवर्तिन्यः॥ = परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं।
परिणामाः॥ स्पर्श रस-गन्ध-वर्ण शब्दाः॥ क्षेत्र-विशेष = परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध वर्ण और शब्द हैं। स्थानमदके
निमित्त-वशात्॥ अतिदुःखहेतवः॥ अशुभतराः॥ = निमित्तके वशसे (वे परिणाम) अति दुःखके कारण अशुभतर हैं।
देहाः॥ च॥ तेषाम्॥ अशुभ-नामकर्म उदयात्॥ = और (= च) उन (नारकी जीवों)के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे
अत्यन्त अशुभतराः॥ विकृत आकृतयः॥ हुण्ड— = अतिशय अशुभतर हैं (और) बुरी आकृतिवाले, हुण्डक—
संस्थानाः॥ दुर्दर्शनाः॥ तेषां॥ उत्सेधः॥ प्रथमायां॥ = संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमें बुरे) हैं उन (नारकियों) की ऊंचाई प्रथम भूमिमें
सप्त॥ धनूंषि॥ त्रयः॥ हस्ताः॥ षट्॥ अङ्गुलयः॥ = सात धनुष तीन हाथ छै अंगुल है। अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

लेश्यादयो व्याख्यातार्था ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देश । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽध स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्य ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचन ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषा ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारका ॥

विक्रिया हैं; धूमप्रभा से तमः प्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; और तमःप्रभासे महातमः प्रभामें (सातवीं भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं ॥

वृत्त्यर्थ—लेश्या-आदयः॥ = लेश्या, परिणाम-देह वेदना विक्रियाएं (आदयः) हैं

व्याख्यात अर्थाः॥ = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये हैं

अशुभतराः॥ इति प्रकर्ष-निर्देश ॥ = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाका अर्थ है । तिर्यंच-

तिर्यग्-गतिविषय-अशुभलेश्या आदि अपेक्षया॥ = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकों में)

अधः अधः स्वगति अपेक्षया॥ = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे

च वेदितव्य ॥ = माननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि हैं उनकी अपेक्षासे नरक गति में अशुभतर लेश्या है और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना अशुभतर विक्रियाएं हैं (अशुभतर लेश्याओं की प्रधानता)

नित्य-शब्द ॥ आभीक्ष्ण्य-वचन ॥ = (इस सूत्र में) नित्य शब्द बारबार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है

नित्यम् ॥ = निरन्तर

अशुभतराः। लेश्या आदयः। = अशुभतर हैं लेश्या, परणति, शरीर, पीड़ा, और विक्रिया (= आदयः)

येषाम् ॥ = जिनके

ते॥ नित्य-अशुभतर-लेश्या परिणाम- = वे नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त और

देह-वेदना- = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित

विक्रियाः॥ नारकाः। = और सर्वकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव हैं ॥

॥ परस्परोदीरितदुःखाः[1] ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम् । भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेश-भाजा च दूरादेव दुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुःखाः प्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्च श्रृगालादिवत्स्वाभिघाते प्रवर्तमाना

सूत्रम्—परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ = (नारका) परस्पर-उदीरित-दुःखा (भवन्ति) ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—नारकाः॥ परस्पर उदीरित दुःखाः॥ भवन्ति = नारकी जीव परस्पर उत्पन्न कियाहुआ दुःख (एक दूसरको) देनवाले होते हैं। अर्थात् कुत्तोंकी भांति निरन्तर एक दूसरके साथ लड़ते झगड़ते रहते हैं।

वृत्त्यनुवाद — कथं परस्पर उदीरित— = (प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) कियाहुआ अथवा उपजायाहुआ

दुःखत्वं॥ नारकाणाम्॥ मिथ्या-दर्शन उदयात्॥ = नारकीजीवोंके दुःख होता (= दुःखत्वं) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे

विभङ्ग-व्यपदेश-भाजा॥ भवप्रत्ययेन॥ अवधिना॥ च(४) = विभङ्गनामक या विभंग नामकाधारक भवनिमित्तक अवधिज्ञानकरि

दूरात्॥ एव दुःखहेतून्॥ अवगम्य- = दूरसे ही (नारकी जीव) दुःखके कारणोंको जानकर

उत्पन्न-दुःखाः॥ च प्रति-आसत्तौ॥ परस्पर = पीड़ा उपजाये हैं और (= च) अति निकट होनेपर आपसमें (एक दूसर को)

आलोकनात्॥ प्रज्वलित-कोप-अग्नयः॥ च = देखनेसे कोपरूपी अग्नि प्रज्वलित है जिनके अर्थात् तीव्रकोपयुक्त होजाते हैं॥ तथा

पूर्व भव अनुस्मरणात्॥ अतितीव्र = पहिले जन्मके बुरे या निकृष्ट (= अनु) स्मरणसे अतितीव्र और

अनुबद्धवैराः॥ च श्रृगाल आदिवत् = दृढ़ (= अनुबद्ध) वैरकर होते हैं और (= च) सियार अथवा गीदड़ आदिके सदृश

स्व अभिघाते॥ प्रवर्तमानाः॥ = अपने घात (करने) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदड़ कुत्ते आदि अन्य गीदड़ कुत्ते आदिको देख कर निर्दयता पूर्वक क्रोध करते हैं तथा परस्पर दांतोंका प्रहार करते हैं तैसेही नारकी जीव एक दूसरके और अपने घात करनेमें प्रवर्तते हैं।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। (२) दूरात् शब्द विभक्ति है। (३) अवगम्य शब्द सम्बन्धक भूत कृदन्त है। (४) च वाक्य भूषणके लिये है। (५) अनु शब्दका अर्थ पदकारकाओंने निकृष्ट किया है निकृष्ट स्मरणसे अभिप्राय है कि नारकी जीवोंका कुभवविस पूर्व भवकी बुरी बातोंकी सुधि आती है भली बातों की नहीं।

अधोऽधो द्विगुणद्विगुण उत्सेध ॥ अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णबाह्यनिमित्त-जनिता सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि पञ्चम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अध शीतवेदनमेकं शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्यो शीत-वेदनान्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवो-त्पादयन्ति । त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्या ॥

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अधस अध ॥ द्विगुण-द्विगुण ॥ उत्सेध ॥ अभ्यन्तर = नीचे २ (ऊपरके नरकसे नरपक नरकमें) दूनी २ ऊंचाई है । अन्तरंग

असत्-वेद्य उदये ॥ सति ॥ अनादि-पारिणामिक = असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेपर अनादिकाल परिणमनरूप (भूमिका)

शीत-उष्ण बाह्य-निमित्त जनिता ॥ सुतीव्रा ॥ वेदना ॥ = बाह्यनिमित्तक शीत उष्णकरि (नारकियोंके) तीव्र पीड़ा

भवन्ति ॥ नारकाणां ॥ प्रथमा-द्वितीया-तृतीया = होती है । नारकियोंके पहिली (भूमि)में दूसरी (शर्कराप्रभा)में तीसरी (बालुकाप्रभा)में

चतुर्थीषु ॥ उष्णवेदनानि ॥ एव ॥ नरकाणि ॥ = चौथी (पङ्कप्रभा पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल हैं

पंचम्याम् ॥ उपरि ॥ उष्णवेदने ॥ द्वे ॥ = पांचवी (धूमप्रभाभूमि में ऊपरके उष्णवेदनारूप दो

नरकशत-सहस्रे ॥ अध ॥ शीतवेदनम् ॥ = लाख बिल है । (पांचवी भूमिके शेष) नीचेके शीतवेदनारूप

एकम् ॥ शत-सहस्रम् ॥ षष्ठी-सप्तम्यो ॥ = एक लाख (बिले) हैं । छठी (तमःप्रभा भूमि) में और सातवीं (महातमःप्रभा भूमि)में

शीत-वेदनानि ॥ एव ॥ शुभम् ॥ करिष्याम ॥ इति ॥ = शीतवेदना ही है । अच्छी (विक्रिया) हम करेंगे ऐसे (नारकी विचारे है)

अशुभतरम् ॥ विकुर्वन्ति ॥ सुखहेतून् ॥ उत्पादयाम ॥ = परन्तु अशुभतर ही करते हैं । सुख के कारण हम पैदा करेंगे ।

इति ॥ दुःखहेतून् ॥ उत्पादयन्ति ॥ = इस प्रकार (नारकी जीव विचार करते हैं परन्तु) दुःखके कारणही उपजाते है

ते ॥ एते ॥ भावा ॥ अध ॥ अध ॥ अशुभतरा ॥ = ते ये परिणाम (एक नरककी अपेक्षासे दूसरेमें) नीचे नीचे अशुभतर

वेदितव्या ॥ किम् ॥ एतेषाम् ॥ नारकाणाम् ॥ = जानना चाहिये ॥ (प्रश्न) क्या इन नारकियोंके

शीत-उष्ण-जनितम् ॥ एव ॥ दुःखम् ॥ उत ॥ = शीत और उष्णसे उत्पन्न हुआ ही दुःख है अथवा

अन्यथा ॥ अपि ॥ भवति ॥ इति ॥ आह ॥ = अन्य प्रकार भी (नारकी जीवोंको दुःख) होता है अतः (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

व्याकरणोंके सूत्रोंके अनुसार होता है या सम्बन्धित सत्पाठ होता है जैसे व्रीहि पच्यमानि इस वाक्य में पच्यमानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। व्रीहि शब्द भी या पच्यमानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है परन्तु पच्यमान् से मनवांछित (अपेक्षित) तर्क की विभक्ति और वचन नहीं होता है या संज्ञा का लिङ्ग नहीं होने की आवश्यकता नहीं है जैसे सप्त भूमयो न सर्वा न नव स्मृति (संस्कृत पृष्ठ (६०) यहां पर सप्त अष्टौ नव तीनों शब्दों को बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है या भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमय हैं, लिंग सप्त-अष्टौ नव शब्दों का कार्य भी समझना क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसे ही रूप धरते हैं घनाम्बु शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक् शब्द के साथ पंचमी विभक्ति है सो घनाम्बुभ्यः पंचमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिङ्ग घनाम्बु शब्द का है परन्तु घनाम्बुभ्यो पंचमी विभक्ति बहुवचन और पुंल्लिङ्ग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुंल्लिंग है इस अध्यायके किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोड़कर नरक शब्द नहीं आया है नरक शब्द दूसरे सूत्रमें विलोक अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंकप्रभा धूमप्रभा तमःप्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में आया है उसका अर्थ नरकके दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इसमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लाना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द आया है इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम घनाम्बुभ्यः ऐसा पाठ पढ़ें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेकाबिल) ऐसा अर्थ हो जायगा जो आगम विरुद्ध है सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् घनाम्बुभ्यः = चौथी पंकप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्यः = चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंका पहला पटल ॥

चतुर्भ्यः आ पाठका पहिले अध्यायके तीसवां सूत्र में "एकस्मिन् आ चतुर्भ्यः" दूसरे अध्यायके अट्ठाइसवां सूत्रमें संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः" और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः" आये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक या पर्यन्त है और प्राक का अर्थ पहिले पहिले हैं आ चतुर्भ्यः पहिला 'काल शब्द' का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा आ चतुर्भ्यः शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा प्राक् चतुर्भ्यः समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुंल्लिंग है। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर् शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुंल्लिंग हैं अर्थात् चतुर् शब्दकी पंचमीविभक्ति नपुंसक और पुंल्लिंगमें एकही रूप चतुर्भ्यः धारण करती है इसलिये "प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्ध है।

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति ॥

किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकार उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया कृत-असि-वासि-परशु-	= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार (= असि) कुल्हाड़ा (= वासि) फरसा (परशु)
भिंडि-माल-शक्ति-तोमर-कुन्त	= बन्दूक (= भिंडि) भाला (= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे (तोमर) भाला सेला (= कुन्त)
अयस्घन आदिभिः आयुधैः च स्व-कर-	= लोहेके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा (= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ
चरण-दशनैः छेदन भेदन-तक्षण-दंशन	= पग दांतोंकरि छेदना भेदना छीलना (= तक्षण) काटना (दशन)
आदिभिः परस्परस्य अतितीव्रं दुःखम्	= आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको
उत्पादयन्ति किम् एतावान् एव दुःख-उत्पत्ति	= उत्पन्न करते हैं। क्या इतने ही दुःख उत्पत्तिहोनेके
कारण-प्रकार उत अन्य अपि कश्चित् अस्ति इति	= हेतु भेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य) भी है
अतः आह	= इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः = नारका संक्लिष्टा-असुर-उदीरित-दुःखाः च प्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थ — नारकाः प्राक् चतुर्थ्याः	= नारकीभीय चौथी (पंकप्रभा भूमिसे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत
संक्लिष्ट—असुर	= क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि
उदीरित-दुःखाः च	= उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहत हैं

(१) सामी सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है। (२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं। उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और जानचन्द्रजी लाहौरकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है और तीन प्रतियोंमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है। इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित जान पड़ता है क्योंकि एक वि. वि चतुर्थ में [illegible] पर्यंत [illegible] जिस शब्दकी सम्बन्ध रखती है उस संज्ञा का विशेषण कहलाती है। एक वि. वि चतुर् [illegible] नहीं विभक्ति नहीं वचन और वही लिंग संस्कृतभाषाके

व्याकरणोंके सूत्रोंके अनुसार होता है जो सम्बन्धित सत्र्याका होता है जैसे श्रीति बलयानि इस वाक्य में बलयानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। श्रीति शब्द भी जो बलियानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगमें है परन्तु यदभवन् स भवद्यान् (उद्योत) तक की विभक्ति और वचन नहीं होता है जो संज्ञा का लिङ्ग नहीं होने की आवश्यकता नहीं है जैसे "सप्त भूमयो न भवी न नव सति" (संस्कृत पृष्ठ १८०) यहां पर सप्त भवी नव तीनों शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) का है जो भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमय है किन सप्त भवी नव शब्दों का कोई भी समझना क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसा ही रूप धरते हैं चतुर्थ शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक शब्द के साथ पञ्चमी विभक्ति है सो चतुर्थ्याः पञ्चमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग चतुर्थी शब्द का है परन्तु चतुर्भ्यः पञ्चमी विभक्ति बहुवचन और पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुल्लिंग है इस सम्बन्धक किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोड़कर नरक शब्द नहीं आया है नरक शब्द दूसरे सूत्रमें विशेषक अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंकप्रभा धूमप्रभा तम प्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में आया है उसका अर्थ नरकको दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इससे नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लाना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द आया है इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम चतुर्भ्यः ऐसा पाठ पढ़ें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेवाले बिल) ऐसा अर्थ होजायगा जो आगम विरुद्ध है सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् चतुर्थ्याः = चौथी पङ्कप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्य = चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंके पहले पहले॥

चतुर्भ्यः यह पाठ्य पहिले अध्याय के तीसवां सूत्र में 'एकस्मिन् आ चतुर्भ्यः' दूसरे अध्याय के अट्ठाइसवां सूत्रमें संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः" आये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक या पर्यन्त है और प्राक का अर्थ पहिले पहिले है जो चतुर्भ्यः पहिला "ज्ञान शब्द का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा आ चतुर्भ्यः शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा 'प्राक्-चतुर्भ्यः समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुल्लिंगहै। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुल्लिंग हैं अर्थात् चतुर शब्दकी पंचमीविभक्ति नपुंसक और पुल्लिंगमें एकही रूप चतुर्भ्यः "धारण करती है अतः प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्ध है।

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति ॥ किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकार उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया कृत-असि-वासि-परशु-
भिण्डि माल-शक्ति-तोमर-कुन्त
अयस्घन आदिभिः ॥ आयुधैः ॥ च॰स्व-कर-
चरण-दशनैः ॥ छेदन भेदन-तक्षण-दशन
आदिभिः ॥ परस्परस्य ॥ अतितीव्रं ॥ दुःखम् ॥
उत्पादयन्ति ॥ किम्॰ एतावान् ॥ एव दुःख उत्पत्ति
कारण-प्रकार ॥ उत॰अन्य ॥ अपि॰कश्चित्॰ अस्ति इति॰
अतः आह ॥

= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार (= असि) कुल्हाड़ा (= वासि) फरसा (परशु)
= बन्दूक (= भिण्डि) चक्र (= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे (तोमर) भाला सेल (= कुन्त)
= लोहके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा (= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ
= पग दांतोंकरि छेदनाभेदना छीलना (= तक्षण) काटना (दशन)
= आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको
= उत्पन्न करते हैं । क्या इतने ही दुःख उत्पन्न होनेके
= इतु अन्यभेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य) भी है
= इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः = नारका संक्लिष्टा-असुर-उदीरित-दुःखाश्चप्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थः— नारकाः ॥ प्राक्॰चतुर्थ्याः ॥
संक्लिष्ट—असुर
उदीरित—दुःखा ॥ च॰

= नारकीभी चौथी (पंकप्रभा भूमिसे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत
= क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि
= उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहते हैं

(१) इनमें सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका रूप और पाठ एकसा है । (२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं । उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और बालचन्द्रजी आदिकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है और शेष प्रतियोंमें 'प्राक् चतुर्थ्याः' ऐसा पाठ है । इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित जान पड़ता है क्योंकि एक कि कि चतुर् से लगाय दशन् इत्यादि उन्नीस पर्यन्त के सख्यावें जिस सख्यासे सम्बन्ध रखती हैं उस संज्ञा का विशेषण कहलाती हैं । एक कि कि चतुर् तक संख्याओंका वही विभक्ति वही वचन और वही लिङ्ग संस्कृतभाषाके

अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नात परमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्द पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः ॥ सुतप्तायोरसपायननिष्टप्ताय-स्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहणावतरणायोघनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैल-

अवधि प्रदर्शन अर्थम् ॥ प्राक्चतुर्थ्याः ॥	= मर्यादा दिखानेके लिये (इस सूत्रमें) प्राक् चतुर्थ्याः (अर्थात्-चौथी पङ्कप्रभाभूमिसे पहिले पहिले तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी पर्यंत)
इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु ॥	= ऐसा गुणवाचक (वाक्य) है । ऊपरकी तीन (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा)
पृथ्वीषु ॥ संक्लिष्ट-असुराः ॥ बाधा हेतवः ॥	= भूमियोंमें संक्लिष्ट परिणामवाले असुर (नारकियोंको) पीड़ा (उपजाने) के कारण हैं
न अतः परम्	= नहीं हैं इस (तीसरी वालुकाप्रभाभूमि)से आगेके (पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमःप्रभा भूमियोंमें इन असुरों द्वारा पीडा उपजावनेका हेतु)
इति प्रदर्शन-अर्थम् ॥	= ऐसा दिखावनेके लिये (प्राक् चतुर्थ्याः वाक्य सूत्रमें) है ।
च-शब्दः ॥ पूर्व उक्त	= (इस सूत्रमें) चशब्द पहिले कहे गये (= तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर-लेश्या परिणामादिसे उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न)
दुःख-हेतु-समुच्चय अर्थः ॥	= दुःखोंके कारणोंके समर्थनके लिये है तात्पर्य यह है कि अशुभतर लेश्या परिणामादिकसे उत्पन्न वेदना तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न पीड़ा और असुरोंके द्वारा (तीसरे नरक तक) उत्पन्न बाधा इसप्रकार नारकी जीवोंको तीन प्रकारके दुःख होते हैं ।
सुतप्त-अयस् रस-पायन-निष्टप्त-अयस्-	= अति संतप्त लोहे (अयस्)के रसके पिलानेसे, अति संतप्त लोहेके
स्तम्भ आलिंगन-कूट	= खम्भसे आलिंगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत
शाल्मलि (शाल्मली)-आरोहण अवतरण-	= सेमलके वृक्ष अर्थात् शूलीपर चढ़ानेसे, और उतारनेसे,
अयस्-घन-अभिघात-वासी-	= लोहेके (अयस्)घनसे ताड़नादि करि(अभिघात), कुल्हाड़ा(वासी) वसूला(वासी) तथा
क्षुर-तक्षण-क्षार-तप्ततैल-	= छुराद्वारा काटने(= तक्षण) छोलना(तक्षण)से, खारेपानी(= क्षार)तथा अतिउष्णतप्तस

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुरा । पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण सङ्क्लेशपरिणामेन यदुपार्जित पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टा संक्लिष्टा । संक्लिष्टा असुरा संक्लिष्टासुरा । संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति । किं तर्हि, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगति-नामकर्म विकल्पस्य।।। असुरत्व-संवर्तनस्य।।।	= देवगति नामक नामकर्मका भेद जो असुरत्वसंवर्तन तिस
कर्मण।।। उदयात्। अस्यन्ति परान्। इति असुरा।	= कर्मके उदयसे दूसरोंको फैंकते हैं अर्थात् दुःख देते हैं ऐसे असुर हैं
पूर्व-जन्मनि।।। सम्भावितेन। अतितीव्रेण।	= पहिले भवमें हासकने योग्य बहुत तीव्र
संक्लेशपरिणामेन। यद्।।। उपार्जितं।।। पापकर्म।।।	= संक्लेश भावकरि जो पापकर्म उपार्जन किया है
तस्य।।। उदयात्। सततं।।। क्लिष्टाः। संक्लिष्टाः।	= तिसके उदय से निरन्तर क्लेशयुक्त या क्लिशित (= क्लिष्ट) ते संक्लिष्ट हैं
संक्लिष्टाः। असुरा। संक्लिष्टा असुरा।	= निरन्तर क्लेशयुक्त परिणामवाले (= संक्लिष्ट) असुर (हैं वे) संक्लिष्ट असुर हैं
संक्लिष्ट इति * विशेषणात्।।।	= संक्लिष्ट ऐसे विशेषण-से अर्थात् असुरा शब्दके पहिले जो 'संक्लिष्ट' विशेषण है उससे (अभिप्राय है कि)
सर्वे। असुरा। नारकाणां। दुःखम्। न * उत्पादयन्ति	= सब असुरकुमार नारकियोंको पीड़ा नहीं उत्पन्न करते हैं
किम् * तर्हि *	= तो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीड़ा देते) हैं
अम्ब अवरीष आदय। एव * केचन * इति *	= अम्ब, अवरीष (= अम्बरीष) आदि (जातिके असुर) ही कोई ऐसे पीड़ा देते हैं

(१) अम्बावरीषादय " के स्थान में सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अम्बाम्बरीषादय है।

अम्ब अम्बरीष श्याम शबल रुद्र उपरुद्र काल-महाकालस्य असिपत्रवन	= अम्ब, अम्बरीष श्याम शबल रुद्र उपरुद्र काल महाकालस्य असिपत्रवन,
कुम्भी वालुका-वैतरणी खर स्वर महाघोषा	= कुम्भी वालुका वैतरणी [illegible] स्वर और महाघोष
पञ्चदश। एते संक्लिष्टा। असुराः।	= ये पंद्रह जाति के क्लेश परिणाम के धारक असुर
नारकीणाम्। वेदना। उदीरयन्ति	= नारकियोंको वेदना (पीड़ा) उत्पन्न करते हैं (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रपृष्ठ ७७)

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें ली है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग वा नपुंसकलिंगमें लाये हैं जिसका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सात इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों वा पृथ्वीयोंकी है। इसका यह आशय निकला कि एक-तीन सात इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है 'पथिवी अथवा भूमि की नहीहै।

(क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न होजावे (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबंधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनका उल्लेख पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' = (वाक्यका) यथार्थ आशय (= विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका संबंध वा अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप वा संदिग्धार्थ शब्दसे (= संदेहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव वा अर्थ (= अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका संबंध होजाता है नकि भूमि शब्दसे।

(ख) तेषु (= तिनमें उनमें) = नरकेषु (= नरकोंमें)। पूज्यपाद स्वामीने 'तेषु'का यही अर्थ लिया है। नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों के अर्थमें अर्थात् नरक (= निवासस्थान) के अर्थमें लाये हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिलें वा निवासस्थान हैं। और इस अध्यायके किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है परन्तु पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ करलिया है जैसाकि तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयो उसि सम्बन्धः॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा इत्यादि सात वाक्योंसे संस्कृतवृत्तिमें प्रगट है॥ स्मरण रहे कि प्रथम भूमिमें तीसलाख दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं। [redacted] अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकीजीवोंकी है। पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि। 'तास्वेक (= तासुएक = तिन भूमियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरों की है॥ तासु = तासु भूमिषु॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है। 'तासु शब्दको अनुवृत्तिभी इस सूत्रमें लेसकते हैं परन्तु तेषु (= तासु) स्पष्टताके लिये है।

(ग) सत्त्वानां = जीवोंकी तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव स्वर्गके देव इत्यादि भी जाते हैं॥ इसलिये 'सत्त्वानां'से आशय नारकाणांसत्त्वानां वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी भावार्थ 'नारकाः शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लीहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें (नारकाः शब्दकी अनुवृत्ति) आती है। 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे भी बिना सत्त्वानां' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने सत्त्वानां शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है सत्त्वानां' से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी (उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि सत्त्वानां' शब्द न लाते तोभी पाठकरूपसे और उपयुक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है।

ऽवसेचनाय कुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणा दु खमुत्पादयन्ति ॥ एवं छेदनभेदनादिभि शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषा न मरणमकाले भवति। कुत ? अनपवर्त्यायुष्कत्वात् ॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यता नारकाणामायु परिमाणमित्यत आह–

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अवसेचन अथस् कुम्भी-पाक अम्बरीष भर्जन वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन आदिभि । = सींचनकरि कोठक घरोंमें पकानेस भूनक्षमें भूननेस = वैतरणीनदीमें डुबानेस, (कोल्हू आदि) कलों (यन्त्र)में पेलनादि करि

नारकाणाम् दुःख॥उत्पादयन्ति;एवम्छेदन भेदनादिभि = नारकीनके वेदना उपजाते है। इस प्रकार छेदन भेदनादिक करि

शकलीकृत-मूर्तीनाम्॥अपि॥तेषाम्। = शरीरके खंडखंड कियमानपर(= कृत)भी तिन(नारकियों)की

न॥मरणम्॥ अकाले। भवति। कुत ? = (बिना आयु पूर्णकिये) अकालमें वा असमयमें मृत्यु नहीं होतीहै। (प्रश्न) क्योंकर(नारकियोंकीअकाल मृत्यु नहीं)

अनपवर्त्य आयुष्कत्वात्॥ = (उत्तर। क्योंकि (दूसरे अध्यायके अपवर्त्य सूत्रके अनुसार नारकीजीव) परिपूर्ण आयुवाले होतहै अर्थात नारकीजीव अपनी आयु परिपूर्ण किये बिना मृत्युको प्राप्त नहीं होते हैं

यदि॥एवम्॥तद्-एव-तावद्-नारकाणाम्॥आयुष्— परिमाणम्॥ उच्यताम् । इति अत आह = जो ऐसे है(नारकी पूर्णआयुवालेहैं) तो(= तावत्)वो(तद्)ही(एव)नारकियोंकी आयुकी मर्यादा कहीजाय (= उच्यताम्) इसलिये (आचार्य उत्तरसमर्थ) कहते हैं कि

सूत्रम्–तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वाना परा स्थिति ॥ ६ ॥

= तेषु-एकसागरोपमा-त्रिसागरोपमा सप्तसागरोपमा-दशसागरोपमा-सप्तदशसागरोपमा-द्वाविंशतिसागरोपमा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थिति (यथाक्रमम्) ॥ ६ ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। 'यथाक्रमम्' की अनुवृत्ति इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे लीगई है देखो टिप्पणी पृष्ठ २१

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें की है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग या नपुंसकलिंगमें आये हैं जिनका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों या पृथ्वीयोंकी है। इसका यह आशय निकला कि एक-तीन सात इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है पृथिवी अथवा भूमि की नहीं है।

(क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न हो जावे (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबंधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनको अनेक पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' = (वाक्यका) यथार्थ आशय (= विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका संबंध या अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप या संदिग्धार्थ शब्दसे (= संदेहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव या अर्थ (= अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका संबंध होजाता है नकि भूमि शब्दसे।

(ख) तेषु (= जिनमें उनमें) = नरकेषु (= नरकोंमें) ॥ पूज्यपाद स्वामीने तेषु का यही अर्थ लिया है। नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों' के अर्थमें अर्थात् नरक (= निवासस्थान) के अर्थमें लाए हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिले या निवासस्थान हैं। और इस अध्याय तक किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है पश्चात् पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ लिया है जैसाकि "तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयो उत्कृष्टा सत्त्वानां रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा" इत्यादि सात वाक्योंसे स्पष्टतया प्रगट है ॥ अस्तु यह कि प्रथम भूमिमें तीसलाख दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं। तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकीजीवोंकी है। पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि। 'तास्वेव' (= तासु एव = तिन भूमियोंमें एकस्थानपर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें, क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरों की है ॥ तासु = तासु भूमिषु ॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है। 'तासु' शब्दको अनुवृत्तिभी इस सूत्रमें लासकते हैं परन्तु तेषु (= तासु) स्पष्टताके लिये है।

(ग) सत्त्वानां = जीवोंकी तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव स्वर्गके देव इत्यादि भी जाते हैं॥ इसलिए 'सत्त्वानां से आशय नारकाणांसत्त्वानां' वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी आचार्य 'नारकाः' शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें लाया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लोहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें (नारका: शब्दकी अनुवृत्ति) आती है। 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे या बिना 'सत्त्वानां' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने सत्त्वानां' शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है सत्त्वानां से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी (उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि सत्त्वानां' शब्द न लाते तोभी व्याकरणसे और उपर्युक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है।

यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादय स्थितयोऽभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा । शर्कराप्रभाया त्रिसागरोपमा । वालुकाप्रभाया सप्तसागरोपमा । पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा । धूमप्रभाया सप्तदशसागरोपमा ।

सूत्रार्थ — तेषु॥ एकसागरोपमा॥ त्रिसागरोपमा॥ = तिन (नरकों) में एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण

सप्तसागरोपमा॥ दशसागरोपमा॥ सप्तदशसागरोपमा॥ = सात सागर प्रमाण, दश सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण

द्वाविंशतिसागरोपमा॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा॥ = बाईस सागर प्रमाण और तेतीस सागर प्रमाण

नारकाणां॥सत्त्वानां॥ परा॥ स्थिति॥ यथाक्रमम्॥ = नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट आयु यथासंख्य अथवा क्रमानुसार है अर्थात् पहिली रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीजीवों)की आयु है ।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमें सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति है । चौथी पङ्कप्रभा भूमिमें दस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पांचवी धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट आयु है, छठवीं तमप्रभा भविमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सातवीं महातम पृथिवी विषें तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

वृत्त्यनुवाद — यथाक्रमम्॥इति अनुवर्तते॥ = (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रम' ऐसा अनुवर्तण है अथवा अनुवृत्ति आती है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द लियागया है

तेषु॥ नरकेषु॥ भूमिक्रमेण॥ = तिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, इत्यादिक) पृथिवीयोंके क्रमसे

यथासंख्यम्॥एकादय॥ स्थितय॥ = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासंख्य अर्थात् संख्याके अनुसार

अभिसम्बन्ध्यन्ते॥ रत्नप्रभायाम्॥ उत्कृष्टा॥ = लगाईजाती है जोडीजाती है (इसलिये) रत्नप्रभा पहिली पृथिवीमें उत्कृष्ट

स्थिति॥ एकसागरोपमा॥ शर्कराप्रभायाम्॥ = आयु एक सागरोपमा है । शर्कराप्रभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)

त्रिसागरोपमा॥ वालुकाप्रभायाम्॥ = तीन सागरोपमा है । वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति)

सप्तसागरोपमा॥ पङ्कप्रभायाम्॥ दशसागरोपमा॥ = सातसागरोपमा है। पंकप्रभा (चौथी भूमि)में (उत्कृष्ट आयु) दशसागरोपमा है

धूमप्रभायाम्॥ सप्तदश-सागरोपमा॥ = धूमप्रभा (पांचवी भूमि) में (उत्कृष्ट आयु) सत्रह सागरोपम है ।

तम प्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातम प्रभाया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति॥ परा उत्कृष्टेत्यर्थः॥ सत्त्वानामिति वचन भूमिनिवृत्त्यर्थम् ॥ भूमिषु सत्त्वानामियं स्थिति । न भूमीनामिति ॥ उक्त सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोक ॥ इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्य । कथं पुनस्तिर्यग्लोक । यतोऽसंख्येया स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तियक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति ॥ के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह–

तमप्रभायां॥ द्वाविंशति-सागरोपमा॥ = तमप्रभा (छठवी पृथिवी) में उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर प्रमाण है ॥
महातमप्रभायां॥ त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमा॥ इति॥ = महातमप्रभा (सातवीं भूमि) में उत्कृष्ट आयुः तेतीस सागरप्रमाण है
परा॥ उत्कृष्टा॥ इति॥ अर्थ ॥ सत्त्वानां॥ इति॥ वचनं॥ = (इस सूत्रमें) परा (शब्द) उत्कृष्ट ऐसा अर्थमें है। सत्त्वानां ऐसा वाक्य
भूमि-निवृत्ति-अर्थम्॥ = भूमिका (स्थितिके साथ सम्बन्ध हो इस) निषेधके लिये है
भूमिषु॥ सत्त्वानां॥ इयम्॥ स्थिति॥ न भूमीनां॥ इति॥ = भूमियों विषैं जीवोंकी यह आयु है नहि (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि) भूमियोंकी एक तीन इत्यादिक सागरोंकी स्थिति है
सप्त-भूमि-विस्तीर्ण ॥ अधस्॥ = सात (रत्नप्रभा शर्कराप्रभा इत्यादिक) भूमिरूप है विस्तार जिसका ऐसा अधो
लोक॥ उक्त॥ इदानीं॥ तिर्यग्लोक वक्तव्य॥ कथं॥ पुन ॥ = लोक कहागया है अब तिर्यग्लोक कहना चाहिये। बहुरि कैसा
तिर्यग्लोक॥ यत॥ स्वयम्भूरमणपर्यन्ता॥ = तिर्यग्लोक है अर्थात् तिर्यग्लोक ऐसा नाम कैसे हुआ। क्योंकि स्वयम्भूरमणसमुद्र तक
असंख्येया॥ तिर्यक्-प्रचय विशेषेण॥ अवस्थिता॥ = असंख्याते तिर्यक् प्रचयरूप विशेषकरि (गोल वृत्ताकारमें फैलेहुए) स्थापित
द्वीप-समुद्रा॥ ततः॥ तिर्यग्लोक ॥ इति॥ के॥ पुनः॥ = द्वीप और समुद्र है जिससे तिर्यग्लोक ऐसा (नाम) है। बहुरि कौन
तिर्यग्व्यवस्थिता॥ इति॥ अतः॥ आह ॥ = तिर्यग् रूप अवस्थित (द्वीप तथा समुद्र) हैं। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तिर्यग्लोक, मध्यलोक, तिर्यग्लोक मनुष्यलोक किसको कहते हैं ? तिर्यग्लोक और मध्यलोकमें क्या अन्तर है ? प्रथम परिभाषा दीगई है पश्चात् शास्त्र द्वारा प्रमाण दिया गया है।
(उत्तर) तीनसौतेतीस प्रमाकर राजु क्षेत्र को अर्थात् एक राजु लम्बे एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे ऐसे तीनसौतेतालीस मापवाले क्षेत्रको

जिसको घनोदधिवातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय घेरे हुए हैं लोक कहते हैं। इसही क्षेत्रको तिर्यक्लोक कहते हैं क्योंकि तिर्यक्लोक वह है जिसमें तिर्यंच रहते हो। अब लोककी त्रसनाड़ीमें जो एकराजू लम्बी है और एकही राजू चौड़ी है और चौदहराजू ऊंची है त्रस और स्थावरोंके रहने का स्थान है और शेष भाग लोकमें तीनसौतेतालीस घनाकार राजुओंमें स्थावर रहते हैं स्थावर भी तिर्यंच संज्ञामें सम्मिलित हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्यक्लोक (क्योंकि लोकमें सर्वत्र सब स्थानोंमें तिर्यंच रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाचक कहे जासकते हैं। त्रसनाड़ीमें स्थावर भी हैं तो भी क्योंकि प्रधानता से इसमें त्रस पायेजाते हैं इससे त्रसनाड़ी कहते हैं। 'सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागोनोक्तः' सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २५२, राजवार्तिक सूत्र २९, वार्तिक ४ ५ और श्लोकवार्तिक सूत्र २१ देखो। सर्व लोकमें फैले हुए होनेसे तिर्यंचोंका क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है।

पूरब पश्चिम एक राजू चौड़ा और उत्तर दक्षिण ७ राजू लम्बे और मेरुकी जड़से एक लाख चालीस योजन (चूलिका तक) ऊंचे क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं। जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रतक तिर्यक् प्रचयरूपकरि अर्थात् थाल वृत्ताकार रूपमें फैले हुए असंख्याते द्वीप समुद्रोंको अन्तर्गत करनेवाला क्षेत्र एकराजू है व्यास जिसका सो तिर्यग्लोक (सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ २०९ के अनुसार द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११७के अनुसार) है। ढाई द्वीपके क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं का प्रमाण इस प्रकार है कि

पुनः सामान्याधऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकानां पञ्चसंख्यान्यालाप लिख्यते—अर्थ पुनः सामान्य-अधःऊर्ध्व-तिर्यग्-मनुष्यलोकानां पंचसंख्यान्य आलाप लिख्यते (गोम्मटसार जीव काण्ड लद्धुव समुग्घादे इत्यादि ५४२ गाथा पृष्ठ ६४०) अर्थ पुनि सामान्यलोकको अधोलोकको, ऊर्ध्वलोकको तिर्यग्लोकको मनुष्यलोकको, (ये) पांच स्थानकनि सम्बन्धी आलाप वा कथन लिखिये है। "समस्त जो लोक सामान्य लोक है। मध्यलोक तैं नीचे सो अधोलोक है। मध्यलोकके उपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विर्षे एकराजू चौड़ा लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौड़ा लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है" गोम्मटसार जीवकाण्ड पृष्ठ ६४१। पं० टोडरमलजीके ये शब्द कि "मध्यलोकविर्षे" (मध्यलोकमें) तिर्यक्लोक है प्रगट करते हैं कि तिर्यग्लोक छोटीवस्तु है जो मध्यलोकमें है। बस यह वही तिर्यक्लोक है जिसका व्यास एकराजू है। चौड़ा एकराजू परिधिके किसी बिन्दुसे सामनेके ठीक दूसरे बिन्दु तक है और एक लाख योजन मेरुकी जड़से मेरु की ऊंचाई तक है। [illegible] (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १०७ द्वितीयसंस्करण पृष्ठ ११७) कि "कथं पुनस्तिर्यग्लोक" उत्तरमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि "[illegible]"

समुद्रान्ता तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जंबूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं जिससे तिर्यग्लोक देता है ॥ तिर्यग्लोक शब्दका अर्थ देव-नारकी मनुष्योंको छोड़कर अवशेष जीवोंका है और तिर्यग्लोक इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार वृत्ताकार देखा लिया गया है ॥ पृष्ठ २४ के चित्रमें मध्यको पूरबमें एकराजू माना है अब जो पश्चिममें एकराजू माना है । मध्य का उत्तरमें पांच राजू माना है दक्षिणमें सात राजू लम्बे माना है ना "मध्यसम" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें अवयव क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट ड-ड-ड (देखो पृष्ठ २७) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित हैं ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्ध"में तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है देखो श्रीमाधवचन्द्रविरचित ... तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ१२४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल ट्रक वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवणोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असंख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यग्लोकको एकार्थ मानकी अपने एक लाख योजनकी लिखी है जिनमें दो महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है । जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी ऊंचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख भव करके सुमेरुपर्वतकी ऊंचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी ऊंचाई होजाती है । इसमें कोई बात सन्देह या शंकाकी नहीं उत्पन्न होती है ॥ समस्तलोककी ऊंचाई चौदह राजू है ॥ सुमेरुकी जड़से ऊपर सात राजू है मध्यलोककी ऊंचाई सिंहासनसे चूलिकासे लोक अंत पर्यंत सात राजूमें कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे ऊंचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है । मेरुकी जड़से नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ घनरूप राजू हैं अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौड़े एकराजू ऊंचे एस १९६राजुओंके टुकड़े हैं॥ मेरुकी जड़से सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू हैं अर्थात् मेरुकी जड़से ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक ७१½ घनाकारराजू हैं और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७१½ घनाकारराजू और हैं (१९६+७१½+७१, सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ॥ बहुतसे साधारण भोले भोले महाशय "तिर्यक् लोक" कहा है । कहते हैं मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यक् लोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। तिर्यग्लोक जैसा कि हम लिख चुके हैं मध्यलोकका भाग है ॥ वास्तविक तिर्यक्लोक वही है जिसका उल्लेख कर चुके हैं ॥



विद्यार्थियोंको विशदरूपसे मध्यलोकका स्वरूप जानना उचित है सो इसप्रकार है कि मध्यलोकके अत्यन्त बीचमें एकलाख योजन चौड़ा गोल (थालीके आकार) जम्बूद्वीप है। जंबूद्वीपके बीचमें एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत है। जिसका एक सहस्र योजन भूमिके भीतर मूल है निन्यानवे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है। और चालीस योजनकी चूलिका (चोटी) है। जंबूद्वीपके बीचमें पश्चिम पूर्वकी ओर लम्बे छह कुलाचल पर्वत पड़े हुए हैं। जिनसे जम्बूद्वीपके सात खंड हो गये हैं। इन सातों खंडोंके नाम इस प्रकार हैं-भरत १ हैमवत २, हरि ३ विदेह ४ रम्यक ५ हैरण्यवत ६, और ऐरावत ७। विदेह क्षेत्रमें मेरुसे उत्तरकी ओर उत्तरकुरु और दक्षिणकी ओर देवकुरु हैं। जम्बूद्वीपके चारों ओर खाईकी भांति पड़े हुए दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवण समुद्रको चारों ओरसे घेरे हुए चार लाख योजन चौड़ा धातकी खंडद्वीप है। इस धातकी खंड द्वीपमें दो मेरुपर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादिकी सब रचना जम्बूद्वीपसे दूनी है धातकी खंडको चारों ओरसे घेरे हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधिसमुद्र है। और कालोदधिको घेरे हुये सोलहलाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीपके बीचों बीच वलयके आकार चौड़ाई पृथिवीपर एकहजार बाईस योजन बीचमें सातसौ तेईस योजन ऊपर चारसौचौबीस योजन ऊंचा सत्तरहसौइक्कीस योजन और पृथिवीके भीतर चारसौतीस योजन जिसकी जड़ है ऐसा मानुषोत्तरनामा पर्वत पड़ा हुआ है। जिससे पुष्कर द्वीपके दो खंड हो गये हैं। पुष्करद्वीपके पहिले अर्द्ध भागमें जम्बूद्वीपसे दूनी २ अर्थात् धातकी खंडद्वीपके बराबर सब रचना है जम्बूद्वीप धातुकी खंड द्वीप और पुष्करार्द्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको नरलोक कहते हैं। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एकदूसरेको घेरेहुए दूने२ विस्तारवाले मध्यलोकके(पूर्वपश्चिम)असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं पांच मेरु सम्बन्धी पांच भरत पांच ऐरावत देवकुरु और उत्तर कुरुको छोड़कर पांच विदेह इसप्रकार सब मिलकर १५ कर्मभूमि हैं। पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दश क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि हैं। पांच हरि और पांच रम्यक इन दशक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि है। और पांचदेव कुरु और पांच उत्तर कुरु इन दश क्षेत्रोंमें उत्तम भोग भूमि हैं। जहांपर असि मसि कृषि सेवा शिल्प और वाणिज्य इन षट् कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसको कर्मभूमि कहते हैं जहां इनकी प्रवृत्ति न हो उसको भोग भूमि कहते हैं। मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके समस्त द्वीपोंमें जघन्य भोग भूमिकी सी रचना है। किंतु अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्ध में तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अंतर्द्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। वहां मनुष्य ही रहते हैं। उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है। यदि इन टिप्पणी पृष्ठ २७ २८ व २९ में किसी प्रकारकी भूल हो तो पाठकगण उसको शुद्ध करके सूचित करें।



॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपादयो द्वीपा । लवणोदादय समुद्रा । यानि लोके शुभानि नामानि तन्नामानस्ते ॥ तद्यथा— १ जम्बूद्वीपो द्वीप । लवणोद समुद्र । २ धातकीखण्डो द्वीप । कालोद समुद्र । ३ पुष्करवरो द्वीप ।

जम्बूद्वीपलवणोदादय शुभनामानो द्वीपसमुद्रा ॥ ७ ॥

= जम्बूद्वीप–आदय ॥ लवणोद–आदयः ॥ शुभ–नामानः ॥ द्वीपसमुद्रा ॥ ॥ ७ ॥

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप-आदयः॥ लवणोद आदय ॥ ७* शुभनामानः ॥ द्वीप-समुद्रा ॥ = (इस चित्रा पृथिवीपर) जम्बूद्वीप आदिक तथा लवण समुद्र आदिक = उत्तम नामके धारक द्वीप और समुद्र है अर्थात् सबके बीचमें जम्बूद्वीप है उस (जम्बूद्वीप) के चारों ओर लवण समुद्र है । उसके चारों ओर धातुकी खंड द्वीप है उसके चारों ओर कालोदधि समुद्र है (आगे आगे जैसजैसे द्वीपका नाम है वैसा२ समुद्रका नाम है) उस (कालोदधि समुद्र)के चारों ओर पुष्करवर द्वीप है और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है उसके पश्चात् चारों ओर वारुणीवर द्वीप है और उस वारुणीवर द्वीपके चारों ओर वेष्टित वारुणीवर समुद्र है ऐसही एकदूसरेको वेढेहुए अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं ।

जम्बूद्वीप-आदय ॥ द्वीपा ॥ लवणोद–आदय ॥ समुद्रा ॥ = जम्बूद्वीप आदिक द्वीप हैं । लवणादधि आदिक समुद्र हैं

यानि ॥॥ लोके ॥ शुभानि ॥॥ नामानि ॥॥ = जो लोक विषें उत्तम उत्तम (=शुभानि) नाम हैं

तद्-नामान ॥ ते ॥ = वे (द्वीप और समुद्र) उन नामोंसे युक्त हैं

तद्यथा* जम्बूद्वीप ॥ द्वीप ॥ = जैसे जम्बूद्वीप द्वीप है

लवणोदः ॥ समुद्र ॥ = लवणोदधि समुद्र है अर्थात् लवण या नोन सारिखा जलके पागसे लवणोद नाम है

धातुकी खण्ड ॥ द्वीप ॥ कालोद ॥ समुद्र ॥ पुष्करवरद्वीपः ॥ = धातुकी खण्ड द्वीप है कालोदधि समुद्र है । पुष्करवर द्वीप है

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ' लवणोदादय ' वाक्यके स्थानमें लवणादय है । शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है अर्थ भी एक है (२) उदक = जल (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ७२) लोन या लवणके स्वादयुक्त जलके पागसे जो समुद्र सो लवणोद है

पुष्करवर समुद्र । ४ वारुणीवरो द्वीप । वारुणीवर समुद्र । ५ क्षीरवरो द्वीप । क्षीरवर समुद्र । ६ घृतवरो द्वीप । घृतवर समुद्र । ७ इक्षुवरो द्वीप । इक्षुवर समुद्र । ८ नन्दीश्वरो द्वीप । नन्दीश्वरवर समद्र । ९ अरुणवरो द्वीप । अरुणवर समुद्र । इत्येवमसंख्येया द्वीप-समुद्रा स्वयम्भूरमणपर्यंता वेदितव्या । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

[पुष्क]रवर ॥ समुद्र ॥ वारुणीवर ॥ द्वीप ॥ = पुष्कर वर समुद्र है । वारुणीवर द्वीप है
वारुणीवर ॥ समुद्रः ॥ क्षीरवर ॥ द्वीप ॥ = वारुणीवर समुद्र है । क्षीरवर द्वीप है
क्षीरवर ॥ समुद्र ॥ घृतवर ॥ द्वीप ॥ = क्षीरवर समुद्र है । घृतवर द्वीप है
घृतवर ॥ समुद्र ॥ इक्षुवर ॥ द्वीपः ॥ = घृतवर समुद्र है । इक्षुवर द्वीप है
इक्षुवरः ॥ समुद्रः ॥ नन्दीश्वर ॥ द्वीपः ॥ = इक्षुवर समुद्र है । नन्दीश्वर द्वीप है
नन्दीश्वरवर ॥ समुद्र ॥ अरुणवर ॥ द्वीपः ॥ = नन्दीश्वर समुद्र है । अरुणवरद्वीप है
अरुणवर ॥ समुद्रः ॥ इति*एवम् = अरुणवर समुद्र है । इसप्रकार निश्चयसे (= एवम्)
असंख्येयाः ॥ द्वीपसमुद्राः ॥ स्वयम्भूरमण = असंख्यात द्वीप तथा समुद्र स्वयम्भूरमण (समुद्र)
पर्यन्ता ॥ वेदितव्या ॥ अमीषां ॥ विष्कम्भ- = तक जानना चाहिये । इन (द्वीप तथा समुद्रों) की चौड़ाई
सन्निवेश संस्थान-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं ॥ आह = अवस्थान (=सन्निवेश) और आकार(=संस्थान)के विशेष जाननेकेलिये कहते हैं कि
द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः =(जम्बूद्वीप लवणोदादय)द्वि द्वि विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः वलय आकृतयः ॥
सूत्रार्थ —जम्बूद्वीप-आदय ॥ लवणोद-आदय ॥ = जम्बूद्वीप, आदिक और लवण समुद्र आदिक (प्रत्येक समुद्र तथा द्वीप एक दूसरेसे)
द्विः द्विः विष्कम्भाः ॥ पूर्वपूर्व = दुगने दुगने विष्कम्भ वाले हैं और पहिले पहिले (द्वीप और समुद्र अग्रिमअग्रिमसे)
परिक्षेपिणः ॥ = चारों ओरसे घिरे हुए या घिरने हुए हैं (बहुरि सबही द्वीप तथा समुद्र)

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (*)वलयाकृति = वलयाकार = चूड़ाकार = कंकणाकार = चूड़ाकार (ऊपर जैसे हुए) व सब प्रकारके हैं।

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भ तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधि । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीप ।

वलय आकृतयः॥ =वलयाकार अथवा वृत्ताकार हैं अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके व्याससे दुगण है और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे घेरेहुए है ऐसेही धातुकीखण्डके एक ओरके व्यासखण्डका प्रमाण लवणसमुद्रके व्याससे दुगना है और सर्वत्र लवणसमुद्रको लपेटहुए है ऐसेही कालोदधि पुष्करवर इत्यादि असंख्यातद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यंत जानना

(¹द्विः॥द्विः॥इति॥वीप्सायाम्॥ वृत्ति वचनम्॥॥=द्विः द्विः (दुगुण दुगुण) ऐसा बार बारके अर्थमें समासरूपमें द्विः द्विः वाक्य है

विष्कम्भ-द्विगुणत्व-व्याप्ति-अर्थम्॥॥ =सो विस्तार अर्थात् व्यास एक ओरके खण्डके प्रमाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फैलानके

आद्यस्य॥द्वीपस्य॥यः॥विष्कम्भः(²)=लिये है प्रथम द्वीपका जो व्यास प्रमाण है

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः॥ लवणजलधिः॥ =उससे दुगुण व्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर एक बिन्दु लेकर उसीकी सीधमें दूसरा बिन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों बिन्दुओंको मिलाकर सीधी रेखा खींच दें तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाख योजनकी होगी

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः॥ द्वितीयः॥ द्वीप ॥ =उस (लवणोदधि) से दून व्यास भागवाला (=विष्कम्भ)दूसरा (धातुकी खण्ड) द्वीप है

(१) यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास तीन प्रकारका है (क) उत्तर पदार्थ प्रधान (ख) उभय पदार्थ प्रधान (ग) अन्यपदार्थ प्रधान यहाँ पर प्रथमभेद उत्तर पदार्थ प्रधान है। जैसे द्विदशाः। द्वौवारौ दश इति विग्रह दो बार दश जिसमें हो ऐसा विग्रह है। जिसका अर्थ बीस है। उभय पदार्थ प्रधान वह है जिसमें दोनों ही पद प्रधान हो जैसे द्वित्राः द्वौ वा त्रयो वा इति विग्रह भावार्थ दो वा तीन। अन्य पदार्थ प्रधान वह है जिसमें अन्य अर्थात् अन्तिम पद प्रधान हो जैसे उपविंशा उपसमीपम् गता विंशतिर्येषामिति विग्रह=समीपको प्राप्त होगये हैं बीस जिन्होंके लगभग बीस अर्थ है।

(२) विष्कम्भ—इसका अर्थ अमरकोषके पद्य ११९ में विस्तार फैलाव' का है विस्तार वा फैलावका अर्थ क्षेत्रफल भी समझा जासके है परन्तु यहाँपर यह आशय नहीं है क्योंकि जम्बूद्वीपसे लवणोदधि का क्षेत्रफल लगभग चौबीस गुणा अधिक होता है यहां पर विष्कम्भ का आशय यह एक ओरका व्यासखण्ड है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक बिन्दु लेकर उसकी सीधमें दूसरा बिन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों बिन्दुओंको मिलानेसे बनता है। जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धातुकी खंड जम्बूद्वीपसे लगभग एकसौ चवालीस गुणा है जैसा कि

पुष्करवर समुद्र । ४ वारुणीवरो द्वीप । वारुणीवर समुद्र । ५ क्षीरवरो द्वीप । क्षीरवर समुद्र । ६ घृतवरो द्वीप । घृतवर समुद्र । ७ इक्षुवरो द्वीप । इक्षुवर समुद्र । ८ नन्दीश्वरो द्वीप । नन्दीश्वरवर समुद्र । ९ अरुणवरो द्वीप । अरुणवर समुद्र । इत्येवमसंख्येया द्वीपसमुद्रा स्वयम्भूरमणपर्यंता वेदितव्या । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

पुष्करवरः ॥ समुद्र ॥ वारुणीवर ॥ द्वीप ॥	= पुष्कर वर समुद्र है। वारुणीवर द्वीप है
वारुणीवरः ॥ समुद्रः ॥ क्षीरवर ॥ द्वीप ॥	= वारुणीवर समुद्र है। क्षीरवर द्वीप है
क्षीरवर ॥ समुद्र ॥ घृतवर ॥ द्वीप ॥	= क्षीरवर समुद्र है। घृतवर द्वीप है
घृतवर ॥ समुद्र ॥ इक्षुवरः ॥ द्वीपः ॥	= घृतवर समुद्र है। इक्षुवर द्वीप है
इक्षुवर ॥ समुद्र ॥ नन्दीश्वर ॥ द्वीप ॥	= इक्षुवर समुद्र है। नन्दीश्वर द्वीप है
नन्दीश्वरवर ॥ समुद्रः ॥ अरुणवर ॥ द्वीप ॥	= नन्दीश्वर समुद्र है। अरुणवरद्वीप है
अरुणवर ॥ समुद्र॥ इति*एवम्*	= अरुणवर समुद्र है। इसप्रकार निश्चयसे (=एवम्)
असंख्येया ॥ द्वीपसमुद्राः ॥ स्वयम्भूरमण	= असंख्यात द्वीप तथा समुद्र स्वयम्भूरमण (समुद्र)
पर्यंता ॥ वेदितव्या ॥ अमीषां ॥ विष्कम्भ-	= तक जानना चाहिये। इन (द्वीप तथा समुद्रों) की चौड़ाई
सन्निवेश संस्थान-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं॥ आह	= अवस्थान (=सन्निवेश) और आकार(=संस्थान)के विशेष जाननेकेलिये कहते हैं कि

द्विर्द्विर्विष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतय =(जम्बूद्वीप लवणोदादयः)द्वि द्वि विष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः वलय आकृतय ॥

सूत्रार्थ —जम्बूद्वीप-आदय ॥ लवणोद-आदय ॥ च	= जम्बूद्वीप, आदिक और लवण समुद्र आदिक (प्रत्येक समुद्र तथा द्वीप एक दूसरेसे)
द्वि द्वि विष्कम्भाः ॥ पूर्वपूर्व	= दूगन दूगन विष्कम्भ वाले हैं और पहिले पहिले (द्वीप और समुद्र अग्रिमअग्रिमस)
परिक्षेपिणः ॥	= चारों ओरसे घिरे हुए या लिपटे हुए हैं (बहुरि सबही द्वीप तथा समुद्र)

(१) इस सूत्रका पाठ श्रीतत्त्वार्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)वलयाकृति = वलयाकार = चूड़ाकार = वलयरूप = चूड़ारूप (लपेटे हुए) न कि चतुष्कोणादि।

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः वक्तव्याः = यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना (=प्रदेश) आकार, व्यासप्रमाण कहना चाहिए

तन्मूलत्वात् = उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से

इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य इति उच्यते = दूसरे (द्वीप तथा समुद्र) के विस्तारादिक जाननेका इसप्रकार (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ—तन्मध्ये मेरुनाभिः = उन (सर्व द्वीप समुद्रों) के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा

वृत्तः = वलयाकार (सूर्य के मण्डल सदृश या कुम्हार के चक्र सदृश आकारवान्)

योजन शतसहस्र-विष्कम्भः जम्बूद्वीपः = एकलाख योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप मतर पत्ला वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् हैं सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और इस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस धनुष साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। कहीं कहीं पर हमारे यहाँ जम्बूद्वीप भी पाठ ठीक है।

(२) मेरुनाभिः इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है।

(३) वृत्त = कुम्हारके चाक सदृश गोल होता है इसके बीचाबीच में एक बिन्दु कल्पित करे तो उस बिन्दुको केन्द्र कहेंगे। इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं [illegible] परिधि पर दो बिंदु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास या सूची कहते हैं। (४) यहाँ योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके हैं इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत मान्य है।

तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति॥द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषा ते द्विर्द्विर्विष्कम्भा ॥पूर्वपूर्वपरिक्षेपि-वचन ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति॥वलयाकृतिवचन चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

तद्-द्विगुण-विष्कम्भ १। द्वितीय: १। जलधि १। इति॥ =तिस (धातु की खंड द्वीप) से दुगना व्यास उसका धारक दूसरा समुद्र (कालोदधि) है

द्विः द्विः विष्कम्भ १। येषां ६। ते द्विः द्विः विष्कम्भा १। =दूना दूना विष्कम्भ है जिनका वे दूने दूने विष्कम्भ वाले हैं

पूर्व-पूर्व- =(इस सूत्रमें) पहिले पहिले (द्वीप तथा समुद्र एक दूसरे को)

परिक्षेपिन्-वचनम् १॥ =चारों ओर से अथवा सबव घेरे हुए इस वाक्य(=वचन) से प्रगट है कि

ग्राम-नगर-आदिवत्-विनिवेश: १। मा-विज्ञायि। इति॥ =ग्राम तथा नगरादिकके सदृश अवस्थान (इन द्वीप तथा समुद्रोंको) मत जानो

वलय-आकृति-वचनं १॥ चतुरस्र-आदि-संस्थान =वृत्ताकार या वलयाकार वाक्य चौकोर आदिक आकार (=संस्थान) की

अन्तर-निवृत्ति-अर्थम् १॥ =अवधिके निषधके लिये है

धानतराय आगरा निवासीके जिन्होंने धर्मविलासनामग्रन्थ संवत १७८०में पूर्ण किया उसके प्रकरण "द्रव्यादि पचीसी"के निम्नलिखित सवैया इकतीसासे प्रगट है। जम्बू एक लाख दो दो दोनों ओर लवणोदधि सब पांच सूची गुनी पचीस पचाइये। द्वीप एक ओर अधिकार चौबीस समुद्रपार, जम्बू सौं चौबीस गुनो उदधि बताइये। धात खंड चार चार सब सूची तरह की गुनो सो अनन्तरि पच्चीस घटाइये। जम्बू सबी एकसो पचास गुनो धात खंड आगे दधि दीप यों ही जिनवानी गाइये ॥ १० ॥ एक समुद्र या द्वीपके सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रेखाके प्रमाणको जो कि केन्द्रमें होकर जाती है सूची कहते हैं। इस प्रकार १ लाख जम्बूद्वीप दोनों ओर दो दो लाख लवण समुद्र सब मिलकर पांच लाख इसका इसीसे गुणनेसे पच्चीस हुए इसमें जम्बूद्वीप एक लाख को घटाने पर जम्बूद्वीप से लवण समुद्र चौबीस गुणा भया। इसी प्रकार लवण समुद्र के दोनों ओर चार चार धात की खंड ४ इन मिल कर १३ हुए। इसको इसीसे गुणनसे १६९ हुए इसमें से पच्चीस घटाने से १४४ गुना जम्बूद्वीप से धातकी खंड भया इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

द्विर्द्विर्विष्कम्भा — पूर्वोक्त वर्णित एक ओर का व्यास खंड" की लम्बाई दूनी दूनी एक द्वीप से उसके निकटके समुद्र की है उसके पश्चात्के द्वीप की वैसा ही व्यास खंड उस समुद्रके व्यास खंड से दूना है जैसे जम्बूद्वीप पटल रूप अथवा प्रस्तर रूप वृत्त है और उसका पूर्ण व्यास एक लाख योजन का है लवण समुद्रका एक ओरका व्यासखंड दो लाख योजन लम्बा है। इसी प्रकार धातुकी खंड द्वीपका एकओरका व्यास खंड जो लवणोदधि और धातुकी खंड की परिधियों पर एक सीधमें दो बिन्दुओं के मिलने से बनता है चार लाख योजन है और कालोदधिका एक ओरका व्यासखंड जो धातुकी खंड और कालोदधिकी परिधियों पर एक दूसरे के सीधमें दो बिन्दु लेकर मिलानेसे बनता है आठलाख योजन का है इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त जानना। ऐसा अभिप्राय द्विर्द्विर्विष्कम्भ वाक्य का है।

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र॰आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः[1] वक्तव्याः =यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना(=प्रदेश) आकार, व्यासप्रमाण कहना चाहिए

तन्मूलत्वात्[1] =उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से

इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य[1] इति॰उच्यते[?] =दूसरे(द्वीप तथा समुद्र)के विस्तारादिक जाननेको इसप्रकार(अग्रिमसूत्रमें)कहाजाताहै कि

(१)सूत्रम्—तन्मध्ये(२) मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥ ९ ॥

सूत्रार्थ —तत्मध्ये[1] मेरुनाभिः[1] =उन (सर्वद्वीप समुद्रों)के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा

(३)वृत्तः[1] =वलयाकार (सूर्य के मण्डल सदृश या कुलाल के चक्र सदृश आकारवान्)

(४)योजन-शतसहस्र-विष्कम्भः[1] (५) जम्बूद्वीपः[1] =एकलक्ष योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप मध्य पटल वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् हैं सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस धनुष साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहाँ जम्बूद्वीप भी पाठ ठीक है ॥

(२) मेरुनाभिः इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है ॥

(३) वृत्त =कुलालके चक्र सदृश वृत्त होता है उसके बीचाबीच में एक बिन्दु कल्पित करें तो उस बिन्दुको केन्द्र कहेंगे ॥ इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं इस परिधि पर दो बिन्दु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास या सूची कहते हैं ॥ (४)यहाँ योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके हैं इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत योग्य है ॥

तेषा मध्ये तन्मध्ये । केषा ? पूर्वोक्तद्वीपसमुद्राणाम् । नाभिरिव नाभि । मेरुर्नाभिर्यस्य स मेरुनाभि । वृत्त आदित्यमण्डलोपमान । शताना सहस्रम् शतसहस्रम् । योजनाना शतसहस्र योजनशतसहस्रम् । योजनशतसहस्र विष्कम्भो यस्य सोऽय योजनशतसहस्रविष्कम्भ ॥ कोऽसौ ? जम्बूद्वीप ॥ कथं जम्बूद्वीप ? । जम्बूवृक्षोपलक्षितत्वात् ॥ उत्तरकुरूणा मध्ये जम्बूवृक्षोऽनादिनिधन पृथिवी परिणामो

शब्दानुवाद—तेषां मध्ये तन्मध्ये केषाम्	=तिन(द्वीप-समुद्रों)के बीचोबीचमें है सो तन्मध्ये है (प्रश्न) किनके (मध्य में) है ॥
पूर्व उक्त द्वीपसमुद्राणाम् नाभिः इव नाभि	=(उत्तर) प्रथम वर्णित द्वीप तथा समुद्रोंके टूण्डी अथवा टूण्डीके सदृश है सो नाभि है
मेरुः नाभिः यस्य सः मेरुनाभिः	=मेरु पर्वत है टूण्डीके सदृश (जिस जम्बूद्वीप) का सो मेरुनाभि है ॥
(१)वृत्त आदित्य-मण्डल उपमानः	=वृत्त सूर्यके विमान (आदित्य) सदृश(उपमान) गोल (=मण्डल) है
(२)शतानां सहस्र शतसहस्रम् योजनानां शतसहस्र	=सौ हजार सो शत सहस्र है योजनों के सौ हजार सो
योजन शत-सहस्र योजन शत-सहस्र विष्कम्भ यस्य	=योजन शतसहस्र है अर्थात् लक्ष योजन है । सौ हजार योजन है विस्तार जिसका
सः अयम् योजन शत सहस्र विष्कम्भः कः ?	=सो यह योजन शत सहस्र विष्कम्भ है यह (सौ योजन विस्तारवाला) कौन है
असौ जम्बूद्वीपः कथं जम्बूद्वीपः ? जम्बू	=यह जम्बूद्वीप है जम्बूद्वीप नाम कैसे है ॥ (इस सत्र में) जम्बूनामा
वृक्ष उपलक्षितत्वात्	=वृक्ष की विद्यमानता के सहारे अथवा संयोगसे (यह जम्बूद्वीप नाम) है
उत्तर-कुरूणां मध्ये	=उत्तर कुरुभोग भूमि के बीच में अर्थात् ईशानकोण में या पूर्व उत्तरकोण में
जम्बूवृक्षः अनादिनिधनः पृथिवीपरिणामः	=जम्बू वृक्ष आदि अन्त रहित (=अनादिनिधन) पृथिवीकायरूप

(१) यहां पर वृत्त कहना इस नियम का अर्थ है कि लवण स आदि लेकर द्वीप समुद्र वलयाकार वृत्त हैं । और जम्बूद्वीप प्रतर वृत्त हैं ।

(२) शत सहस्र अयुत (=१०) लक्ष प्रयुत=(दश लक्ष) अर्बुद(=दशकोटि) अब्ज(=अर्ब) खर्व निखर्व(दशखर्व) शङ्ख (दशनील) मध्य(पद्म) परार्ध (दशपद्म) दशपरार्ध (=शंख) ये सब संख्याक्रम गिनी हैं । और सब शब्द सत् इनके रूप सर्व विभक्तियों में होते हैं ।

कृत्रिम सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीप ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भि कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ता ॥ तत्र[१] भरतवर्ष क्वसन्निविष्ट[?] । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिम:१ स-परिवार:१ =अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आ १ आ १ प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षों सहित

तद् उपलक्षित:अयम्:१ द्वीप:१ =उस (प्रधान वृक्ष)के पाससे (=उपलक्षित) यह द्वीप है

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भि:३ कुलपर्वतैः३ विभक्तानि१ =वहां जम्बूद्वीप विषैं [illegible] कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतो) विभाग कियेगये

सप्त१ क्षेत्राणि१ कानि१ तानि१ इति अत आह=सात क्षेत्र हैं ते कौन हैं इसलिये (उपर सूत्र में) कहते हैं कि

"सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षा क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे) भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्षः, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थ —(जम्बूद्वीपे) भरतवर्ष:१ हैमवतवर्ष:१ =(जम्बूद्वीप विषैं) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,

हरिवर्ष:१ विदेहवर्ष:१ रम्यकवर्ष:१ =हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरण्यवतवर्ष:१ ऐरावतवर्ष:१ क्षेत्राणि१ भवन्ति =हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष (ये सात) क्षेत्र हैं

पृथग्नुवाद:भरत आदय:१ सञ्ज्ञा१ अनादिकालप्रवृत्ता:१ =भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्ते हैं

अनिमित्ता१ तत्र भरतवर्ष:१ =निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (भरन) वहां (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)

क्व सन्निविष्ट:१? दक्षिण दिग्भागे१ =कहां स्थिति है (उत्तर) जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमें

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत हैमवत इत्यादि के पहिले 'तत्र' शब्द अधिक है जिस 'तत्र' शब्द का अर्थ है 'वहां' अर्थात् जम्बूद्वीपनामधेयाश्च इत्यादि" इस सातवां सूत्र से "जम्बूद्वीप" ऐसी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीनई है । दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका अर्थ एक है ॥

तेषां मध्ये तन्मध्ये । केषां ? पूर्वोक्तद्वीपसमुद्राणाम् । नाभिरिव नाभि । मेरुर्नाभिर्यस्य स मेरुनाभि ।वृत्त आदित्यमण्डलोपमान । शतानां सहस्रम् शतसहस्रम् । योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम् । योजनशतसहस्रं विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजनशतसहस्रविष्कम्भ ॥ कोऽसौ ? जम्बूद्वीप ॥ कथं जम्बूद्वीप ? । जम्बूवृक्षोपलक्षितत्वात् ॥ उत्तरकुरूणां मध्ये जम्बूवृक्षोऽनादिनिधन पृथिवी परिणामो

वृत्त्यनुवाद:— तेषां॥ मध्ये॥ तन्मध्ये॥ केषाम्॥
पूर्व उक्त द्वीपसमुद्राणाम्॥ नाभि॥ इव नाभि॥
मेरु॥ नाभि॥ यस्य॥ सः॥ मेरुनाभि॥
(१)वृत्त॥ आदित्य-मण्डल उपमान॥
(२)शतानां॥ सहस्रं॥ शतसहस्रम्॥ योजनानां शतसहस्रं
योजन शत-सहस्र॥ योजन शत-सहस्र॥ विष्कम्भ॥ यस्य
सः॥ अयम्॥ योजन शत सहस्र विष्कम्भ॥ कः॥ ?
असौ॥ जम्बूद्वीप॥ कथं जम्बूद्वीप॥ ? जम्बू
वृक्ष उपलक्षितत्वात्॥
उत्तर-कुरूणां॥ मध्ये॥
जम्बूवृक्ष॥ अनादिनिधन॥ पृथिवीपरिणाम॥

=तिन(द्वीप समुद्रों)के बीचाबीचमें है सो तन्मध्ये है (प्रश्न) किनके (मध्य में) है ॥
=(उत्तर) प्रथम वर्णित द्वीप तथा समुद्रोंके टुंडी अथवा टुंडीके सदृश है सो नाभि है
=मेरु पर्वत है टुंडीके सदृश (जिस जम्बूद्वीप) का सो मेरुनाभि है ॥
=वृत्त सूर्यके विमान (आदित्य) सदृश(उपमान) गोल (=मण्डल) है
=सौ हजार सो शत सहस्र है योजनों के सौ हजार सो
=योजन शतसहस्र है अर्थात् लाख योजन है । सौ हजार योजन है विस्तार जिसका
=सो यह योजन शत सहस्र विष्कम्भ है यह (सौ योजन विस्तारवाला) कौन है
=यह जम्बूद्वीप है जम्बूद्वीप नाम कैसे है ॥ (इस प्रश्न में) जम्बूनामा
=वृक्ष की विद्यमानता के सहारे अथवा संयोगसे (यह जम्बूद्वीप नाम) है
=उत्तर कुरुभोग भूमि के बीच में अर्थात् ईशानकोण में या पूर्व उत्तरकोण में
=जम्बू वृक्ष आदि अन्त रहित (=अनादिनिधन) पृथिवीकायरूप

(१) यहां पर वृत्त कहना इस नियम के अर्थ है कि लवण से आदि लेकर द्वीप समुद्र वलयाकार वृत्त हैं। और जम्बूद्वीप थाल वृत्त है।
(२) शत, सहस्र, अयुत (=१००००) लक्ष प्रयुत=(दश लक्ष) अर्बुद(=दशकोटि) अब्ज(=अर्ब) खर्व निखर्व(दशखर्व) महापद्म (दशनील) शंख(पद्म) पदार्थ (दशपद्म) दशशंख (=शंख) ये सब अनुक्रम किये हैं। और सब शब्द भाव इनके कम सर्व विभक्तियों से होते हैं।

ऽकृत्रिम सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीप ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ता ॥ तत्र १ भरतवर्षः क्व सन्निविष्टः । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः सपरिवारः	=अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आठ आठ प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षों सहित
तत् उपलक्षित अयं द्वीपः	=उस (प्रधान वृक्ष) के योगसे (=उपलक्षित) यह द्वीप है
तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैः विभक्तानि	=वहां जम्बूद्वीप विषै छह कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतों) विभाग कियेगये
सप्त क्षेत्राणि कानि तानि इति अतः आह	=सात क्षेत्र हैं वे कौन हैं इसलिये (अगर सूत्र में) कहते हैं कि

"सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षा क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे) भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति ॥ १० ॥

सूत्रार्थ—(जम्बूद्वीपे) भरतवर्ष हैमवतवर्ष	=(जम्बूद्वीप विषै) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,
हरिवर्ष विदेहवर्ष रम्यकवर्ष	=हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,
हैरण्यवतवर्ष ऐरावतवर्ष क्षेत्राणि भवन्ति	=हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष (ये सात) क्षेत्र हैं
पृष्ठ्यनुवाद—भरत-आदयः सञ्ज्ञाः अनादिकालप्रवृत्ताः	=भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्तते हैं
अनिमित्ताः तत्र भरतवर्षः	=निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (भरत) तहाँ (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)
क्व सन्निविष्टः दक्षिण दिग्भागे	=कहां स्थिति है (उत्तर) जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमें

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है । श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत हैमवत इत्यादि के पहिले तत्र शब्द अधिक है जिस तत्र शब्द का अर्थ है "तहाँ अर्थात् जम्बूद्वीपवर्णनप्रसंग इत्यादि" इस छाठवां सूत्र से "जम्बूद्वीप" पदकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीगई है। दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका अर्थ एक है ।

हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो भरतवर्ष । विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्यां च विभक्त षट्खण्ड ॥ क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन, महाहिमवन्तं पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २ हैमवत-वर्ष ॥ निषधस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरत पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३ हरिवर्ष ॥ निषधस्योत्तरान्नीलतो दक्षिणत

हिमवतः। अद्रेः। त्रयाणाम्। च। समुद्राणाम्।	=हिमवान्-पर्वतके (अद्रे) और (=च) तीन ओर (लवण) समुद्रके
मध्ये। आरोपित-चाप आकारः। भरतवर्षः।	=मध्यमें चढ़ाये हुए धनुषके आकार भरतवर्ष है
विजयार्द्धेन। गङ्गासिन्धुभ्याम्। च। विभक्त।	=वैताढ्यपर्वतसे तथा गंगा और सिन्धु नदियों से पृथक् किये हुये (=विभक्त)
षट्खण्डः। क्षुद्रहिमवन्तं। उत्तरेण।	=छह खंड हैं छोटे हिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशामें (और)
दक्षिणेन। महाहिमवन्तं। पूर्व अपर	=महाहिमवान् कुलाचलकी दक्षिण दिशामें पूर्व पश्चिमके दोनों ओर
समुद्रयोः। मध्ये। २ हैमवत वर्षः।	=लवण समुद्रके बीचमें दूसरा हैमवत वर्ष क्षेत्र है
निषधस्य। दक्षिणतः। महाहिमवतः। उत्तरतः।	=निषध कुलाचलकी दक्षिण दिशासे और महाहिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशामें
पूर्व-अपर-समुद्रयोः। अन्तराले। ३ हरिवर्षः।	=पूर्व पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके बीचमें (अन्तराल) तीसरा हरि वर्ष है ॥
निषधस्य। उत्तरात्। नीलतः। दक्षिणतः।	=निषध कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशासे

जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र आदि द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल निम्न लिखित गणितके नियमानुसार निकल आता है ॥

[illegible] एक वृत्त है जिसके बीचोबीच [illegible] एक बिंदु है इस बिंदुको उस वृत्तका केन्द्र कहते हैं [illegible] रेखा और [illegible] रेखाको व्यास कहते हैं। [illegible] इन प्रत्येक बराबरकी रेखाको त्रिज्या अथवा व्यासार्ध कहते हैं [illegible] रेखा [illegible] वृत्तकी परिधि कहते हैं। इस [illegible] हमने जम्बूद्वीप माना है जिसका व्यास एक लाख योजन [illegible] है और [illegible] बीचके क्षेत्रको लवण समुद्र माना है। व्यासार्ध या त्रिज्याके वर्गका [illegible] से गुणा करनेसे [illegible] क्षेत्रफल [illegible] होता है। जैसे जम्बूद्वीपकी त्रिज्या पचास हजार योजन [illegible] है $(५० ००)^२ \times$ [illegible] = [illegible] = [illegible]

[illegible] अर्थात् जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल [illegible] सात सौ योजन हुआ ऐसेही [illegible] जम्बूद्वीपका क्षेत्र [illegible] लवण समुद्रका क्षेत्रफल निकल आवेगा ॥

पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्य ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिण पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकवर्ष ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशो ६ हैरण्यवतवर्ष ॥शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणा समुद्राणा मध्ये ७ ऐरावतवर्ष । स विजयार्द्धेन रक्तारक्तोदाभ्या च विभक्त षट्खण्ड ॥षट्कुलपर्वता इत्युक्त, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

पूर्व 'अपर-समुद्रयो 'अन्तरे' ४ विदेहस्य
सन्निवेश 'द्रष्टव्य ', नीलत उत्तर
रुक्मिण 'दक्षिण 'पूर्व-अपर-समुद्रयो
मध्ये ५ रम्यक-वर्ष ', रुक्मिण 'उत्तरात्
शिखरिण 'दक्षिणात् 'पूर्व-अपर-समुद्रयो
मध्ये सन्निवेश ६ हैरण्यवतवर्ष '।
शिखरिण 'उत्तरत त्रयाणाम् 'समुद्राणा
मध्ये ७ ऐरावतवर्ष ', स 'विजयार्द्धेन
रक्तारक्तोदाभ्याम् 'च विभक्त 'षट्खण्ड
षट्-कुलपर्वता 'इति उक्त ' 'के 'पुन ते
कथं वा व्यवस्थिता ' इति अत आह

=पूर्व पश्चिम (लवण) समुद्रके भागोंके मध्यमें चौथा विदेह क्षेत्रकी
=सम्यक स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
=रुक्मी वा रुक्मीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
=बीचमें पाँचवाँ रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
=शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
=अन्तराल स्थितिमें छठवाँ हैरण्यवत वर्ष है ॥
=शिखरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर लवण समुद्रके
=बीचमें सातवाँ ऐरावत वर्ष है ॥ वह (ऐरावत क्षेत्र) वैताढ्य पर्वतकरि
=तथा (च) रक्ता रक्तोदा दोनों नदियोंकरि छह खण्डरूपमें बटा हुआ है ॥
=छह कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा वर्णित है । बहुरि,=पुन)ते कौन हैं ॥
=अथवा किस प्रकार व्यवस्थित हैं । इसलिए (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) लवण समुद्र वलयाकार सर्वत जम्बूद्वीपको घेरे हुए एक ही है "समुद्राणाम्" बहुवचन और "समुद्रयो" द्विवचन इस कारणसे लाये हैं कि "समुद्राणाम्" शब्दसे लवण समुद्रके तीन ओरके भागोंसे आशय है और समुद्रयो शब्दसे भरताद्धिके पूर्व और पश्चिमकी सीमाओंके भागोंसे अभिप्राय है इसीलिए अनुवादमें भाग शब्द लाए हैं ॥ (२) रुक्मिण, । अथवा ।। दोनों हो सकते हैं पञ्चमी विभक्तिमें अर्थ रुक्मी कुलाचलसे दक्षिण ऐसा होगा और षष्ठी विभक्तिमें (रुक्मी कुलाचलके) दक्षिण ऐसा अर्थ है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिन ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्या लवणजलधिस्पर्शिन इत्यर्थ ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञा वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधरपर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क्व हिमवान् ? । भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थित ॥ क्षुद्रहिमवान् योजनशतोच्छ्राय ॥ हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्राय ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिन पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वता ११

सूत्रार्थ—तद्-विभाजिनः पूर्व	=तिन (भरत, हैमवत, इत्यादिक सात क्षेत्रों) को पृथक् करनेवाले पूर्व
अपर-आयताः हिमवत्-महाहिमवत्-निषध	=पश्चिम लवणाब्धितक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध,
नील-रुक्मि-शिखरिणः वर्षधरपर्वताः	=नील, रुक्मि (रुक्मी वा रूपी) शिखरी (छह) वर्षधर पर्वत, कुलपर्वत वा कुलाचल हैं
इत्यर्थः—तानि क्षेत्राणि विभजन्ते इति एवं शीलाः	=तिन (भरत हैमवत इत्यादि) क्षेत्रोंको पृथक् करते हैं ऐसे स्वभाव वा प्रकृति वाले हैं॥
तद्विभाजिनः पूर्व-अपर-आयताः इति	=वे तद्विभाजन हैं (वा विभाग करने वाले हैं) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम लम्बे हैं ऐसे
पूर्व-अपर-कोटिभ्याम् लवण-जलधि-स्पर्शिनः	=पूर्व पश्चिमकी अन्तीयों करि (=कोटिभ्यां) लवणोदधिको छूने वाले वे कुलाचल हैं॥
इति अर्थः । हिमवत् आदयः अनादिकालप्रवृत्ताः	=ऐसा अभिप्राय है ॥ हिमवान आदिक (पर्वतकुलाचल) अनादिकालसे प्रवर्ती
अनिमित्तसञ्ज्ञाः वर्षविभागहेतुत्वात् ॥	=निमित्तरहित नाम वाले वा स्वयं नाम धारक क्षेत्रोंको पृथक् २ करनेके कारणसे
वर्षधर-पर्वताः इति उच्यन्ते, तत्र क्व हिमवान् ? ।	=वर्षधर पर्वत ऐसे कहे जाते हैं । (प्रश्न) तहां हिमवान् (पर्वत) कहां है ।
भरतस्य हैमवतस्य च—सीमनि व्यवस्थितः	=(उत्तर) भरत क्षेत्रकी अरु हैमवत वर्षकी सीमामें अवस्थित है
क्षुद्र-हिमवान् योजन-शत उच्छ्रायः	=क्षुद्र हिमवान् है (क्षुद्र=छोटा) जिसकी योजन सौ ऊंचाई (=उच्छ्राय) है ॥
हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरः	=हैमवत क्षेत्रका तथा हरिवर्षका विभाग करने वाला
महाहिमवान् द्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः	=महाहिमवान् है जिसकी योजन दो सौ की ऊंचाई है ॥

विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्राय ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वता स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याता ॥ उच्छ्रायश्च तेषा चत्वारि द्वे एक च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाह ॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदेहस्य दक्षिणत हरिवर्षस्य उत्तरत = विदेह क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिवर्षक्षेत्रके उत्तरदिशासे
निषध नाम पर्वत चतुर्योजनशत उच्छ्राय = निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥
उत्तरे त्रय अपि पर्वता स्ववर्ष— = उत्तरदिशामें तीनोंही (नील, रुक्मि, शिखरी पर्वत अपन(अपने) क्षेत्रोंके
विभाजिन व्याख्याता उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि = विभाग करने वाले कहे गये हैं बहुरि तिनकी ऊंचाई चार
द्वे एकं च योजन शतं वेदितव्यम् = दो तथा एक सौ, योजन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ योजन ऊंचाई है रुक्मि पर्वतकी दोसौ योजन है व शिखरी पर्वतकी सौ योजनहै
सर्वेषां पर्वतानाम् उच्छ्रायस्य चतुर्भाग अवगाह = समस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमें प्रविष्ट है वा भूमिमें अवगाह है। (तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वतकी नीवपचीस योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है। महाहिमवान् ५० योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाहै। निषध पर्वतकी १०० योजन नीव है। और ४०० योजन धरातलके ऊपर है। इसीप्रकार नील पर्वतकी पृथिवीमें १०० योजन नीव है। ४०० योजन भूमिके ऊपर है रुक्मी पर्वत ५० योजन पृथिवीमें अवगाह है २०० योजन पृथिवीके है ऊपर और शिखरी पर्वत २५ योजन पृथिवीमें है १०० योजन भूमिसे ऊंचाई है ॥
तेषां वर्णविशेष प्रतिपत्ति अर्थम् आह = तिन (षट् कुलाचलों) के, रंगोंके भेद कहनेके लिए (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया। १२। हेमार्जुन वैडूर्य पाठ भी "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है
= (षट्पर पर्वता) हेममय, अर्जुनमय, तपनीयमयः, वैडूर्यमयः, रजतमय हेममयः, च (यथाक्रमम्) ॥ १२ ॥

(१)इस बारहवां १२ सूत्रमें मध्यस्य आदि १५ वां सूत्रतक ११ सूत्र श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें नहीं है ॥ सभाष्य० पृष्ठ ८ में

त एते हिमवदादय पर्वता हेमादिमया वेदितव्या यथाक्रमम्॥हेममयो हिमवान् चीनपट्टवर्णः। अर्जुनमयो महाहिमवान शुक्लवर्णः।तपनीयमयो निषधस्तरुणादित्यवर्णः। वैडूर्यमयो नीलो मयूरग्रीवाभ। रजतमयो रुक्मी शुक्लः। हेममय शिखरी चीनपट्टवर्णः ॥पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

सूभाया—पर्वधरएववाद्‌१ हेममय१ अर्जुनमय१	=कुलाचल पर्वत स्वर्ण सदृश अर्थात् पीतवर्ण शुभ्रसम अर्थात् श्वेतवर्ण
तपनीयमय१ वैडूर्यमय१	=तप्तसुवर्णसरीखा अर्थात् रक्तवर्ण वैडूर्य मणिमय अर्थात् नीलवर्ण
रजतमय१ हेममय१ च यथाक्रमम्१॥	=रूपा या चांदी सम अर्थात्,शुभ्रवर्ण और कंचन सदृश अर्थात् पीतवर्ण क्रमसे हैं ॥ तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वत पीत वर्ण है महाहिमवान पर्वत श्वेतवर्ण है निषिध पर्वत रक्तवर्ण है, नीलपर्वत नीलवर्ण है, रुक्मि (रुक्मी, रूपी) पर्वत शुभ्रवर्ण है। और शिखरी पर्वत, पीत वर्ण है ॥
सूत्रानुवाद-ते१ एते१ हिमवत् आदय१ पर्वता१ हेम-आदि-	=वे इतने हिमवान, आदिक पर्वत अर्थात् षट्कुलाचल स्वर्ण आदिक
मया१ वेदितव्या१ यथाक्रमम् हेममय१	=सदृश-क्रमानुसार जानना चाहिये। स्वर्ण सरीखा (=मय)
हिमवान्१ चीन-पट्ट-वर्णः१ अर्जुनमय१	=हिमवान् पर्वत पीला (=धान) पाट (सम) वर्ण है। शुभ्र सम
महाहिमवान् शुक्लवर्णः१ तपनीयमय१ निषिध१	=महाहिमवान पर्वत श्वेत रंग है। तप्त या ताये हुए सुवर्ण सदृश निषध पर्वत
तरुण-आदित्य-वर्णः१ वैडूर्यमय१ नील१	=दुपहरी या मध्याह्नके सूर्य जैसा अर्थात् रक्त है। वैडूर्यमणि समान नील पर्वत
मयूर-ग्रीवा-आभ१ रजतमय१ रुक्मी१	=मोरकेकंठसदृश(=आभस्)'नीला' है।चांदी या रूपा सरीखा रुक्मि,(रुक्मी,रूपी),पर्वत
शुक्ल१ हेममय१ शिखरी१ चीन-पट्ट-वर्णः१	=श्वेत है। सुवर्णवत(शिखरी) पर्वत पीले पट्ट वर्ण है ॥
पुनर् अपि तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१ आह T	=फिर भी तिन (षट्कुलाचलों) का विशेष प्रतिपादनके लिए अग्रिमसूत्र कहते हैं कि

यह टिप्पणी दी है कि "इस विषयमें बहुतसे विद्वान् स्वयं और भी अनेक सूत्रोंकी रचना करके उनका व्याख्यान करते हैं। विस्तार न हो इस लिये आचार्यने संक्षेपसे यह तत्त्व संग्रह किया है और इसी हेतुसे आत्मनिपुणजन विस्तार करते जो सूत्रोंका कथन है वह प्राचीन नहीं है ऐसा कहते हैं। और विस्तार ही इष्ट है तो सामान्यकी परिभाषारूपसे अनन्तदीपका विस्तार करें तो भी क्या विस्तार हुआ ? अर्थात् कुछ नहीं अथवा विस्तारार्थीको उन आचार्योके रचित सूत्रोंमें बहुत गुणयुक्त विज्ञान क्या मिलता आता है ? इस हेतु उनका अभिप्राय उपेक्षाके योग्य है ॥

॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३ ॥

नानावर्णप्रभादिगुणोपेतैर्मणिभिर्विचित्राणि पार्श्वाणि येषां ते मणिविचित्रपार्श्वा ॥ अनिष्टस्य स्थानस्य निवृत्त्यर्थमुपर्यादिवचनंक्रियते ॥ चशब्दो मध्यसमुच्चयार्थं ॥ य एषा मूले विस्तार स उपरि मध्ये च तुल्य ॥ तेषा मध्ये लब्धास्पदा ह्रदा उच्यन्ते—

(१)सूत्रम्—मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्तारा ॥ १३ ॥

=(वर्षधरपर्वताः)मणिविचित्र-पार्श्वाः उपरि मूले च तुल्य-विस्तारा ॥१३॥

सूत्रार्थ —वर्षधर-पर्वताः मणि विचित्र- = वर्षधरपर्वत मणियोंकरि विचित्र हैं वा रंग बरगी हैं ॥

पार्श्वाः उपरि मूले च = (दोनो दोनों,पार्श्वभाग वा पसवाड़े जिनके (प्रत्येक पर्वत) ऊपर नीच मध्य में (=च)

तुल्य-विस्ताराः = समान (भीत वा भित्ति) चौड़ाई वाले हैं

वृत्त्यनुवाद—नाना-वर्ण प्रभादि-गुण उपेतैः = अनेक रंग और दीप्ति आदि गुणोंकरि सहित

मणिभि विचित्राणि पार्श्वाणि येषां ते = मणियोंकरि विचित्र हैं अथवा रंग बरंग हैं ।(दोनों दोनों)पसवाड़े जिनके वे

मणि-विचित्र-पार्श्वाः अनिष्टस्य = मणिविचित्र-पार्श्वा हैं । अनिच्छित, अथवा अमानित (जो प्रमाण से माना नहीं गया)

संस्थानस्य निवृत्ति अर्थम् उपरि-आदि-वचन = आकार के (=संस्थानस्य)निराकरण के लिये उपरि आदि वाक्य (सूत्र में)

क्रियते च शब्द मध्य-समुच्चय अर्थः = लाया गया है (इस सूत्र में)च शब्द बीचके (चौड़ाउ) के समाहार के लिये है

यः एषां मूले विस्तार स उपरि च मध्ये = वे जिनके तट में (नीचे)चौड़ाई है वह(चौड़ाई) ऊपर और (च) बीच में

तुल्यः = समान है (अर्थात् ये छः हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी, शिखिरी पर्वत नीचे मध्यमें तथा ऊपर समान चौड़ भीत के सदृश हैं)

तेषां मध्ये = तिन (षट् कुलाचलों) के मध्यमें अर्थात् पूर्व पश्चिम की सीमा के बीचाबीचके भाग में

लब्ध-आस्पदाः ह्रदा उच्यन्ते = जिनने स्थान (=आस्पदाः) लाभ (प्राप्त) किये हैं वे द्रह(अगर सूत्र में) कहलाते हैं कि

(१)श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस सूत्र का हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ और अर्थ है परन्तु तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकमें "मणिविचित्र पार्श्वाः॥१३॥ और उपरि मूले च तुल्य विस्ताराः॥१४॥ दो सूत्र माना गया है ॥

॥पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि॥१४

पद्म महापद्म तिगिञ्छ केसरी महापुण्डरीक पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः ॥ तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१)पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ—पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक, और
पुण्डरीकाः॥ ह्रदाः॥ तेषाम्॥ उपरि॥यथाक्रमम्॥ =पुण्डरीक (ये छह) द्रह उन(छह कुलाचलों)के ऊपर अनुक्रमसे हैं
वृत्त्यानुवाद—पद्म॥महापद्म॥तिगिञ्छ॥केसरी॥ =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी,
महापुण्डरीक॥पुण्डरीकाः॥इति॥तेषां॥हिमवत् =महापुण्डरीक, पुण्डरीक इसप्रकार तिन हिमवान
आदीनां॥उपरि॥ यथाक्रमं॥एते॥ह्रदाः॥वेदितव्याः॥ =आदिक (छह कुलाचलों) के ऊपर क्रमानुसार ये द्रह जानना चाहिये ॥

अर्थात् हिमवान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाहिमवान् पर्वतपर महापद्म सरोवर है निषधपर्वतपर तिगिंछ द्रह है नीलपर्वतपर केसरी द्रह है रुक्मिपर्वतपर महापुण्डरीक सरोवर है और शिखरी पर्वतपर पुण्डरीकद्रह है

तत्र॥आद्यस्य॥संस्थान-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थं॥आह॥ =तहाँ प्रथम (सरोवर पद्म) के आकार विशेषके कहनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध[2]विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥

सूत्रार्थ—प्रथमः॥योजन-सहस्र आयामः॥ =पहिला (पूर्व पश्चिम एक)हजार योजन लम्बा (और)
तद् अर्द्ध-विष्कम्भः॥ह्रदः॥ =उससे आधा (अर्थात् पाँचसौ योजन उत्तर दक्षिण) चौड़ा सरोवर है

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ये दोनों सूत्र नहीं हैं (२) हमारे यहाँ कहीं कहीं पर अर्ध पाठ है कहीं २ पर अर्द्ध पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं अर्ध का प्रकार ... पूर्वोक्त सूत्रसे ... [illegible]

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायाम उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलो विविधमणिकनकविचित्रततट पद्मनामा ह्रद ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽध प्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाह ॥ तन्मध्ये किम् ?

प्राक्प्रत्यक् योजन-सहस्र आयामः उदक्	= पूर्वदिशा (=प्राक् और) पश्चिम दिशा (=प्रत्यक्) हजार योजन लम्बा उत्तरदिशा (=उदक्)
अवाक् पञ्चयोजनशत-विस्तारः वज्र-मय-तलः	= (तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्) पांचसौ योजन चौड़ा वज्र सम जिसका तल
विविध-मणि कनक-विचित्रत-तटः	= नाना प्रकार के (=विविध) मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा ह्रदः तस्य अवगाह प्रकृति	= पद्मनामा सरोवर है। तिस (पद्मनामाह्रद) की गहराई के स्वरूप (=प्रकृति) के
अर्थम् इदम् उच्यते	= लिये यह (अगर सूत्र में) कहा जाता है कि
(१) सूत्रम्—दशयोजनावगाह ॥ १६ ॥	= (प्रथमो ह्रदः) दश-योजन अवगाह ॥ १६ ॥
सूत्रार्थ—प्रथम ह्रदः दश-योजन अवगाहः	= पहिला (पद्मनामा) द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है ॥
वृत्त्यनुवाद —अवगाह अथ प्रवेश निम्नता	= अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई या गहरापनहै (=निम्नता)
दश-योजनानि अवगाहः अस्य	= दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन अवगाहः तद्-मध्ये किम्	= दशयोजन अवगाह है तिस (पहिले पद्मद्रह) के बीच में क्या है?

सूत्र द्वारा ह् में पलट गया है वहस्त्र व विजिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ॥ ६० (सूत्र) है अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये हैं (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४) पूर्वोक्त सूत्र झलां जश् झशि, से बना है झल् (अक्षरों) के स्थान में जश् अक्षर आते हैं यदि झश् अक्षर (परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आयः क्योंकि झल् = झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह इन चौबीस अक्षरोंमें से जो कोई अक्षर हो उसके स्थान में जश् (=ज ब ग ड द) अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते हैं यदि झश् = झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अर्थ अथवा अर्ध (अपोरशाऽर्थो ह्रेयः) सूत्र से बनो शब्द हैं प्रथम ध् अर्थ का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आता है इसलिये प्रथम ध् (अर्थका) झ् श् प्रत्याहार के ज ब ग ड द अक्षरों में से द् में जो उसके वर्ग में से है पलट जाता है यद् ध । अर्द्ध ॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है। हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है॥

॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥ जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनाल तावद्बहुलपत्रप्रचय पुष्करमवगन्तव्यम् ॥ इतरेषा ह्रदाना पुष्कराणा चायामादिनिर्ज्ञानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

सूत्रार्थ—तद्-मध्ये[१] योजनं[२] पुष्करं[३]॥ = उस(पद्मनामाद्रह)के बीच में एक योजन(लम्बा चौडा रत्नमयी)कमल है

वृत्त्यनुवाद—योजन-प्रमाण-[१] योजनं[२] क्रोश = योजन भर माप है सो योजन है। (एक एक)कोशकी(दोनों ओर आमने सामनेके)

आयाम-पत्रत्वात् क्रोश-द्वय-विष्कम्भ कर्णिकत्वात् च = लम्बाई पत्तोंकी होनस और दो कोशकी चौडाईकी कर्णिका अर्थात् (कमलके बीचका)

कुड्मल होने स

योजन आयाम-विष्कम्भम्[३]॥ = ऐसे एक योजन लम्बाई(=आयाम) चौडाई(=विष्कम्भ) है अर्थात् कमलके एक ओर के कमल के पत्ते की लम्बाई एक कोश और उसके सामने के पत्ते की लंबाई एक कोश और इन दोनों पत्तोंके बीच के कुड्मल(कमल की कर्णिका) की लम्बाई चौडाई दो कोश ऐसे चार कोश अथवा एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सब आमन सामने के पत्ते और बीच की कर्णिका को मिलाकर एक वृत्ताकार बनता है जिसका प्रत्येक व्यास चार कोश या एक योजन का होगा। एकयोजन लम्बा, एक ही योजन चौडा सूर्यके मण्डलके सदृश गलपाकर मतर भूषरूप पद्मद्रहके मध्यमें कमल है

जल-तलात्[१]॥ क्रोश-द्वय-उच्छ्रायनालं[२]॥ = नीरके तलसे दो कोशकी ऊंचाईकी(उच्छ्रास) (कमल की)नाल अथवा नली है

तावत्-बहुल-पत्र-प्रचयं[३]॥ = इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल,बहुल)पत्तोंका समूह(=प्रचय) वाला

पुष्करम्[१]॥ अवगन्तव्यम्[२]॥ इतरेषां[३] ह्रदानां[४] = कमल जानना चाहिये अन्य(शेष बचे हुवे पांच)सरोवरों की

पुष्कराणां[५]॥ च आयाम-आदि निर्ज्ञान अर्थं[६]॥ आह = तथा(=च)कमलों की लम्बाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

श्वेताम्बर आम्नायकसमान्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है। (देखो इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञानार्थम्॥केन द्विगुणा ? आयामादिना॥ पद्महृदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्महृद । तस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छह्रद । पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्ध्यन्ते ॥

(१)सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाह्रदा पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्-द्विगुण-द्विगुणा ॥ = उन (अथवा पद्मद्रह और कमल)से दुगने दुगने(लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई में अगले दो महापद्म और तिगिंछ)

ह्रदा ॥ पुष्कराणि ॥ च = सरोवर हैं और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कमल हैं भावार्थ पद्मनामाद्रहसे दुगुण-महापद्मद्रह है ॥ और महापद्म से दूना तिगिंछ सरोवर है इन तीनों द्रहों के बराबर ही उत्तरओरके तीनों पर्वतों के तीनों द्रह हैं तथा द्रहों के कमलों के बराबर कमल हैं

भाष्यानुवाद—सः॥ च॥ तद्॥ च॥ ते॥ = यहुरि वह(पद्मद्रह)तथा(=च)पुर(=तद्)(पुष्कर)वे दोनों(=ते)(सूत्रमें तद् शब्दकरिगृहणकिये हैं)

तयोः॥ द्विगुणाः द्विगुणास्तद् द्विगुणद्विगुणाः॥ = उन(पद्मद्रह और पुष्कर)का दुगुना दुगुना है सो तद्द्विगुणद्विगुणा(सूत्रमें)

इति॥ द्वित्वम्॥ व्याप्ति-ज्ञान अर्थम्॥ = ऐसा द्वित्व अथवा दूना २ पना व्याप्ति बोधक के है अर्थात् सूत्र में दो बार द्विगुण द्विगुण ह्रदों और कमलों का विस्तार जनावने के लिये ग्रहण किया है

केन॥ द्विगुणाः॥ आयामआदिना॥ पद्मह्रदस्य॥ = किस से दो गुना है । लम्बाई आदिक से पद्मद्रह की

द्विगुण आयाम विष्कम्भ अवगाह॥ महापद्मह्रद॥ = दुगुणी लम्बाई(=आयाम)चौड़ाई(=विष्कम्भ)गहराई (=अवगाह)का महापद्म सरोवर है

तस्य॥ द्विगुण आयाम-विष्कम्भ अवगाह॥ = तिस(महापद्मद्रह)की दूनी लम्बाई चौड़ाई गहराई का

तिगिंछह्रद ॥ पुष्कराणि॥ च॥ किम्॥ द्विगुणानि = तिगिंछ द्रह है (प्रश्न)"पुष्कराणि च" ऐसा वाक्य सूत्र में क्यों दुगुने

द्विगुणानि॥ इति॥ अभिसम्बध्यन्ते । = दुगुन ऐसा(पुष्करों के साथ) लगाया जाय अथवा जोड़ा जाय है अर्थात्

(१) इस सूत्रका हमारे यहाँ एकसा पाठ है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है(इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ १७,१८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिपत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामाः क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीन्हीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महापद्मद्रहके पुष्करसे दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिञ्छद्रहका कमल है ॥ इन तीनों द्रहोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों द्रह हैं और तीनों द्रहोंके कमलोंके बराबर कमल हैं ॥

तद्-निवासिनीनाम्॥देवीनाम्॥संज्ञा जीवित-परिवार प्रति-पादन-अर्थम्॥आह— =तिन (कमलोंमें) निवास करनेवाली देवियोंके नाम आयु और परिवार =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य पल्योपमस्थितय ससामानिकपरिषत्का १९

सूत्रार्थः—तद्-निवासिन्यः॥देव्यः॥ =तिन (पद्मरत्नमयी पुष्करोंके प्रसादों) में (क्रमसे) निवास करनेवाली (छह) देवियां

श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः॥पल्योपम-स्थितयः॥ =श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, (प्रत्येक) पल्योपम आयुकी धारक हैं (और)

स-सामानिक-परिषत्काः॥ =सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्ते हैं अर्थात् रहती हैं

वृत्त्यनुवादः—तेषु॥पुष्करेषु॥ कर्णिका-मध्यदेश निवेशिन ॥ =तिन कमलोंमें कर्णिकाके मध्य भागमें (=देश) स्थिति (निवेशिनः)

शरद्-विमल-पूर्ण-चन्द्र द्युति-हराः॥ =शरद् ऋतुके अथवा कुमार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले

क्रोश आयामाः॥क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः॥देश-ऊन-क्रोश- =(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी

उत्सेधाः॥प्रसादाः॥तेषु॥निवसन्ति॥इति एवम् =ऊंचाईके श्रेष्ठगृह तिनमें रहती हैं ॥ इस प्रकार

शीलाः॥तद्-निवासिन्यः॥श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी— =स्वभाववाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी है

श्वेताम्बर आम्नायके समान्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसकी पूर्त नहीं [illegible] का टिप्पणी पृष्ठ १० [illegible] पर)

संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्या ॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुष प्रमाणमुक्तम् ॥ समाने स्थाने भवा सामानिका । सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषद । सह सामानिकपरिषद्भिर्वर्तन्त इति ससामानिकपरिषत्का ॥ तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिका परिषदश्च वसन्ति ॥ यकाभि सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

संज्ञिका॥ तेषु॥ पद्मादिषु॥ यथाक्रमं॥वेदितव्या॥ = नाम है जिनके तिन पद्मादिक(द्रहों)में क्रमानुसार मानना चाहिये(अर्थात् पद्मद्रह कमलके मध्य गृहमें श्री देवी महापद्मद्रह पुष्करके उत्तम गेह (प्रासाद)में ह्री देवी, तिगिंछ सरोवर कमलके प्रासादमें धृति देवी और केसरि द्रह कमलके उत्तम घरमें कीर्ति देवी महापुंडरीक द्रह पुष्करके भवनमें बुद्धि देवी और पुंडरीकद्रह कमलके प्रासादमें लक्ष्मी देवी रहती है ॥

पल्योपम-स्थितय॥ इति॥ अनेन॥ आयुष॥ प्रमाणम्॥ उक्तम्॥ = पल्योपम स्थितिवाली इस(वाक्य) करि(=अनेन) आयुकी मर्यादा का परिमाण कहा गया है

समाने॥ स्थाने॥ भवा॥ सामानिका॥ = समान स्थानमें होनेवाले अर्थात् ऐश्वर्य में बराबर हो सो सामानिक है

सामानिका॥ च परिषद॥ च सामानिक-परिषद॥ = और सामानिका अरु परिषदका द्वंद्व समास सामानिक परिषद् है

सह॥ सामानिक-परिषद्भि॥ वर्तन्ते॥ इति॥ ससामानिक परिषत्का॥ = सामानिक जाति के देव(अथवा समान ऐश्वर्य वाले देव) तथा पारिषद जाति के देवों(अर्थात् सभा में प्रधान या सभासद) करि सहित वर्ते हैं ऐसे(सूत्र में) ससामानिक परिषत्का(देवियां) हैं ॥

तस्य॥ पद्मस्य॥ परिवार पद्मेषु॥ प्रासादानाम्॥ उपरि सामानिका॥ परिषद॥ च वसन्ति॥ = तिस कमल के परिवार कमलों विषैं भवनों के ऊपर सामानिक जाति के देव तथा परिषद जाति के देव बसते हैं

यकाभि॥ सरिद्भि॥ तानि॥ क्षेत्राणि॥ प्रविभक्तानि॥ ता॥ उच्यन्ते॥ = जिन नदियों करि ते सात) क्षेत्र विभाजित हैं ते(नदियां आगे के सूत्र में)कही जाती हैं कि

(१) या स्त्रीलिंग पद्म शब्द में क न् (=क) प्रत्यय इसी अर्थ में लगाया है अर्थात् क न् (=क) लगभी आता है अर्थ भी शब्द का नहीं पलटता है ॥

तन्निवासिनीना देवीना सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह–

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिन शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहरा क्रोशायामा क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधा प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवशीलास्तन्निवासिन्यो देव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महापद्मद्रहके पुष्करस दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिञ्छद्रहका कमल है ॥ इन तीनों ह्रदोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों ह्रद हैं और तीनों ह्रदोंके कमलोंके बराबर कमल हैं ॥

तद् निवासिनीनां॥देवीनां॥सञ्ज्ञा जीवित-परिवार =तिन (कमलोंमें)निवासकरनेवाली देवियोंके नाम आयु और परिवार
प्रति-पादन अर्थम्॥॥आह॥ =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य पल्योपमस्थितय ससामानिकपारिषत्का १९

सूत्रार्थः-तद्-निवासिन्यः॥ देव्यः॥ =तिन(पद्मरत्नमयी पुष्करोंके प्रासादों)में(क्रमसे) निवास करनेवाली(छह)देवियां
श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः॥पल्योपम-स्थितयः॥ =श्री,ह्री,धृति,कीर्ति,बुद्धि,लक्ष्मी,(प्रत्येक)पल्योपम आयुकी धारक हैं (और)
स-सामानिक-पारिषत्काः॥ =सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्तें हैं अर्थात् रहती हैं

वृत्त्यनुवादः—तेषु॥पुष्करेषु॥ कर्णिका-मध्यदेश निवेशिनः॥ =तिन कमलोंमें कर्णिकाके मध्य भागमें (=देश)स्थिति(निवेशिनः)
शरद् विमल-पूर्ण-चन्द्र द्युति-हरा॥ =शरद् ऋतुके अथवा कुंवार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले
क्रोश आयामाः॥क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः॥देश-ऊन-क्रोश- =(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी
उत्सेधाः॥प्रासादाः॥तेषु॥निवसन्ति॥ इति एवम् =ऊंचाईके भेहगुर तिनमें रहती हैं ॥ इस प्रकार
शीला॥तद्-निवासिन्यः॥श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी— =अपने स्वभाववाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीरे

श्वेताम्बर आम्नायके समान्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इनको सूत्र नहीं माना है। (देखो टिप्पणी पृष्ठ १० १७ पर)

द्वयोर्द्वयो सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासा प्रसंगनिवृत्ति कृता ॥ पूर्वा पूर्वगा इति वचन दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ तत्र पूर्वा या सरितस्ता पूर्वगा । पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगा ॥ किमपेक्ष पूर्वत्व ? सूत्रनिर्देशापेक्षम् ॥ यद्येवं गगासिन्ध्वादय सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम् । नैष दोष । द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात् ॥ द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगा इति वेदितव्या ॥ इतरासा दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयो ॥ द्वयो ॥ सरितो ॥ एक एक ॥ क्षेत्रं ॥ विषय ॥	= (सात युगल) नदियोंमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषैं (क्रमसे) हैं
इति॰वाक्यविशेष अभिसम्बन्धात् ॥ एकत्र॰सर्वासा ॥	= ऐसा वचन विशेष जोड़नेस एक स्थानमें सबके
प्रसंग-निवृत्ति ॥ कृता ॥ पूर्वा ॥ पूर्वगा ॥	= संयोगका निराकरण किया जाय है(सबमें) पहिली पहिली गमन करनेवाली
इति॰वचनं ॥ दिक्-विशेष-प्रतिपत्ति अर्थम् ॥	= ऐसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनेके लिये है॥
तत्र॰पूर्वा ॥ या ॥ सरित ॥ ता ॥ पूर्वगा ॥	= तहां(सबमें) पहिलीपहिली जो नदियां हैं व पूर्व दिशाको जानेवाली हैं
पूर्व जलधिं ॥ गच्छन्ति इति॰ पूर्वगा ॥ पूर्वत्वं ॥	= पूर्व समुद्रको गमन करती है ऐसी पूर्वगा(नदियें)हैं(प्रश्न) पूर्व पन
किम्॰अपेक्षं ॥ पूर्वत्वम् ॥ सूत्र-निर्देश	= क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली हैं(इस) सूत्रके कथनकी
अपेक्षम् ॥	= विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कहीं तिसकी विवक्षा से पहिली हैं ॥
यदि॰ एवम्॰	= जो ऐसे हैं (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ में पहिले कथित हैं सो पहिली हैं) तो
गंगा-सिन्धु आदय ॥ सप्त ॥ पूर्वगा ॥ इति॰प्राप्तम् ॥	= गंगासिन्धु रोहित रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको बहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
न॰एष ॥ दोष ॥	= यह दूषण नहीं है अर्थात् सूत्रमें पूर्वा शब्द लानेसे गंगा सिन्धु-रोहित् रोहितास्या
	हरित् हरिकान्ता-सीता-ये समझी जा सकती हैं ॥
द्वयो ॥ द्वयो ॥ इति॰सम्बन्धात् ॥	= क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोड़नेसे या सम्बन्धकरनेसे
द्वयो ॥ द्वयो ॥ पूर्वा ॥ पूर्वगा ॥ इति॰वेदितव्या ॥	= युग्म-युग्ममेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये
इतरेसां ॥ दिक्-विभाग प्रतिपत्ति अर्थम् ॥ आह	= अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिए(आचार्य अगले सूत्र में) कहते हैं कि

॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥

सरितो न वाप्य । ता किमन्तरा उत समीपा ? इत्यत आह तन्मध्यगा । तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगा ॥ एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

सूत्रम्–[1]गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकातासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्त मध्यगा ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या-हरित् हरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदा॥ सरितः॥ तत्-म ध्यगाः॥ =गंगा, सिंधु, रोहित् रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता =सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता =और रक्तोदा नदियें उन सातों क्षेत्रों)के बीचमें गमनकरनेवालीया बहनेवाली हैं

वृत्त्यनुवादः—सरितः॥ न॰वाप्यः॥ =(सूत्रमें सरित शब्द आनेसे यह अभिप्राय है कि चौदह नदियें हैं नकि बावड़ियें

ताः॥ किम॰अन्तरा॰उत॰समीपाः॥ इति॰अतः॰ =तो(नदियें)क्या अन्तराल-दूर दूर हैं(अन्तरा)या पास २(इनक्षेत्रोंके,हैं इसीलिए

आह तेषां॥ क्षेत्राणां॥ मध्यं॥ तन्मध्यं॥ तन्मध्येन॥ =कहते हैं कि तिन क्षेत्रोंके बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रों)के मध्यमेंसे है

वा॰गच्छन्ति इति॰ तन्मध्यगाः॥ एकत्र॰सर्वासां॥ =अथवा गमन करती हैं ऐसी तन्मध्यगा है । एक ठौर सब (नदियों) के

प्रसंग-निवृत्ति अर्थं॥, दिग्विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह =संयोगके निषेधके लिय और दिशाके भेद करनेके लिये(अग्रिमसूत्रमें,कहते हैं कि

सूत्रम्–द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगा ॥२१॥

सूत्रार्थ—द्वयोः॥ द्वयोः॥ सरितां॥ सूत्रे =द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः (सूत्रे) पूर्वगाः गच्छन्ति

पूर्वाः॥ कथिताः॥ पूर्वगाः॥ गच्छन्ति =नदियोंके प्रत्येक युगल युगलमेंसे या युग्म-युग्म-मेंसे [बीसवां] सूत्रमें =पहिली पहिली वर्णित नदी) पूर्व समुद्रको जाती हैं अर्थात् गंगा, रोहित, हरित्-सीता नारी-सुवर्णकूला और रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर लवण समुद्रमें मिलती हैं॥

(1) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है । यहाँ ... शब्द भी सूत्रमें आये हैं दोनों ठीक हैं ।

द्वयोद्वयो सरितोरेकैक चेत्रं विपय इति वाक्यविशेपाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासा प्रसंगनिवृत्ति कृना ॥ पूर्वा पूर्वगा इति वचन दिग्विशेपप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ तत्र पूर्वा या सरितस्ता पूर्वगा । पूर्व जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगा ॥ किमपेत्त पूर्वत्व ? सूत्रनिर्देशापेत्तम् ॥ यद्येव गगासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम् । नैप दोप । द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात् ॥ द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगा इति वेदितव्या ॥ इतरासा दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयो द्वयो सरितोः एक-एक चेत्रं विपयः इति वाक्यविशेप अभिसम्बन्धात् एकत्र सर्वासा प्रसंग निवृत्ति कृता पूर्वा पूर्वगा इति वचनं दिक्-विशेप-प्रतिपत्ति अर्थम् तत्र पूर्वाः या सरितः ता पूर्वगा पूर्व जलधिं गच्छन्ति इति पूर्वगा पूर्वत्वं किम् अपेक्षं पूर्वत्वम् सूत्र-निर्देश अपेक्षम् यदि एवम् गंगा-सिन्धु आदयः सप्त पूर्वगाः इति प्राप्तम् न एप दोप द्वयोः द्वयोः इति सम्बन्धात् द्वयोः द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः इति वेदितव्याः इतरेसां दिक्-विभाग प्रतिपत्ति-अर्थम् आह

= (सात युगल) नदियोंमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषै (क्रमसे) है
= ऐसा वचन विशेष जोडनेस एक स्थानमें सबके
= संयोगका निराकरण किया जाय है(सत्रमें) पहिली पहिली गमन करनवाली
= एसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनके लिये है॥
= तहां(सत्रमें) पहिलीपहिली जो नदियां है वे पूर्व दिशाको जानवाली है
= पूर्व समुद्रको गमन करती हैं ऐसी पूर्वगा(नदियें) है(प्रश्न) पूर्वपन
= क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली है(इस) सूत्रके कथनकी
= विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कहीं तिसकी विवक्षा से पहिली हैं ॥
= जो एस है (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ में पहिले कथित है सो पहिली है) तो
= गंगासिन्धु रोहित रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको बहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
= यह दूषण नहीं है अर्थात् सूत्रमें पूर्वा शब्द आनेसे गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या हरित् हरिकान्ता-सीता-य समझी जा सकती हैं ॥
= क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोडनेसे या सम्बन्धकरनसे
= युग्म-युग्ममेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये
= अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिए(आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

द्वयोर्द्वयोर्या अवशिष्टास्ता अपरगा प्रत्येतव्या ॥ अपरसमुद्रं गच्छन्तीत्यपरगा ॥ तत्र पद्महृदप्रभवा पूर्वतोरणद्वारनिर्गता गङ्गा ॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता सिन्धु ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहितास्या ॥ महापद्महृदप्रभवाप्रतीच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहित् । उदीच्य तोरणद्वारनिर्गता हरिकान्ता तिगिञ्छहृद-प्रभवा दक्षिणद्वारनिर्गता हरित् उदीच्य तोरणद्वार निर्गता सीतोदा केसरि हृदप्रभवा अवाच्य

सूत्रम्–(१ शेषास्त्वपरगा ॥ २२ ॥=शेषाः, सरितः तु अपरगाः (भवन्ति)

सूमार्थ–शेषाः सरितः तु (२) अपरगाः भवन्ति =और शेष नदियें (सिन्धु रोहितास्या हरिकान्ता सीतोदा नरकान्ता रूपकूला रक्तोदा)

द्वयोः द्वयोः याः अपरगाः अवशिष्टाः =पश्चिम दिशाको गमन करनेवाली हैं अर्थात् लवण समुद्रके पश्चिममें बहकर मिलती हैं

अस्येतव्याः अपर-समुद्रं गच्छन्ति इति अपरगाः =युगल युगलमेंसे बची हुई जो (सात नदियें) हैं वे पश्चिम दिशाको जानेवाली

तत्र पद्महृद प्रभवा पूर्व-तोरण-द्वार- =जानना चाहिये पश्चिम समुद्रको जाती हैं ऐसी अपरगा (नदियें) हैं ।

निर्गता गङ्गा, अपर-तोरण-द्वार-निर्गता =वहां पद्मद्रह उत्पत्तिस्थानक पूर्वतोरणद्वारसे

सिन्धुः, उदीच्य-तोरण-द्वार-निर्गता =निकली हुई गंगानदी है। (उस पद्मद्रहके) पश्चिममें तोरणद्वारसे निकली हुई

रोहितास्या, महापद्म-हृद प्रभवा अवाच्यतोरण-द्वार =सिन्धु नदी है। [उस पद्मद्रहके] उत्तरके (=उदीच्य) तोरणद्वारसे निकली हुई

निर्गता रोहित् । उदीच्य-तोरण-द्वार- =रोहितास्या नदी है। महापद्मद्रह उत्पत्तिस्थानके दक्षिण केतोरणद्वारसे

निर्गता हरिकान्ता तिगिञ्छहृद प्रभवा दक्षिणद्वार =निकली हुई रोहित् नदी है। [उस महापद्मद्रहके] उत्तरके तोरणद्वारसे

निर्गता हरित् उदीच्य-तोरणद्वार- =निकली हुई हरिकान्ता नदी है। तिगिञ्छद्रह उत्पत्तिस्थानके दक्षिणद्वारसे

निर्गता सीतोदा, केसरि-हृद प्रभवा अवाच्य- =निकली हुई हरित् नदी है। [उस तिगिञ्छ सरोवरके] उत्तरके तोरणद्वारसे

=निकली हुई सीतोदा नदी है। केसरीद्रह उत्पत्तिस्थानके दक्षिणके

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सम्पूर्ण एक है ॥ स्थानान्तर आम्नायक सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रम इसको सूत्र नहीं माना है ॥

(२) तु शब्दका अर्थ "और पर तु (पमकोश न० १०३में) आते हैं अतः सूत्रका अर्थ ऐसा भी होता है कि परन्तु अवशेष नदियें पश्चिमको बहनेवाली

(३) अवाच=दक्षिण और अवाच्य=दक्षिणका ॥ उदीच्=उत्तर और उदीच्य=उत्तरका ॥

तोरणद्वारनिर्गता सीता ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता नरकान्ता ॥ महापुण्डरीकह्रदप्रभवा दक्षिणद्वारनिर्गता नारी ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रूप्यकूला ॥ पुण्डरीकह्रदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता सुवर्णकूला ॥ पूर्वतोरणद्वारनिर्गता रक्ता ॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता रक्तोदा ॥

तासां परिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

तोरण-द्वार-निर्गता॥सीता॥	=तोरणद्वारसे निकली हुई सीता है ॥
उदीच्य-तोरणद्वार -निर्गता॥नरकान्ता॥	= उस केसरीद्रहके) उत्तरके तोरणद्वारसे निकली हुई नरकान्ता नदी है ॥
महापुण्डरीकह्रद प्रभवा॥दक्षिण-द्वार-निर्गता॥नारी॥	=महापुण्डरीकद्रह उद्भवस्थानके दक्षिण द्वारसे निकली हुई नारी नदी है
उदीच्य-तोरण-द्वार निर्गता॥रूप्यकूला॥	= उस महापुण्डरीकद्रहके उत्तरके तोरण द्वारसे निकली हुई रूप्यकूला नदी है
पुण्डरीक-ह्रद प्रभवा॥अवाच्यतोरण-द्वार निर्गता॥सुवर्णकूला॥	=पुण्डरीकद्रहके दक्षिणके तोरणद्वारसे निकली हुई सुवर्ण कूला नदी है ॥
पूर्व-तोरण-द्वार-निर्गता॥रक्ता॥	=(उस पुंडरीकद्रहके) पूर्व तोरण द्वारसे निकली हुई रक्ता नदी है ॥
अपर-तोरण-द्वार-निर्गता॥रक्तोदा॥	=(उस पुंडरीकद्रहके) पश्चिमद्वारसे निकली हुई रक्तोदा नदी है
तासां॥परिवार प्रतिपादन अर्थम्॥आह	=तिन[नदियों]के कुटुम्बकी नदियों के जाननेके लिये[अग्रिमसूत्रमें]कहते हैं कि

सूत्रम्—(1)चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्य ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृताः॥गङ्गासिन्धु	=चौदह सहस्र नदियों करि परिवारित गंगा तथा सिंधु
आदयः॥नद्यः॥	=आदिक नदियें हैं अर्थात् गंगामें छोटी२चौदह सहस्र नदियें आकर मिलती हैं

और सिन्धुमें भी छोटी २ चौदह सहस्र नदियें मिली हैं। रोहित् तथा रोहितास्या प्रत्येककी अठाईस २ सहस्र परिवारकी नदियें हैं ॥ इसीप्रकार हरित और हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र हैं ॥ सीता और सीतोदाकी

(1) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥

पडधिका विंशति षड्विंशति । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार ॥ भरत किमेतावानेव, नेत्याह । षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्यविस्ता रोऽस्येत्यभिसम्बध्यते ॥

सूत्रार्थ,—भरत[1] षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार[2] =भारतवर्ष (दक्षिण उत्तर में) पांचसौ छब्बीस योजन विस्तारवाला या चौड़ाईरूप
षट्[1] च[2] एक[3] ऊन विंशति-भागा[4] योजनस्य[5] =और छह भाग योजनके उन्नीस भागों में से और है अर्थात् भारत क्षेत्रकी दक्षिण उत्तरकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ है

वृत्त्यनुवाद,—षट्-अधिका[1] विंशतिः[2] षड्विंशतिः[3] =छह ऊपर बीस सो छब्बीस (=षड्विंशति) है ॥
षड्विंशतिः[1] अधिकानि[2] येषु[3] तानि[4] षड्विंशानि[5] =छब्बीस जिसमें वा अधिक हैं जिनमें ते षड्विंश (=षड्विंशानि) हैं
षड्विंशानि[1] पञ्चयोजनशतानि[2] विस्तारः[3] यस्य[4] =छब्बीस और पांचसो योजन है विस्तार या चौड़ाई जिसकी
षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः[1] भरतः[2] =सो पांचसौ छब्बीस योजन चौड़ाईवाला या विष्कम्भरूप है (भरत) भरतक्षेत्र
किम् एतावान् [1] एव [2] न इति आह [3] षट् [4] च [5] =क्या इतनाही है ॥ (उत्तर) ऐसा नहीं है कहते हैं कि और छह भाग
एक-ऊन-विंशतिभागाः[1] योजनस्य[2] अभिसम्बध्यते[3] =योजनके उन्नीसभागोंमेंसे मिलायजाय हैं अथवा जोड़े जाय हैं ॥

"भरतः षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तार" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी सभी हस्तलिपियों में है और मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है । 'ति' अधिक समझा है क्योंकि जो वृत्ति इसके नीचे दी हुई है वह 'विंश' शब्द की है और समन्वय वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें दी है 'षड्विंशानि' एक शब्द आदि है और 'यस्य' के स्थान में 'अस्य' है उससे विग्रह में और अर्थ में कोई भेद नहीं होता । हमारी समझ में यही पाठ उमा स्वामी कृत होना चाहिये क्योंकि (१) इस पाठमें 'नृ' एक अक्षर और इकार का काम है । और पूज्यपाद स्वामीकी कृति अनुपलब्ध 'गन्धहस्त महाभाष्य' के अतिरिक्त सबसे प्राचीन है उनका जन्म संवत् १०८ में हुआ था ऐसा उल्लेख कर चुके हैं उनने जिस प्रति से पाठ लिया होगा वह बहुत ही प्राचीन प्रति होगी [illegible]

बहुधा पुस्तकों में "षड्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य" यह पाठ है तत्त्वार्थवार्तिक में षड्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य भी पाठ है अर्थात् दोनों पाठ हैं । ये दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि 'एकोनविंशति (स्त्री०) एकेन न विंशति एक न आयुक्त [illegible] न उन्नीस की संख्या' एक उन्नीस (शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ ८४) में 'एकोनविंशति' का ऐसा विग्रह और व्युत्पत्ति की है परन्तु स्मरण रहे कि "एकोन" का अर्थ (जो कि लिखी है) एककालमेवात [illegible] यहां एकबारही योजन किया जाता है । इकट्ठा जानेवाला एकमकनून । एकवार जाने का मूल ऐसा अर्थ है इस सूत्रके होने हुवे बत्तीसवें सूत्रकि जम्बूद्वीपस्य १९० हिस्सा भरतकी आवश्यकता नहीं ५२६$\frac{10000}{19}$ = $\frac{100000}{190}$ अथवा इस २४ वां सूत्रको निकाल कर ३२ वां सूत्र इसके स्थानमें करदेतेही यह बहुतसा सूत्र बचजाता और ५२६$\frac{6}{19}$ की निकालमानेमि० ०० + १९० — $\frac{10000}{19}$ ५२६$\frac{6}{19}$

विस्तारोऽस्येति इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ तद्द्विगुणाद्विगुणाविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा ॥ के ते ? वर्षधरवर्षा ॥ किं सर्वे ?

विस्तारः॥अस्य॥इति॥ =ऐसा इस(भरतक्षेत्र) का विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है

इतरेषाम्॥विष्कम्भ-विशेष-प्रतिपत्ति अर्थं॥आह॥ =अन्य (वर्षों तथा कुलाचलों) के विस्तारके भेद जनानेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ता ॥ २५ ॥

तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः॥ =उस (भरत क्षेत्र) से दुगुनी दुगुनी (दक्षिणमें) चौड़ाई वाले

वर्षधर-वर्षाः॥विदेह अन्ताः॥ =क्षेत्र तथा पर्वत विदेह तक पर्वत हैं अर्थात् भरतक्षेत्र ५२६$\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा है ॥ हिमवत् कुलाचल एक सहस्र बावन योजन बारहकला ($\frac{12}{19}$) है। हैमवत क्षेत्र दो सहस्र एकसौ पांच योजन और पांचकला है। महा हिमवान कुलाचल चार सहस्र दोसोदश योजन दशकला है। हरिक्षेत्र आठ सहस्र चारसौ इक्कीस योजन एक कला है ८४२१$\frac{1}{19}$ योजन है। निषध कुलाचल सोलह सहस्र आठसौ बया लीस योजन दो कला है १६८४२$\frac{2}{19}$ है, विदेहक्षेत्र तेतीस सहस्र छसौ चौरासी योजन चारकला है (३३६८४$\frac{4}{19}$ योजन)

ततः॥भरतात्॥द्विगुण॥द्विगुणः॥ =तिस भरतक्षेत्र से दुगुनी दुगुनी है (दक्षिण उत्तर में)

विस्तारः॥येषाम्॥ते॥इमे॥तद्द्विगुण-द्विगुण =चौड़ाई जिनकी ते ये (सभी) तद्द्विगुण-द्विगुण

विस्ताराः॥के॥ते॥ =विस्तार वाले हैं (अर्थात् भरत क्षेत्र से दूने २ चौड़ाई वाले हैं (प्रश्न) ते कौन है ?

वर्षधर-वर्षाः॥किं॥सर्वे॥ =(उत्तर) पर्वत और क्षेत्र हैं। क्या सब (आपके पर्वत और क्षेत्र भारतवर्षसे दूने २ चौड़ाईमें) हैं ॥

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषा कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दाक्षिणातुल्याः ॥ २६ ॥

१४ न#इति#आह।विदेह अन्ताः।'इति# =ऐसा नहीं है-कहते हैं कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६ ६/१९ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल=१०५२ १२/१९ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५ ५/१९ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१० १०/१९ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=४२११ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध कुलाचल=१६८४२ २/१९ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४ ४/१९ योजन चौड़ा है ॥

अथ#उत्तरेषां।कथं#इति#अतः#आह। =अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिये (अगला सूत्र में) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—

उत्तरा दक्षिणातुल्याः ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" वाक्योंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१) के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्या ।

वर्षधरवर्षाः।विदेह उत्तराः#दक्षिण तुल्याः। =पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के) =समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषिध, महा हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरिहैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले हैं। ५४

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ एक है। उत्तरा दक्षिणतुल्या कहींकहीं पर पाठ है वह अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है।

उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्या । अतीतस्य सर्वस्याय विशेषो वेदितव्य ।

पहले पच्चीसवें सूत्रमें दक्षिणके पर्वत तथा क्षेत्रोंका पृथक् पृथक् विस्तार कहा है सो ही उत्तरके पर्वत तथा क्षेत्रोंका समझना चाहिये ॥

(२) विदेह–उत्तरा दक्षिण–तुल्या ॥

विदेह–उत्तरा(१) =विदेहक्षेत्रसे उत्तरदिशाके (३ पर्वत, ३ क्षेत्र ३ द्रह ३कमल छह नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)

दक्षिण– =दक्षिण दिशाके (३ पर्वत ३ क्षेत्र ३ द्रह ३ पुष्कर छः नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)

तुल्या ॥ =समान हैं अर्थात् बराबर विस्तारवाले और बराबर गणना वाले हैं ॥

चतुर्दश नदियोंमेंसे सीतानदी केसरी द्रहसे निकलकर पूर्वी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणसमुद्रमें पूर्वकी ओर जाकर मिलती है और सीतोदा नदी तिगिञ्छद्रहसे निकलकर पश्चिमी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणोदधिमें पश्चिमकी ओर जाकर मिलती है ॥ पर्वत, क्षेत्र, द्रहों, पुष्करों आदिका विस्तार और गणना प्रथम कह चुके हैं वही मानना ॥

वृत्त्यनुवादः–उत्तराऐरावत–आदयः ॥ =(विदेह क्षेत्रसे) उत्तरदिशाके ऐरावत आदि (३पर्वत,३क्षेत्र,३द्रह, ३ पुष्कर, छ नदियें और इनकी परिवारकी नदियें आदि)

नील–अन्ताः ॥ भरतादिभिः ॥ =नीलकुलाचल तक भरतादिक(तीन क्षेत्र, तीन कुलाचल, तीन द्रह, तीन कमल, छः नदियों और इन नदियोंकी परिवारकी नदियें आदि)

दक्षिणैः ॥ तुल्याः ॥ द्रष्टव्याः ॥ अतीतस्य ॥ =दक्षिण दिशासे समान जानना चाहिये ॥ अतीत अर्थात् प्रथम वर्णित

सर्वस्य ॥ अयम् ॥ विशेषः ॥ वेदितव्यः ॥ =सब(वस्तुओं)केपर विशेष(कि उत्तर दिशाके पर्वतादिक दक्षिण दिशाके तुल्य हैं) जानना चाहिये

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ७१में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ क्रमशः ऐसे है (स्त्री०)प्रेतकी पितृत्वप्राप्ति होनेपर सपिण्डीकरणके अनन्तर जो पितृसम्बन्धी क्रिया की जाती है सपिण्डीकरणके पीछेकी आद्धक्रियायें। उत्तर दिशा काल, द्रव्य(अव्य०)" इसलिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अव्यय माना है।

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दाक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

न॰इति॰आह॰विदेह अन्ताः॰इति॰ =ऐसा नहीं है-कहते हैं कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६६/१९ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल= १०५२१२/१९ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५५/१९ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१०१०/१९ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=८४२११/१९ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध कुलाचल=१६८४२२/१९ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४४/१९ योजन चौड़ा है ॥

अथ॰उत्तरेषां॰कथं॰इति॰अतः॰आह[1] =अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिए (अगला सूत्र में)कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—

उत्तरा दक्षिणतुल्या ॥ २६ ॥

इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" शब्दोंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्या ।

वर्षधरवर्षाः॰विदेह उत्तरा॰दक्षिण तुल्याः॰ =पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के) =समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषध, महा हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरि हैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले हैं ।

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ एक है। उत्तरा दक्षिणतुल्याः कहींकहीं यह पाठ है यह अशुद्ध है। श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है।

न तयो क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्त । असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवत ॥ अथवा अधिकरणनिर्देश भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति ॥ किंकृतौ वृद्धिह्रासौ ? अनुभवायु प्रमाणादिकृतौ ॥ अनुभव उपभोग, आयु

२७ न तयोः क्षेत्रयोः वृद्धि-ह्रासौ स्तः = न उन (भरत, ऐरावत) के क्षेत्रफल अथवा विस्तार की बढ़ती घटती है ॥
असम्भवात् तत् = क्योंकि (विस्तारका बढ़ना घटना) असम्भव है। तिन (भरत ऐरावत) में
स्थानाम् मनुष्याणां वृद्धि-ह्रासौ भवतः अथवा = रहनेवाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है ॥ अथवा (षष्ठी निर्देश छोड़कर)
अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च = सप्तमी विभक्तिके निरूपनमें भरतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)
मनुष्याणां वृद्धि-ह्रासौ इति = मनुष्योंकी बढ़ती घटती है ऐसा है "भावार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "भरतैरावतयोः" यह वाक्य षष्ठी या सप्तमी विभक्तिमें एक ही रूप धारण करता है इस वाक्य के साथ वृद्धिह्रासौ वाक्य के जोड़देने से षष्ठी में यह अर्थ होता है कि भरत तथा ऐरावत की वृद्धि और ह्रास अर्थात् एक प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भरत और ऐरावत के विस्तारकी बढ़ती तथा घटती उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणीकालमें होती है इस पूर्वोक्त संदेहको दूर करनेके लिये आचार्य "भरतैरावतयोः" वाक्यको सप्तमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भरत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती है न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा क्षेत्रफलकी बढ़ती तथा घटती होती है ॥
किम् कृतौ वृद्धि-ह्रासौ = (प्रश्न) वृद्धि-ह्रास कौन कृत या जनित है। अर्थात् बढ़ना घटना किसके किये हुये हैं
अनुभव आयुस् प्रमाण-आदि-कृतौ = (उत्तर) अनुभव जीवनकालका परिमाण आदिकी की हुई (बढ़ती घटती) है
अनुभवः उपभोगः आयुः = अनुभव अर्थात् उपभोग या विषयों का सुखास्वादन आयु अर्थात् २७

(१) यह आयु शब्द अमरकोश वर्ग १८ श्लोक १२० में "आयुस्" इस रूपमें नपुंसक लिंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एकवचन "आयु" नपुंसक लिंगमें पयस् शब्द के सदृश बनेगी ॥

तेन ह्रदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादि । आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ । काभ्या ? षट्समयाभ्याम् । कयो ? भरतैरावतयो ।

तेन॥	=तिस(विशेष अर्थात् उपरां दक्षिण तुल्यता) करि
ह्रद-पुष्कर	=द्रह,कमल (पर्वत, क्षेत्र, नदियें, परिवारकी नदियें)
आदीनाम्॥तुल्यता॥योज्या॥ । अत्र॰आह॥	=आदिकोंकी समानता लगाई जाय है । यहां (शिष्य) पूछता है कि
उक्तेषु॥भरतादिषु॥क्षेत्रेषु॥मनुष्याणां॥किं॰	=कथित भरतादिक क्षेत्रोंमें मनुष्योंका क्या
तुल्य अनुभव आदि॥आहोस्वित्॰कश्चित्॰	=तुल्य अनुभव आदिक है अथवा कुछ
अस्ति॥प्रतिविशेष॥इति॰अत्र॰उच्यते॥	=विशेषता(=प्रतिविशेष है) इसलिये (=इति)यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि ॥

सूत्रम्—(१) भरतैरावतयो र्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्(२)॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—भरत-ऐरावतयोः॥	=भारतवर्ष और ऐरावतवर्षमें
	(निवास करनेवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु, काय, अनुभव,सम्पदा,वीर्य,सुखपादिका)
वृद्धि-ह्रासौ॥उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीभ्याम्॥	=बढ़ना घटना उत्सर्पिणीरूप अवसर्पिणीरूप
षट्-समयाभ्याम्॥	=छै छै कालोंके हेतुसे (यथासंख्य) होता है ॥
वृत्त्यनुवाद॥वृद्धि॥च॥ह्रासः॥च॥वृद्धि-ह्रासौ॥काभ्याम्॥	=और बढ़ना तथा घटना है सो वृद्धि ह्रासौ है (प्रश्न) किन दो हेतुसे बढ़ना घटना है ।
षट्-समयाभ्याम्॥	=(उत्तर—उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके)युगल छ कालोंसे(बढ़ना तथा घटना)है ॥
कयोः॥भरत-ऐरावतयोः॥	=(प्रश्न)किन दोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर)भारत ऐरावतका ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है । इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥
(२) सर्पिणीभ्याम्के स्थानमें जहां(सर्पिणीभ्यां)पाठ है वह एक प्रकारसे अशुद्ध है(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथमपृष्ठ ४)शेष पाठ हमारे जैसे पाठकी॥

षड्विधैव भवति ॥ अवसर्पिण्या परिमाणं दशसागरकोटीकोट्य । उत्सर्पिण्या अपि तावतेव ॥ याऽसौ उभयी (सोभयी) कल्प इत्याख्यायते ॥ तत्र सुषमसुषमा चतस्र सागरोपमकोटीकोट्य । तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्या ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्या सुषमा भवति तिस्रः सागरोपम-कोटीकोट्य । तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमा

षड्विधा ॥ एव भवति ॥ =छह प्रकारकी ही होती है अर्थात् अतिदुःखमा, दुःखमा, दुःखमासुखमा, सुखमादुःखमा, सुखमा, सुखमासुखमा ऐसे छह काल हैं ॥

अवसर्पिण्या ॥ परिमाणं ॥ दशसागरकोटीकोट्य ॥ =अवसर्पिणीकालकी मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागर अथवा १०००००००० गुणित १००००००००=१०००००००००००००००० है अर्थात् एक पद्म सागर है ॥

उत्सर्पिण्या ॥ अपि तावत् एव ॥ =उत्सर्पिणी (काल) का भी तितना ही (एक पद्मसागर मर्यादा) है ॥

या ॥ असौ ॥ उभयी ॥ (सा ॥ -उभयी ॥) =जो (=या) वह (=असौ) दोनों (उभयी), कल्प काल हैं ॥

कल्प ॥ इति आख्यायते ॥ =ऐसा कहा गया है । तत्र सुषमसुषमा ॥ चतस्रः ॥ =तहाँ सुखमसुखमा चार

सागरोपमकोटीकोट्य ॥ =कोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण अर्थात् ४०००००००० × १००००००००= ४०००००००००००००००० चालीस लाख नील सागर का है ॥

तद् आदौ ॥ मनुष्या ॥ उत्तरकुरु-मनुष्य-तुल्या ॥ =तिस (काल) की आदिमें मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिके मनुष्योंके समान हैं ॥ अर्थात् इस (काल) की आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है । अनुक्रम से घटती है अन्त में दो पल्य की रहती है (२) शरीर की ऊंचाई आदि में तीन कोस अनुक्रम से अन्त में २ कोस (३) तीन दिन पश्चात् चौथे दिन बदरीफल सम आहार इत्यादि घटता घटता जाता है

ततः क्रमेण ॥ हानौ ॥ सत्याम् ॥ सुषमा ॥ =तहाँसे अनुक्रमसे हानि होनेपर सुखमा काल

भवति तिस्रः ॥ सागरोपम-कोटीकोट्य ॥ तद्-आदौ मनुष्य (?) तीन कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होता है । तिस (सुखमाकाल) की आदि विषैं मनुष्य

हरिवर्ष-मनुष्य-समा ॥ =हरिवर्ष मध्यम भोगभूमिके मनुष्योंके तुल्य हैं (२ कोश शरीर २ पल्य आयु इत्यादि)

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः ॥ किंहेतुकौ पुनस्तौ? कालहेतुकौ ॥ स च कालो द्विविधः । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्भेदाः षट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी षड्विधा—सुषमसुषमा । सुषमा । सुषमदुष्षमा । दुष्षमसुषमा । दुष्षमा । अतिदुष्षमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता

जीवितपरिमाणं॥शरीर उत्सेधः॥	=जीवनकालका परिमाण (और) शरीरकी ऊंचाई
इत्येवम्+आदिभिः॥वृद्धिह्रासौ॥मनुष्याणां॥भवतः॥	=इत्यादिक करिके (=इत्येवमादिभिः) बढती और घटती मनुष्योंकी होती है ॥
पुनः+तौ॥किम्+हेतुकौ॥ ।	=(प्रश्न) फिरि वे (वृद्धिह्रास) कौन निमित्तक अथवा जनित हैं ।
काल+हेतुकौ॥सः॥च+कालः॥	=(उत्तर) समयकारणक हैं अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाल है । वह और [=च] काल
द्विविधः॥उत्सर्पिणी॥ अवसर्पिणी॥च+इति॥।	=दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च) अवसर्पिणी एस हैं ।
तद्+भेदाः॥प्रत्येकं॥षट्॥	=उन (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पृथक् पृथक् (प्रत्येक) छह हैं
अन्वर्थ-सञ्ज्ञे॥च+एते॥ ।	=और(=च) ये (उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी) जैसा अर्थ वैसा (=अन्वर्थ) नामधारक हैं
अनुभव+आदिभिः॥उत्सर्पण शीला॥	=(पूर्वोक्त) अनुभव आदिक सहित आगेबढनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् वृद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो
उत्सर्पिणी॥तैः॥एव+अवसर्पण शीला॥	=उत्सर्पिणी है तिन (अनुभव, आदि) से ही (=एव) पीछेहटनेका (=अवसर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् ह्रास करने की है प्रकृति जिसकी सो
अवसर्पिणी॥ तत्र+अवसर्पिणी॥षड्विधा॥सुषमसुषमा॥	=अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी छह प्रकार है सुखमसुखमा
सुषमा॥सुषमदुष्षमा॥दुष्षमसुषमा॥	=सुखमा, सुखमदुःखमा, दुःखमसुखमा
दुष्षमा॥अतिदुष्षमा॥ । उत्सर्पिणी॥अपि+	=दुःखमा अतिदुःखमा उत्सर्पिणी [काल] भी है
अतिदुष्षमा॥आद्या॥सुषमसुषमा॥अन्ता॥	=जिसका अति दुःखमा(काल) परिला है और सुखमसुखमा(काल) अवसर्पिणी का(अन्ता) है

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्या भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्त ॥ किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

सूत्रम्—(१)ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥ २८ ॥

सूत्रार्थ —ताभ्याम् अपराः	=तिन(भरत तथा ऐरावतवर्षों)से अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः अवस्थिताः	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्य हैं अर्थात् इनके क्षेत्रोंमें वृद्धि ह्रास नहीं होता है ॥
शब्दानुवाद—ताभ्याम् भरत-ऐरावताभ्याम् अपराः	=उन भरत तथा ऐरावत क्षेत्रोंसे अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः अवस्थिताः भवन्ति	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्यविद्यमान (=अवस्थिता) हैं (=भवन्ति)
न हि तत्र स्तः	=क्योंकि (=हि) नहीं हैं वहां (पूर्वोक्त पांच क्षेत्रोंमें)
उत्सर्पिणी-अवसर्पिण्यौ । किम् तासु भूमिषु	=उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकाल (प्रश्न) क्या तिन (पांच) भूमियोंविषैं
तुल्य आयुषः मनुष्याः आहोस्वित् कश्चित्	=समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) कुछ
अस्ति प्रतिविशेषः इति अतः आह	=भिन्नता वा पृथक्ता (=प्रतिविशेष) है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एक-द्वि त्रि-पल्योपम-स्थितयः हैमवतकाः	=एक दो और तीन पल्य प्रमाण आयुवाले (क्रमसे) हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले
हारिवर्षकाः दैवकुरवकाः ॥२९॥	=हरिवर्षके निवासकरनवाले मनुष्य और देवकुरु(भोगभूमि)के वसनेवाले मनुष्य हैं अर्थात् हैमवत क्षेत्र जो जघन्य भोग भूमि का क्षेत्र है वहांके उसमें मनुष्योंकी

(१) हमारे यहां इन सूत्रोंका पाठ एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम' में इन सूत्रोंका सूत्र नहीं मानेहैं (टिप्पणी पृष्ठ८७ १८ देखा)

सर्वार्थ

ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुःषमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमा ॥ तत क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ तत क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ तत क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

१०

ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥सुषमदुष्षमा॥ भवति॥द्वे॥सागरोपमकोटीकोट्यौ॥तद्-(१)आदौ॥ मनुष्याः॥हैमवतक-मनुष्य-समाः॥ =वहां से क्रमसे हानि होनेपर सुखमदुःखमाकाल =दो कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है। तिस (सुखम दुःखम) की आदिमें =मनुष्य हैमवतक जघन्य भोगभूमिके मनुष्योंके सारिखे हैं (अर्थात् एककोश शरीर, एकपल्य आयु, एकदिन पीछे आहार इत्यादि)

ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥ दुष्षमसुषमा॥एकसागरोपमकोटी-कोटी-द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना॥भवति। तद्-आदौ॥मनुष्याः॥विदेह जन-तुल्याः॥भवन्ति। ततः॥क्रमेण॥हानौ॥सत्याम्॥दुष्षमा॥ भवति।एकविंशति-वर्षसहस्राणि॥ततः॥क्रमेण॥ हानौ॥सत्याम्॥अतिदुष्षमा॥एकविंशति-वर्ष-सहस्राणि॥भवति।एवम्॥उत्सर्पिणी॥अपि॥ विपरीतक्रमा॥वेदितव्या॥ अथ॥इतरासु॥भूमिषु॥का॥अवस्था॥इति॥अतः॥आह। =वहांसे क्रमकरि हानि होनेपर =दुःखमसुखमा एक कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण से =बियालीस सहस्रवर्ष न्यून वा हीन होता है =तिस (दुःखमसुखमा) की आदि में मनुष्य विदेहक्षेत्र के मनुष्योंके समान होते हैं ॥ =वहांसे यथाक्रम हानि होने पर दुःखमाकाल =इकीसो सहस्र वर्षका होता है। वहांसे क्रमानुसार =हानि होनेपर अति दुःखमकाल इकीस =सहस्र वर्षका होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल भी =उलटा अनुक्रमरूप जानना चाहिये =आगे (=अब) अन्य (भूमियों) विषें क्या दशा (=अवस्था) है इसलिये कहते हैं कि

सिद्धि

६०

(१) 'आदि' लिखा है, जहां "सुषमदुष्षमा" शब्द के लिये आया है अतः स्त्रीलिंगमें रखना है यदि काल के लिये होवे तो पुल्लिंग में रोचक है ॥

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनुःसहस्रोच्छ्रिता चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णा ॥ पञ्चसु हरिवर्षेषु सुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधा षष्ठभक्ताहारा शङ्खवर्णा ॥ पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुष

तत्र=एक-पल्योपम-आयुषः॥मनुष्याः॥ =वहां मनुष्य एक पल्योपम आयुवाले
द्वि-धनुष्-सहस्र उच्छ्रिताः॥ =दो सहस्र चाप ऊंचे (=उच्छ्रित)
चतुर्थ भक्त आहाराः॥ =चौथा(=चतुर्थ)भोजन वा अन्नके(=भक्त) खानेवाले (=आहार) अर्थात् तीनवारके भोजन(के समय)को त्यागकर चोथीवारका भोजन करनेवाले तात्पर्य एकदिनको बीचमें छोड़कर भोजनकरनेवाले
नील-उत्पल-वर्णाः॥ पञ्चसु॥हरिवर्षेषु॥ =और नीले कमल सम अपकेधारक हैं । पांच हरि क्षत्रोंमें
सुखमा॥सदा॥अवस्थिता॥ तत्र॥मनुष्याः॥ द्वि-पल्योपम =सुखमाकाल सर्वकालमें वर्तमान है । वहां मनुष्य दोपल्यप्रमाण
आयुषः॥ चतुर्-चाप-सहस्र-उत्सेधाः॥ =अवस्थाके धारक चार सहस्र धनुष ऊंचे, लम्ब अथवा ऊंचाईवाले
षष्ठ-भक्त-आहाराः॥ =छठवां भोजन ग्रहण करनेवारे अर्थात् दो दिनका बीचमें अवकाश देकर तीसरे दिन उसी समय भोजन करनेवाले हैं
शंख-वर्णाः॥पञ्चसु॥देवकुरुषु॥सुषमसुषमा॥ =धवल अथवा श्वेत शरीर धारक हैं । पांच देवकुरु क्षेत्रोंविषैं सुखमसुखमा
सदा॥अवस्थिता॥तत्रमनुष्याः॥त्रिपल्योपमआयुषः॥ =सर्व कालमें अवस्थित है ॥ वहां मनुष्य तीन पल्य प्रमाण स्थिति वाले हैं

चौथे तु समस्तु समाकालमें एक बार भोजन साधारणतः प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और पंचमकालमें बहुधा दो बार भोजन प्रत्येक पुरुष करता है । क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी संस्कृतवृत्ति पूज्यपाद स्वामीने जिनका जन्म विक्रम संवत् ९०८ ज्येष्ठ सुदी दशमीको हुआ था पंचमकालमें रची है । इसकारण चतुर्थ भोजन करनेवालेका तात्पर्य यह है कि 'एक दिनका अन्तर देकर भोजन करनेवाला' 'एक दिनके अवकाश से भोजन करने वाला' 'एकदिन बीचमें भोजन न करके भोजन करनेवाला' ऐसे मानना कि पंचमकालके एक मनुष्यने और जघन्य भोग भूमिके एक मनुष्यने साथसाथ रविवार को भोजन सायंकाल किया तो पंचमकालका पुरुष सोमवारको प्रात कालमें एक भोजन और दूसरा उसी दिवसको सायंकालको करेगा और यदी मनुष्य एक भोजन मंगलवारको प्रात कालमें करेगा तथा जघन्य भोग भूमिका मनुष्य कोई भोजन न करेगा जब पंचमकालका मनुष्य मंगलको सायंकालको चौथा भोजन करेगा तब भोग भूमिका पूर्वोक्त मनुष्य फिर भोजन करेगा इसलिये कहा है कि चौथा भोजन करनेवाले अर्थात् तीनबार का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर देकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हैमवतकादयस्त्रय । एकादयस्त्रय । तत्र यथासख्यमभिसम्बन्ध क्रियते । एकपल्योपमस्थितयो हैमवतका । द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षका । त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता ।

एक पल्यकी अवस्था होती है । हरिवर्ष जहां मध्यमभोग भूमि है वहांके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पल्य की होती है । और देवकुरु उत्तम भोगभूमिके निवासकरनवाले नरोंका तीन पल्योपम जीवन काल है ।

(१)हैमवते॥भवा॥हैमवतका॥इत्येवं॥ =हैमवतवर्षमें होनेवाले अर्थात् उपजन वाले वे हैमवतका हैं इस प्रकार

वुञि॥सति॥ =वुञ् प्रत्यय (हैमवत शब्द के साथ) होनमें (=सति) (उसक्षेत्रमें होनेवाले)

मनुष्य-सम्प्रत्ययः॥भवति॥एवं॥उत्तरयोः॥अपि॥ =मनुष्योंका ज्ञान वा बोध होता है एसे अग्रिम दोमें (=उत्तरयोः) भी है ॥ अर्थात् हारिवर्ष और देवकुरु शब्दों के साथ वुञ् प्रत्यय आनपर उन दोनों क्षत्रों में उत्पन्न होनेवाले नरोंका बोध होताहै और हारिवर्षक, दैवकुरवकरूप होजाते हैं॥

हैमवतक-आदयः॥त्रय॥एक आदयः॥त्रय॥ =(इस सूत्र में) हैमवतक आदिक तीन हैं ॥ एक आदिक तीन (संख्या) हैं ॥

तत्र॥ =वहां (हैमवतक-हारिवर्षक और देवकुरवकका एक दो तीन गणनाओंके साथ)

यथासंख्यम्॥ =सख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासख्यम् अर्थात् पहिले को पहिली दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे),

अभिसम्बन्धः॥क्रियते॥एक-पल्योपम-स्थितय॥ =सम्बन्ध वा सयोग किया जाय है (जैसे) एक पल्योपमकी आयुधारक

हैमवतका॥ =हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) के उपमें मनुष्य हैं ॥

द्वि-पल्योपम स्थितय॥हारिवर्षका॥ =दो पल्योपम के जीवनकालवाले हरिवर्ष (मध्यम भोग भूमि)के निवासी मनुष्य हैं

त्रि-पल्योपम-स्थितय॥दैवकुरवका॥इति॥ =तीन पल्योपमकी अवस्थावाले देवकुरु (उत्तम भोगभूमि के) रहने वाले नर हैं

तत्र॥पञ्चसु॥हैमवतेषु॥सुषमदुष्षमा॥सदा॥अवस्थिता॥ =वहां पांच हैमवत देशोंमें सुखमदुःखम (काल) सर्वदाविद्यमान है ।

(१) 'हिमवत' शब्दमें 'अण (=अ)प्रत्यय जोड़नेसे, हिमवत् की इ'की वृद्धि होकर हैमवत्+अ = हैमवत इसमें 'वुञ्' प्रत्यय जोड़ो वुञ् का व भ्र्…, सहित होने से लोप हुआ और वु के स्थान में 'अक' का आदेश हुआ अत हैमवत+अक तब अकार का लोप होकर हैमवतक बना

देवकुरवोत्तरकुरवश्च समाख्याता ॥ अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते—

॥ विदेहेषु संख्येयकाला. ॥ ३१ ॥

मेरुषु पञ्चसु महाविदेहेषु

देवकुरवः ॥ आताकुरवश्च ॥	=देवकुरु प्रभृत उपजे मनुष्योंसे उत्तर कुरुक्षेत्रके उत्पन्न हुए मनुष्य
सम-आख्याता ॥ । अथ०विदेहेषु ॥	=समान (=सम) वर्णित कियगये हैं ॥ (अब) अब विदेहक्षेत्रोंमें
अवस्थितेषु ॥ का ॥ स्थिति ॥ इति० अत्र० उच्यते =रहनेवाले, वा निवासकरनेवालोंकी क्या आयु है ऐसे (प्रश्नपर) यहां कहा जाता कि	

(1)सूत्रम्—

विदेहेषु संख्येयकाला ॥ ३१ ॥

सूत्र—विदेहेषु ॥ संख्येय काला ॥	=विदेहक्षेत्रोंमें गिन सकनेयोग्य अवस्था वा आयुवाले होते हैं अर्थात् पांच मेरु सम्बन्धी पांचों विदेह क्षेत्रोंमें मनुष्य संख्यात वर्षकी आयुवाले होते हैं
वृत्त्यनुसार –मेरुषु ॥ पञ्चसु ॥ महाविदेहेषु ॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी) समस्त पांच महाविदेहोंमें

(1) इमारेवाले यही [illegible] यही सम्मत पाठ है इसीसे पाठ ठीक है (अ० पृष्ठ [illegible]) श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य०में इसको सूत्र नहीं माना है

(2) विनता विगतो देहः कायो येषु मुनीनां येषु ते विदेहाः । प्रायेण मुक्तिप्राप्तिहेतुत्वात् । तेषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिनः पञ्चपूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहाः उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहाः कथ्यन्ते ॥

विगत ॥ विगत ॥ देह ॥ कायः ॥ मुनीनां ॥	=विगत हुआ है (=विगत, ध्वंस हुआ है (=विनिष्ट) गात्र (देह) काय (शरीर) मुनियोंका
येषु ॥ ते ॥ विदेहाः ॥ प्रायेण मुक्ति पद प्राप्ति	=जिन (देशोंमें) वे विदेह हैं । प्रायः या बहुधा (=प्रायेण) मोक्षपदकी लब्धिके
हेतुत्वात् ॥ तेषु । विदेहेषु । पञ्चानां ॥ मेरूणां ॥	=कारणपनेसे (इन देशोंके नाम विदेह) हैं । तिन विदेहोंमें पांच मेरु
सम्बन्धिनः ॥ पञ्च ॥ पूर्व विदेहाः ॥ पञ्च अपर विदेहाः ॥	=सम्बन्धी पांच पूर्व दिशाके विदेह पांच पश्चिम दिशाके विदेह
उभये ॥ मिलित्वा – पञ्चमहाविदेहाः ॥ कथ्यन्ते ॥	=दोनों मिलकर पांच महाविदेह (ऊपरकी युक्तिमें) कहगये हैं या वर्णन कियेगये हैं ॥

षड्धनु सहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहारा कनकवर्णाः ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्याः। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्याः। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्याः।

पद्-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रायाः‚ अष्टमभक्त-आहाराः‚ =छह हजार धनुष ऊंचाईवाले आठवां भोजन ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन ग्रहण करनेवाले

कनकवर्णाः‚ अथ उत्तरेषु‚ =स्वर्ण या कञ्चनरूप हैं (प्रश्न) अब उत्तर दिशाओंविषैं

का‚ अवस्था‚ इति अतः आह =क्या अवस्था है इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— (१)तथोत्तरा ॥ ३० ॥ =(यथा दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (वदितव्याः)

सूत्रार्थः—यथा दक्षिणाः‚ व्याख्याताः‚ तथा (एव) =जैसे दक्षिण वाले वर्णन किये गये हैं तैसे (ही)

उत्तराः‚ वेदितव्याः‚ =उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हैरण्यवत रम्यक और उत्तरकुरु के) निवासकरनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हैरण्यवतक्षेत्र जो जघन्य भोगभूमिकाक्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी एक पल्य की आयु होती है। रम्यक क्षेत्र जहां मध्यम भोग भूमि है यहां के निवासी मनुष्योंकी आयु दोपल्यकी होती है॥ और उत्तरकुरु जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहांके निवासकरने वाले नरोंका तीन पल्योपमाका जीवनकाल है इसप्रकार पांचमेरु सम्बन्धी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसभोगभूमि हैं

पूज्यनुवादः—यथा दक्षिणाः‚ व्याख्याताः‚ तथा एव उत्तराः =जैसे दक्षिणदिशाके (क्षेत्रों)वाले वर्णन कियेगयेहैं तैसेही उत्तरदिशाके(क्षेत्रों)वालोंको

वेदितव्याः‚ हैरण्यवतकाः‚ =जानना चाहिये अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्रकनिवासीमनुष्य

(२)हैमवतकैः‚ तुल्याः‚ राम्यकाः‚ =हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान हैं। रम्यक क्षेत्रकेनिवासकरनेवाले मनुष्य

हारिवर्षकैः‚ तुल्याः‚ =हरिवर्षके रहनेवाले मनुष्योंसे तुल्य हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है (पृष्ठ १७, १८की टिप्पणी)

(२) क्योंकि यहांपर संस्कृत पंक्तिमें त्रितीया कारक है इस हेतु से अनुवादमें 'मनुष्योंसे' ऐसा लाये हैं जिसका यही अभिप्राय है जो मनुष्योंके साम्यके सामेपर होता है अर्थात् हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं।

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुष ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथा पठन्ति ॥ 'पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पएणं च सहस्सा वोद्धव्वा वासकोडीणम् ॥१॥७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भ । पुन प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

अघन्यन॥ अन्तर्मुहूर्त आयुष॥ =अघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले हैं ॥
तस्या॥ च सम्बन्धे॥ गाथा॥ पठन्ति॥ =बहुरि तिस (स्थिति) के संयोगमें गाथा बांचते या पठन करते हैं ॥
'पुव्वस्स॥ दु परिमाणं॥ ('पूर्वस्य॥ तु परिमाणं॥) =और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं॥ खलु कोडि-सद-सहस्साइम्॥ =निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
(खलु सप्तति-कोटि शत-सहस्राणि॥)
छप्पएणं॥ च सहस्सा॥ (च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि॥) =और (=च) छप्पन सहस
वोद्धव्वा॥ वास-कोडीणम्॥
वोद्धव्या॥ वास-कोटय॥ (=स-कोट्य) (१) (१) =करोड़ (१)(बरस) सहित मानना चाहिये (सातनील पांचलर्ष साठसहस् अर्व)
७०५६००००००००००
उक्त॥ भरतस्य॥ विष्कम्भ॥ पुन प्रकार अन्तरेण =(एक पूर्व के) सातनील पांचलर्ष साठ सहस अर्व हुये
तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह॥ =भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
=उस (चौड़ाई) के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

पद-कोडी' पूर्व कोटि (कोटी) अर्थो॥ =ये करोड़ (पूर्व हैं) सो पूर्व कोटी है (जिसके)
७०५६०००००००००००००० =७०५६०००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख बरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः—सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैक पूर्वमुच्यते
अस्य॥ अयम्॥ अर्थ॥ सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि॥ =इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ बरस (और)
षट् पञ्चाशत्सहस्रकोटि॥ वर्षाणि॥ यदा भवन्ति =छप्पन सहस् करोड़ बरस जब होते हैं
तदा एक॥ पूर्वम्॥ उच्यते =तब एक पूर्व कहा जाता है (सब्याम ७०५६०००००००००० ऐसे रखते हैं)

(२) कोडि कोडी। दोनों शब्द करोड़के वोधक हैं। 'कोडि' शब्दका बहुवचन प्रति शब्दके समान 'कोट्य' प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है॥ (३) बरस—ऐसा जान पड़ता है कि यहां से यह आर्या छोर लिया गया है, उस ग्रंथ से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं आये। अनुवादमें ... शब्द लाना अति आवश्यक है।

सङ्ख्येयकाला मनुष्या ॥ तत्र काल सुषमदुःषमान्तोपम सदाऽवस्थित । मनुष्याश्च पञ्चधनुःशतोत्सेधा । नित्याहारा । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिका ।

(१)सङ्ख्येय-काला ॥ मनुष्या ॥ तत्र काल ॥ =संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते हैं। वहां (विदेह क्षेत्रों में) काल

(२)सुषम-दुःषम-अन्त उपम ॥ सदा अवस्थित ॥ =सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित) है

मनुष्या ॥ च पञ्च-धनुःशत उत्सेधा ॥ =और मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे हैं अर्थात् पांचसौ धनुष उचाईमें होते हैं

नित्य आहारा ॥ =प्रति दिन (=नित्य-मधचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले हैं ॥

उत्कर्षेण ॥ एक-पूर्व(३)-कोटी-स्थितिका ॥ =उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

(१) संख्यायते गणयितुं शक्यते इति सङ्ख्येय । सङ्ख्येय कालो जीवितं येषां ते सङ्ख्येयकाला ॥

संख्यायते गणयितुम् ॥ शक्यते इति सङ्ख्येय ॥ =गणना के योग्य है (=संख्यायते) गिना जा सका है ऐसा सङ्ख्येय है ॥

सङ्ख्येय ॥ काल ॥ जीवित ॥ येषां ते ॥ सङ्ख्येय-काला ॥ =गिनने के योग्य है जीवन काल जिनका वे सङ्ख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥

(२) सुषमदुःषमाकालान्तसमसदृशस्वर्ये । अत्र 'दुःषमसुषमादि' इति पाठभेदस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥

सुषम-दुःषमा-काल-अन्त-काल सदृश-इति-अर्थ ॥ =सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ वा आशय है ॥

अत्र दुःषम सुषम आदि ॥ इति पाठभेद ॥ =यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि वा प्रारम्भ (शुरु) ऐसा पठन विशेष

ताल-पत्र-पुस्तके ॥ वर्तते =तालवृक्ष (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागद के पत्र न थे तब तालवृक्षके पत्तोंपर वा भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(३) पूर्वांग वर्षलक्षाण्यशीतिश्चतुरुत्तरा। ८४००००० ॥ तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६००००००००००००००००००

पूर्व अङ्ग ॥ वर्ष-लक्षाणि ॥ अशीति ॥ चतुर् उत्तरा ॥ =पूर्वांग है (वह) बरस लाख अस्सी ऊपर (=उत्तर) चार है-अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥

८४००००० ॥ तद् =चौरासीलाख संख्या है। उन (चौरासीलाख बरसों) को

वर्गितं ॥ भवेत् पूर्वं ॥ ७०५६०००००००००० =आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चौरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफल हो उतने वर्षोंका एक पूर्व होता है ८४००००० × ८४००००० = ७०५६०००००००००० अर्थात् सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्षोंका एक पूर्व होता है ॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुष ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथा पठन्ति ॥ 'पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥१॥७०५६००००००००००
उक्तो भरतस्य विष्कम्भ । पुन प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्त-आयुष॥	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले हैं ॥
तस्या॥ च सम्बन्धे॥ गाथा॥ पठन्ति॥	=बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा बांचते वा पठन करते हैं ॥
पुव्वस्स॥ दु परिमाणं॥ (पूर्वस्य॥ तु परिमाणम्॥)	=और (=तु=दु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं॥ खलु कोडि-सद-सहस्साइम्॥ (खलु सप्तति कोटि शत-सहस्राणि॥)	=निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पण्णं॥ च सहस्सा॥ (च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि॥)	=और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा॥ वा स कोडीणम्॥ (१) बोद्धव्या॥ वा स कोटय॥ (=स कोट्या) (१)	=करोड़ (१)(बरस) सहित जानना चाहिये (सत्तरीलाख पांचसहस्र साठसहस्र अर्ब)
७०५६००००००००००	=(एक पूर्वके) सात्तरीलाख पांचसहस्र साठ सहस्र अर्ब हुये
उक्त॥ भरतस्य॥ विष्कम्भ॥ पुन प्रकार अन्तरेण तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह	=भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि =उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत् वादी॥ पूर्व कोटि (वाटी) प्रमाण॥	=वे करोड़ (पूर्व हैं) सो पूर्वकोडी है (जिसके)
७०५६००००००००००००००००	=७०५६०००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख बरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः—सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते

अस्य॥ अयम्॥ अर्थ॥ सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि॥	=इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ बरस (और)
षट् पञ्चाशत्सहस्रकोटि॥ वर्षाणि॥ यदा॥ भवन्ति॥	=छप्पन सहस्र करोड़ बरस जब होते हैं
तदा॥ एक॥ पूर्वम्॥ उच्यते॥	=तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते हैं)

(२) कोडि वादी। दोनों शब्द करोड़के वाचक हैं। कोडि शब्दका बहुवचन प्रति शब्दके सदृश कोटय है और कोडी शब्दका 'वाडी' शब्द व समान 'कोटय' प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिङ्ग है ॥ (३) बरस—ऐसा ज्ञान पड़ता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अत इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये। अनुवादमें वर्ष शब्द लाना अति आवश्यक है॥

सस्येयकाला मनुष्या ॥ तत्र काल सुषमदुषमान्तोपम सदाऽवस्थित । मनुष्याश्च पञ्चधनु शतोत्सेधा । नित्याहारा । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिका ।

(१)संख्येय-काला ।१। मनुष्या: ।१। तत्र ० कालः ।१। =संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते हैं । वहां (विदेह क्षेत्रों में) काल
(२)सुषम-दुःषम-अन्त-उपमः ।१। सदा ० अवस्थितः ।१। =सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित) है
मनुष्याः ।१। च ० पञ्च-धनुःशत उत्सेधाः ।१। =वहांके मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे हैं अर्थात् पांचसौ धनुष उंचाईमें होते हैं
नित्य आहाराः ।१। =प्रति दिन (=नित्य-पयचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले हैं ॥
उत्कर्षेण ।३। एक-पूर्व(१)-कोटी-स्थितिकाः ।१। =उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

(१) संख्यायते गणयितु शक्यते इति संख्येय । संख्येय कालो जीवित येषां ते संख्येयकालाः ॥
संख्यातेT गणयितुम् ।।। शक्यतेT इति ० संख्येय ।१। =गणना के योग्य है (=संख्यायते) गिनाजासका है ऐसा संख्येय है ॥
संख्येय ।१। कालः ।१। जीवित ।१। येषां ।६। ते ।१। संख्येय-कालाः ।१। =गिनने के योग्य है जीवन काल जिनका वे संख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥
(२) सुषमदुःषमायाअन्तःकालसदृशस्तत्पर्यं । अत्र "दुःषमसुषमादि" इति पाठमेवस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥
सुषम दुःषमा-काल अन्त-काल सदृश-इति अर्थः ।१। =सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ वा आशय है ॥
अत्र ० दुःषम सुषम-आदि ।१। इति ० पाठ ० भेदः ।१। =यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि वा आरम्भ (सदृश) ऐसा पाठ विशेष
ताल-पत्र-पुस्तके ।१। वर्ततेT =ताड़पत्र (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागज के पत्र न थे तब ताड़पत्रके पत्तोंपर वा भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(१) पूर्वांग वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा । ८४००००० । तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६००००००००००००००००००॥
पूर्व-अङ्ग ।।। वर्ष-लक्षाणां ।६। अशीतिः ।१। चतुर् उत्तरा ।१। =पूर्वांग है (वह)बरस लाख अस्सी ऊपर(=उत्तर)चार है अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥
८४००००० ॥ तद् =चौरासीलाख संख्या है । उन (चौरासीलाख बरसों) को
वर्गितं ।१। भवेत्T पूर्वं ।।। ७०५६०००००००००००० =आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चौरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफलहो उतने वर्षोंका एकपूर्व होताहै ८४००००० × ८४००००० ७०५६०००००००००० ००आचार्य सातसौ पांच अर्ब साठ अरब वर्षोंका एक पूर्वहोता है ॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुष ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथा पठन्ति ॥ 'पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥१॥७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भ । पुन प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्यन॥ अन्तर्मुहूर्त-आयुष॥	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले हैं ॥
तस्या॥ च॥ सम्बन्धे॥ गाथा॥ पठन्ति॥	=बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा बांचते वा पठन करते हैं ॥
'पुव्वस्स॥ दु॥ परिमाणं॥ (पूर्वस्य॥ तु॥ परिमाणं॥)	=और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं॥ खलु॥ कोडि-सद-सहस्साइम्॥ (खलु॥ सप्तति-(१)कोटि शत-सहस्राणि॥)	=निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पण्णं॥ च सहस्सा॥ (च षट्-पञ्चाशत् सहस्राणि॥)	=और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा॥ वा॥ स-कोडीणम्॥ (१) बोद्धव्याः॥ वा॥ स-कोटयः॥ (=स-कोट्या:) (१)	=करोड़ (१)(बरस) सहित मानना चाहिये (सातनील पांचखर्व साठसहस्र अर्ब)
७०५६००००००००००	=(एक पूर्व के) सातनील पांचखर्व साठ सहस्र अर्ब हुये
उक्त॥ भरतस्य॥ विष्कम्भ॥ पुन॥ प्रकार अन्तरेण॥	=भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
तत्-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह	=उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत् कोटी॥ पूर्वं कोटि (कोटी) भवति॥	=ये करोड़ (पूर्व हैं) सो पूर्वकोटी है (जिसको)
७०५६००००००००००००००००००	=७०५६०००००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख बरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः—सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते

अस्य ॥ अयम् ॥ अर्थः ॥ सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि ॥	=इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ बरस (और)
षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटि ॥ वर्षाणि ॥ यदा ॥ भवन्ति	=छप्पन सहस्र करोड़ बरस जब होते हैं
तदा॥ एकम्॥ पूर्वम्॥ उच्यते	=तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते हैं)

(२) कोडि कोडी। दोनों शब्द करोड़के बोधक हैं। 'कोडि' शब्दका बहुवचन प्रति शब्दके सदृश 'कोट्यः' है और 'कोडी' शब्दका 'दासी' शब्दके समान 'कोटय' प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है। (३) बरस—ऐसा जान पड़ता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये। अनुवादमें 'वर्ष' शब्द लाना अति आवश्यक है॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भ स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, तत परो लवणोद समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ।

(१)सूत्रम—भरतस्य विष्कम्भो जम्बूदीपस्य नवतिशतभाग ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थ—भरतस्य॥ विष्कम्भः॥ जम्बूद्वीपस्य॥ नवतिशत-भाग॥

=भारतवर्षकी (दक्षिण उत्तर) चौडाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलक्षयोजन है)

=एकसौ नव्वे भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् ($\frac{१०००००}{१९०}$=५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है)

वृत्यनुवाद—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य॥ योजन शतसहस्रस्य॥ =जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके

नवतिशत भागीकृतस्य॥ =एकसौ नव्वे भाग किये हुओंमें से,

एक॥ भागः॥ भरतस्य॥ =एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण उत्तर)

विष्कम्भ॥ सः॥ पूर्व उक्त॥ एव॥ =चौडाई है सो पहिले वर्णितही है।

उक्त॥ जम्बूद्वीप॥ परिवृत्य॥ वेदिका॥ स्थिता॥ =वर्णित जम्बूद्वीपको घेरकर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसके पीछे लवणोदधि है

तत परः॥ लवणोद॥ समुद्र॥ =तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र

द्वियोजनशतसहस्र-वलय-विष्कम्भ॥ =दोलाख योजन वलयाकार कडेके आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर

एकबिंदु लेकर उसकी सीधमें जम्बूद्वीपकी परिधिपर दूसरा बिंदुलेकर दोनोंबिंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ यह है। श्वेताम्बर आम्नायके 'समाप्यभाष्याधिगमसूत्र' में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३५, ३८ की टिप्पणी देखो)। (२) सर्वार्थसिद्धिका मूलपाठ है। (३) एक भागमें भरतक्षेत्र दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र बत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत और चौसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। ऐसे जम्बूद्वीपके एकसौ सताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत बत्तीस भागोंमें रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त है। ऐसे उत्तर सम्बन्धी ये त्रेसठ भाग दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जंबूद्वीप के हैं। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि एक साधारण पाठक ५२६$\frac{६}{१९}$ = $\frac{१०००००}{१९}$ = $\frac{१०००००}{१९०}$ निकालसकता है कि १९० वां भाग भरत है। अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेते तो विद्यमान चौबीसवां सूत्र जो इससे बना सूत्र है न बनाना होता और— $\frac{१०००००}{१९०}$ = $\frac{१००००}{१९}$ = ५२६$\frac{६}{१९}$ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की चूडाई भी निकल आती।

तत परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ ॥
तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता । तत्र कथं सुच ? । अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः ॥

ततः=परः ।।धातकीखण्ड ।।द्वीपः।।चतुर् =उस (लवण समुद्र) से आगे धातकीखंड द्वीप चार
योजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः ।।तत्र =लाख योजन वलयाकार या कड़ेकेआकार विस्तारवाला है । तहां
वर्षादीनाम् ।।संख्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।।आह =क्षेत्रादिकोंकी गणनाके क्रम (=विधि) के जानके लिये (अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥ =धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो द्विः* संख्यायन्ते ॥३३॥

सूत्रार्थः-धातकीखण्डे ।।द्वीपे ।।भरत आदय ।। =धातकीखंड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाचल, पर्वत, द्रह कमल आदि (जम्बूद्वीपसे)
द्विः*संख्यायन्ते । =दूने दूने गिनेजाते हैं ।
वृत्त्यनुवादः-भरत-आदीनाम् ।।।(२)द्रव्याणाम् ।।।इह अभ्यावृत्ति ।।=भारतवर्ष(कुलाचल,द्रह,कमल)आदि द्रव्यवाची शब्दोंका यह(=यहां)दुबाराकथन
विवक्षिता ।। =(धातकीखंडद्वीपादिकमें)विवक्षासे कियागयाहै अर्थात् सूत्रग्रन्थोंमें या सत्शास्त्रोंमें

सूत्रकार दुबारा कभी किसी वस्तुका कथन नहीं करते, मगर एकबार भरत,कुलाचल,आदिका कथन आचार्य करचुके तब दुबारा कथन नहीं करना चाहियेथा, उसका उत्तरमें कहतेहैं कि धातकीखण्ड और पुष्कारार्ध आदिका कथनअवश्यही करनाथा उनका कथन भरतादिकके विवरण किये बिना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध आदिका कथनरहजाता, तत्त्वार्थसूत्र अधूरा होजाता सो ठीक नहीथा इसअपवादको छिपाहुये दुबाराभरतादिकका कथन करना पड़ा ॥

तत्र*कथम्*सुच् ।? =वहां(सूत्रमें द्वि शब्दको)कैसे सुच् प्रत्यय(जो रूपान्तर होकरसुच्=सु=स्=ः)होवाहै
अध्याह्रियमाण-क्रिया अभ्यावृत्ति-द्योतन-अर्थः ।। =(इससूत्रमें) क्रियाके कल्पना द्वारा विवरणकी स्पष्टताके मनाप्तनेके लिये

(१) इस सूत्रका दानों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)यहां पर भरतआदि द्रव्य हैं । व्याकरणमें प्रकृति प्रत्यय लिंग संख्या विशिष्टको द्रव्य कहा जाता है भरतादि शब्द लिंग संख्या विशिष्ट होनेसे द्रव्यवाचक शब्द हैं ॥(व्याकरणमें)वह पदार्थ कि जिसका लिंग और संख्या से सम्बन्ध हो द्रव्य है । पदकल्पद्रुम पृष्ठ।८१ ॥ अतएव द्रव्य शब्दका अर्थयहांपर जीव,अजीव धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंमेंसे कोईभी अपेक्षित नहीं है ॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भ स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ।

[1]सूत्रम्–भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभाग ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः–भरतस्य विष्कम्भ जम्बूद्वीपस्य	=भारतवर्षकी (दक्षिण उत्तर) चौडाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलाख योजन है)
नवतिशत-भाग	=एकसौ नब्बे भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् ($\frac{100000}{190}$=५२६$\frac{6}{19}$ योजन है)
सूत्रानुवाद—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य योजन शतसहस्रस्य	=जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके
नवतिशत-भागीकृतस्य एकः भागः भरतस्य	=एकसौ नब्बे भाग किये हुओंमें से, एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण-उत्तर)
विष्कम्भः सः पूर्व-उक्त एव, उक्तं जम्बूद्वीपं	=चौडाई है सो पहिले वर्णितही है। वर्णित जम्बूद्वीपको
परिवृत्य वेदिका स्थिता	=घेरकर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारों ओर वेदिका है उसकेपीछे लवणोदधि है
ततःपरः लवणोदः समुद्रः द्वियोजनशतसहस्र-	=तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र दोलाख योजन
वलय-विष्कम्भः	=वलयाकार कडेके आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर

एकबिंदु लेकर उसकी सीधमें जम्बूद्वीपकी परिधिपर दूसरा बिंदुलेकर दोनोंबिंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

(१) हमारे यहां इस प्रकार पाठ यह है। श्वेताम्बर आम्नायके 'तत्त्वार्थाधिगमभाष्य' में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३५, ९८ की टिप्पणी देखो)। (२) सर्वसम्मत सूत्रक्रम है। (३) एक भागमें भरतक्षेत्र दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र बत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत और चौसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। ऐसे जम्बूद्वीपके एकसौ सत्ताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत बत्तीस भागोंमें रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त है। ऐसे उत्तर सम्बन्धी ये त्रेसठ भाग दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जंबूद्वीप के हैं। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र ५२६$\frac{6}{19}$ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि यह सामान्य पाठक ५२६$\frac{6}{19}$=$\frac{10000}{19}$=$\frac{100000}{190}$ निकालसकता है कि १९० वां भाग भरत है। अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेतेसे तो विद्यमान चौबीसवां सूत्र जो इससे बडा सूत्र है न बनाना होता और $\frac{100000}{190}$ = $\frac{10000}{19}$ =५२६$\frac{6}{19}$ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की चौडाई भी निकल आती॥

वर्षधरपर्वता । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्यवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप
हिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्ष-
धराश्चक्रारवदवस्थिता ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र
धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्प-
रिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र-

वर्षपर्वताः[1] =कुलाचल हैं। इस प्रकार
एवम्[2] द्वौ[3] भरतौ[4] दो भारतवर्ष दो
द्वौ[5] हिमवन्तौ[6] =हिमवान्पर्वत
इत्येवम्-आदि-संख्यानम्[7] इत्यादि आदिक गणना
द्विगुणम्[8] (जम्बूद्वीपसे धातकीखण्डमें) दूनी
वेदितव्यम्[9] । =जाननी चाहिये। जम्बूद्वीप-हिमवत्-आदीनाम्[10] जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक
वर्षधराणाम्[11] =पर्वतोंका यः[12] जो विष्कम्भः[13] विस्तार है तत्[14] तिससे द्विगुणः[15] दुगुणा
धातकीखण्डे[16] =धातकीखण्डमें, हिमवत्-आदीनाम्[17] हिमवान् आदिक वर्षधराणाम्[18] कुलाचलोंका है।
वर्षधराः[19] =कुलाचल चक्र[20] पहियेकी अरवत्[21] आरक आर या अरा (=अरा)के सदृश अवस्थिताः[22] तिष्ठे हुए हैं। अर
विवर-संस्थानानि[23] =छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) क्षेत्राणि[24] (भरतादिक) क्षेत्र हैं।

इसप्रकार घटिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छुजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी) और घेरेके बीचमें जिस तरह चक्राकृतियें हैं तैसे पर्वत तिष्ठे हैं और पूर्वोक्त चक्राकृतियोंके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है वैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं। अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर

जम्बूद्वीपे[1] =जम्बूद्वीपमें यत्र[2] जहां जम्बूवृक्षः[3] जम्बूवृक्ष स्थितः[4] अवस्थित है तत्र[5] वहां
धातकीखण्डे[6] =धातकीखण्डमें धातकीवृक्षः[7] धातकीवृक्ष सपरिवारः[8] छोटे छोटे परिवार (के वृक्षों) सहित (स्थित) है तिसके
तद्योगात्[9] =संयोगसे या सम्बन्धसे धातकीखण्डः[10] इति[11] धातकीखण्ड ऐसी द्वीपस्य[12] द्वीपकी नाम[13] संज्ञा
प्रतीतम्[14] =प्रसिद्ध या ज्ञात है। तत्परिक्षेपी[15] तिस (धातकीखण्ड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोदः[16] कालोद
समुद्रः[17] =समुद्र टङ्कच्छिन्न-तीर्थः[18] टांकीसे छेदे घाट या तटोंसे युक्त हुए जलके स्थान समान(=तीर्थ) अष्टयोजन-शतसहस्र- आठ लाख योजन

(१) पहियेकी नाभि अथवा धुरी या बीचके गोलेके छिद्रमें से जो लकड़ियां पहियेके घेरेमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक — आरक, आर, अरा अथवा अर कहते हैं।

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्ड पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच्॥	=(द्विशब्द पर) सुचको अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया)है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के (१)अध्याहार या सूत्रके अन्तर्में(मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लायेहैं ॥
यथा॥द्विः॥तावान्॥ अयं॥प्रासादः॥मीयते॥इति॥	=जैसे दोगुणा(=द्वि)माप (=तावान्) यह राजभवन नापाजाय है या परिमाण कियाजाय है
एवम्॥द्विः॥धातकीखण्डे॥भरत-आदयः॥ मीयन्ते॥इति॥	=इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) द्विगुन (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक =नापे जाते हैं अथवा गणना किये जाते हैं भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्)कर्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अंतमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला हैकि जम्बूद्वीपमेंजो भरतक्षेत्र,हिमवत्,इत्यादि पुष्करादिकहैं उनकी अपेक्षा धातकीखंडमें दुगुणेहैं
तद्यथा॥द्वाभ्याम्॥इष्वाकारपर्वताभ्याम्॥	=जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट हैं)
लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम्॥	=लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों या सिरों तक
दक्षिण-उत्तर आयताभ्याम्॥विभक्तः॥धातकीखंडः॥	=दक्षिण उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे हैं । धातकी खंड
पूर्व-अपर'॥इति॥तत्र॥पूर्वस्य॥च॥अपरस्य॥मध्ये॥	=पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहां पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में
द्वौ॥मन्दरौ॥तयोः॥उभयतः॥भरत-	=दो मेरु पर्वत हैं । तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत-
आदीनि॥क्षेत्राणि॥च॥हिमवत् आदयः॥	=आदिक क्षेत्र हैं और (=च) हिमवान् आदिक

(१) 'अध्याहार'—यह वाक्य जो स्पष्टता स समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करलेना। अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द या वाक्य किसी पहिले सूत्र या वाक्य में आया है उसे उत्तर सूत्र या वाक्य में जोड़ लेना अनुकर्षण करना और भावार्थ अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द या वाक्य पहिले सूत्र में [illegible] आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द या वाक्यकी कल्पना करलेते हैं जिससे कि सूत्र वाक्यादिकका अर्थ समझमें आजावे॥

वर्षधरपर्वता । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्येवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीपहिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्द्विगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिता ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र-

वर्ष पर्वताः, एवम् द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्येवम् आदि-संख्यानम् द्विगुणम् वेदितव्यम्। जम्बूद्वीप हिमवद् आदीनाम् वर्षधराणाम् यः विष्कम्भः तद्द्वि-गुणः धातकीखण्डे हिमवद् आदीनाम् वर्षधराणाम् वर्षधराः चक्र अरवत् अवस्थिताः अर विवर-संस्थानानि क्षेत्राणि ।

=कुलाचल हैं इस प्रकार दो भारतवर्ष दो
=हिमवान्‌पर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे धातुकीखंडमें) दूनी
=माननी चाहिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक
=पर्वतोंका जो विस्तार है तिसस दुगुणा
=धातकीखंडमें, हिमवान् आदिक कुलाचलोंका है
=कुलाचल पहियेकी आरक आर वा अरा (=अरा)के सदृश तिष्ठे हुए हैं । अरोंके
=छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरतादिक) क्षेत्र हैं ।

इसप्रकार धरिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छुजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी)और घेरेके बीचमेंदंडारूप लकड़ियें हैं तैसे पर्वत तिष्ठे हैं और पूर्वोक्त लकड़ियोंके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है तैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं

अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर

जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः तद्योगात् धातकीखण्डः इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम्। तत्-परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्न-तीर्थः अष्टयोजन शतसहस्र-

=जम्बूद्वीपमें जहां जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहां
=धातकीखंडमें धातकीवृक्ष छोटे छोटे परिवार (के वृक्षों) सहित स्थित) है तिसके
=संयोगसे वा उपलक्षणसे धातकीखंड ऐसी द्वीपकी संज्ञा
=प्रसिद्ध वा ज्ञात है । तिस (धातकीखंड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोद
=समुद्र टांकीसे छदे कटे वा कुरेदे हुए जलकेस्थान समान(=तीर्थ)आठ लाख योजन

(१) पहियेकी नाभि अथवा धुरी या बीचके गोलेके चारोंतरफ जो लकड़ियां पहियेके घेरेके छेदोंमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक लकड़ी दंडेरूपको आरक, आर अरा अथवा [illegible] [illegible] कहते हैं ॥

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्ड पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच्	=(द्विशब्द पर) सुच् अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया) है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के (१)अध्याहार या सूत्रके अन्तमें (मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लाये हैं ॥
यथा॥द्विः॥तावान्॥अयं॥प्रासादः॥मीयत॥इति॥	=जैसे दोगुणा(=द्विः)माप (=तावान्) यह राजभवन नापा जाय है या परिमाण किया जाय है
एवम्॥द्विः॥धातकीखण्डे॥भरत-आदयः॥ मीयन्ते॥इति॥	=इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) दिगुने (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक =नापे जाते हैं अथवा गणना किये जाते हैं भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्)कर्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अन्तमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला है कि जम्बूद्वीपमें जो भरतक्षेत्र,कुलाचल,व पुष्करादिक हैं उनकी अपेक्षा धातकीखण्डमें दुगुणे हैं
तद्यथा॥द्वाभ्याम्॥इष्वाकारपर्वताभ्याम्॥	=जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो पांचसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट हैं)
लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम्॥	=लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों या सिरों तक
दक्षिण उत्तर आयताभ्याम्॥विभक्तः॥धातकीखंडः॥	=दक्षिण-उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे हैं । धातकी खंड
पूर्व अपर॥इति॥तत्र॥पूर्वस्य॥च॥अपरस्य॥मध्ये॥	=पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहां पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में
द्वौ॥मन्दरौ॥तयोः॥उभयत॥भरत-	=दो मेरु पर्वत हैं । तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत
आदीनि॥क्षेत्राणि॥च॥हिमवत्-आदयः॥	=आदिक क्षेत्र हैं और (=च) हिमवान् आदिक

'अध्याहार'—जब वाक्य को स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्द को कहकर वा करि स्पष्ट करदेना । अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द या वाक्य किसी पहिले सूत्र या वाक्य में आया है उसे अगले सूत्र या वाक्य में जोड़ लेना अनुकर्षण करना और भावार्थ अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द या वाक्य पहिले सूत्र में तो आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द या वचनकी कल्पना अपेक्षित है जिससे कि सूत्र इत्यादिकका अर्थ समझमें आजावे ॥

हिमवन्तौ इत्यादि। कुत ?। व्याख्यानत ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्कर सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढं पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्करार्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीप-हिमवदादिसङ्ख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुन कृत्स्ने एव पुष्करद्वीपे? इत्यत्रोच्यते——

हिमवन्तौ इत्यादि कुत व्याख्यानत	=हिमवान कुलाचल इत्यादिक क्योंकर हैं (इससूत्रके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विर्षे दोदोभरत दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) हैं
यथा धातकीखण्डे हिमवत् आदीनाम् विष्कम्भ	=जैसे धातकीखण्डमें हिमवान् आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है
तथा पुष्करार्धे हिमवत् आदीनाम्	=तैसे पुष्करार्धविर्षे हिमवान् आदिक (कुलाचल) निका
विष्कम्भ द्विगुण इति व्याख्यायते । नामानि	=(विस्तार) दुगुना है इसप्रकार विवरण कियागया है। नाम
तानि एव इष्वाकारौ मन्दिरौ च	=वेही हैं दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु
पूर्ववत् यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्ष तत्र	=पहिले (धातकीखण्डद्वीप) के समान हैं। यहां जम्बूद्वीपमें जंबूवृक्ष है। यहां(पुष्करद्वीपमें)
पुष्करम् सपरिवारम् तत एव तस्य	=पुष्करवृक्ष (चारोंओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है। यहांस ही तिस
द्वीपस्य अनुरूढम् पुष्करद्वीप इति नाम	=द्वीपकी सार्थकसंज्ञा (=अनुरूढ)पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है
अथ कथम् पुष्करार्ध संज्ञा । मानुषोत्तर	=आगे (=अथ)किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर-
शैलेन विभक्त अर्धत्वात् पुष्करार्द्ध	=पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनेसे पुष्करार्द्ध
संज्ञा	=नाम है अर्थात् मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमें पतनकरि अथवा मध्यस्थित होकर दोभाग करदिये हैं इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है
अत्र आह किम् अर्थम् जम्बूद्वीप-हिमवत्-	=(प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्
आदिसङ्ख्या द्वि आवृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते	=आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्वि आवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविर्षेवर्णित है
न पुन कृत्स्ने एव पुष्करद्वीपे	=बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमें (भरतादिकक्षेत्र) क्यों नहीं कहेगये हैं। आपेमें क्यों कहेगये हैं? (कृत्स्ने और द्वीपे पुल्लिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोंमें आते हैं)
इति अत्र उच्यते	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

वलयविष्कम्भ ॥ कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीप षोडशयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ ॥
तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

(किं)द्विरित्यनुवर्तते।किमपेक्षा द्विरावृत्ति ?जम्बूद्वीपेभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव।जम्बूद्वीपात्पुष्करार्धेद्वौ भरतौ द्वौ

वलय-विष्कम्भः।कालोदपरिक्षेपी।पुष्करद्वीपः। =वलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्ताररूप है। कालोदधि को घेरेहुए पुष्करद्वीप
षोडशयोजन-शतसहस्र-वलय विष्कम्भः। =सोलहलाखयोजन वलयाकार(अर्थात् कड़के आकार)चौड़ाईका धारक है।
तत्द्वीप-अम्भोनिधि विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्लृप्तिवत् =वहां(पुष्करद्वीपसेपूर्व)द्वीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्लृप्तिवत्)
धातकीखण्ड-वर्ष-आदि द्विगुण =धातकी खण्डके क्षेत्र (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आगेके क्षेत्र तथा पर्वतोंकी)
वृद्धि-प्रसंगे। विशेष-अवधारण-अर्थम्॥ =वृद्धीके अवसर(आजाने) पर पृथक् अथवा भिन्न =विशेष) नियमके लिये
आह। =(आचार्य,अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं। भावार्थ-जम्बूद्वीपसे अगलेके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ दूना है और जम्बूद्वीपसे धातकी खण्डकी रचना दूनी है सो इस प्रसंगके निषेधके लिये अर्थात् ऐसा न समझ लियाजावे कि धातकी खण्डसे पुष्करद्वीपकी रचना दूनी है। उपर सूत्र कहते हैं कि"पुष्करार्द्धे च"॥

सूत्रम्—[1]'पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ (= भरतादय द्विः संख्यायन्ते) पुष्करार्द्धे च

सूत्रार्थ-च।भरत आदयः।द्विः। =और =च) भारतवर्ष (कुलाचल-मेरु-क्रमश) आदिक (जम्बूद्वीपसे) दूने दूने
पुष्कर अर्द्धे।संख्यायन्ते। =पुष्करद्वीपके आधेभागमें गिनाये गये हैं
वृत्त्यनुवाद-(किम्)।द्विः।इति।अनुवर्तते। =क्या (क्या द्वि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्र से इससूत्रमें अनुवर्तता है या लाया गया है)
किम्।अपेक्षा।द्विः आवृत्तिः।जम्बूद्वीपे।भरत =किस विवक्षा द्विगुणता (=आवृत्ति) है (उत्तर) जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र तथा
हिमवन्-आदि-अपेक्षया।एव। =हिमवान्पर्वत आदिककी अपेक्षासे ही(पुष्करार्द्धमें दूनक्षेत्र तथा दूने कुलाचल)हैं
जम्बूद्वीपात्।पुष्करार्द्धे।द्वौ।भरतौ।द्वौ। = भरत)जम्बूद्वीपसे पुष्करार्द्धमें दो भरतक्षेत्र दो

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'पुष्करार्धे च' ऐसा पाठ है हमारे यहां भी ऐसे तत्त्वार्थ-राज पृ०१३६ श्लोक वार्तिकमें भी यही पाठ "पुष्करार्धे च" है इसलिये दोनों आम्नायोंमें भेद नहीं है। अर्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्द्ध और अर्ध दोनों शब्द कोष है।

हिमवन्तौ इत्यादि। कुत ?। व्याख्यानत ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्कर सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढ पुष्करद्वीप इति नाम ॥ अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीपहिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुन कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे? इत्यत्रोच्यते—

हिमवन्तौ इत्यादि कुत व्याख्यानत = हिमवान् कुलाचल इत्यादिक क्योंकर है (इसप्रश्नके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विषैं दोगुनापरव दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) है

यथा धातकीखण्डे हिमवत् आदीनाम् विष्कम्भः = जैसे धातकीखण्डमें हिमवान आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है

तथा पुष्करार्धे हिमवत्-आदीनाम् = तैसे पुष्करार्धविषैं हिमवान आदिक (कुलाचल) तिनका

विष्कम्भः द्विगुण इति व्याख्यायते नामानि = (विस्तार) दुगुना है इसप्रकार विवरण कियागया है। नाम

तानि एव इष्वाकारौ मन्दरौ च = वेही हैं दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु

पूर्ववत् यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्ष तत्र = पहिले (धातकीखण्डद्वीप) के समान हैं। यहां जम्बूद्वीपमें जंबूवृक्ष है। वहां(पुष्करद्वीपमें)

पुष्करम् सपरिवारम् तत एव तस्य = पुष्करवृक्ष (चारोंओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है। वहांसे ही तिस

द्वीपस्य अनुरूढम् पुष्करद्वीपम् इति नाम = द्वीपकी सार्थकता (=अनुरूढ) पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है

अथ कथम् पुष्कर-अर्द्ध-संज्ञा मानुषोत्तर = आगे (=अथ) किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर-

शैलेन विभक्त अर्द्धत्वात् पुष्करार्द्ध = पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनसे पुष्करार्द्ध

संज्ञा = नाम है अर्थात मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमें पड़नकरि अथवा अवस्थित होकर दोभाग करदिये हैं इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है

अत्र आह किम्-अर्थम् जम्बूद्वीप-हिमवत् = (प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्

आदिसंख्या द्वि आवृत्ता पुष्करार्द्धे कथ्यते = आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्वि आवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविषैंवर्णित है

न पुन कृत्स्ने एव पुष्करद्वीपे = बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमें (भरतादिकक्षेत्र) क्यों नहीं कहगये हैं। आधेमें क्यों कहेगये हैं? (कृत्स्ने और द्वीपे पुलिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोंमें आते हैं)

इति अत्र उच्यते = ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैलः। तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्याम्। ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवंजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषुद्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या। (अन्यपाठ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थ—प्राग्-मानुषोत्तरात्॥ मनुष्याः॥ =मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले देश वा स्थानमें मनुष्य हैं अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरके आधभागमें ऐसे अढाई द्वीपमें मनुष्य हैं

पुरयनुवाद—पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश भागी॥ =पुष्करद्वीपके बहुतबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें

वलय-वृत्त॥ मानुषोत्तरः॥ नामशैल॥ =वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है

तस्मात्॥ प्राक् * एव * मनुष्या॥ न * (२)बहिस् * इति * =तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य हैं बाहिर नहीं हैं

ततः * न * बहिस् * पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभागः॥ अस्ति॥ =तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (बहिस) प्रथमवर्णित क्षेत्रोंका विभाग नहीं है।

न * अस्मात्॥ उत्तरम्॥॥ कदाचित् * अपि * विद्याधरा॥ =न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)

ऋद्धिप्राप्ताः॥ अपि * मनुष्याः॥ गच्छन्ति॥ अन्यत्र * =ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोंसे अतिरिक्त, गमन करते हैं

उपपाद-समुद्घाताभ्याम्॥ (भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढाई द्वीपसे बाहिर जाते हैं बिना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नहीं जाते हैं)

ततः * अस्य॥ अन्वर्थ-सञ्ज्ञा॥ =जिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है।

एवम् * जम्बूद्वीपादिषु॥ अर्धतृतीयेषु॥ द्वयोः॥ च समुद्रयोः॥ मनुष्याः॥ =इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक अढाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोंमें मनुष्य

(१) दोनो आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। मनुष्यक्षेत्र [illegible] (२) बहिस् अथवा बहिर् [illegible]

वेदितव्या ॥ ते द्विविधा ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्या । ते द्विविधा । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्या पञ्चविधा । क्षेत्रार्या जात्यार्या कर्मार्याश्चारित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्या सप्तविधा । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधा । अन्तर्द्वीपजा कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्या ॥ ते ॥ द्विविधा ॥ =जानना चाहिये वे (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्—'आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥=(मनुष्या) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूत्रार्थः—मनुष्याः ॥ आर्याः ॥ म्लेच्छाः ॥ च॰ भवन्ति ॥ =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होते हैं

टीकार्थः—गुणैः ॥ गुणवद्भिः ॥ वा॰ अर्यन्ते ॥ इति॰ आर्याः ॥ =गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवैमान हैं ऐसे आर्या हैं

ते ॥ द्विविधा ॥ ऋद्धिप्राप्त-आर्याः ॥ च॰ अन्-ऋद्धिप्राप्त- =वे (आर्या) दो प्रकार हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनऋद्धिप्राप्त

आर्याः ॥ इति॰ अनृद्धिप्राप्तार्याः ॥ पञ्चविधाः ॥ =आर्या । अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार है ।

क्षेत्र-आर्याः ॥ जाति-आर्याः ॥ कर्म-आर्याः ॥ चारित्रआर्याः ॥ =क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन आर्याः ॥ च॰ इति॰ । ऋद्धि प्राप्त आर्याः ॥ =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्तविधाः ॥ बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात् ॥ =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, हैं (इनके भेद, प्रभेदक वास्तेदेखो प०अप०बप० ३३१स३४०)

म्लेच्छाः ॥ द्विविधाः ॥ अन्तर्द्वीपजाः ॥ कर्मभूमिजाः ॥ च॰ इति =म्लेच्छ (म्लेच्छ, मिश्र) दो प्रकार हैं अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

तत्र॰ अन्तर्द्वीपजाः ॥ लवणोदधेः ॥ =वहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे ॥ अष्टासु ॥ दिक्षु ॥ अष्टौ ॥ =भीतर (=अभ्यन्तर) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत्य, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशामें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तदन्तरेषु ॥ च॰ अष्टौ ॥ हिमवत् शिखरिणोः ॥ =तथा तिन (दिशाओं के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप) और हिमवत् शिखरीपर्वत

॥ प्राङ्मानुपोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुपोत्तरो नामशैल ।तस्मात्प्रागेव मनुष्या न वहिरिति। ततो न वहि पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्याम्।ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवजम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषु द्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या । (अन्यपाठ) प्राग्मानुपोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५॥

सूत्रार्थः—प्राग्-मानुषोत्तरात्॥ मनुष्याः॥ =मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले दश वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरके आधभागमें ऐसे अढ़ाई द्वीपमें मनुष्य हैं

पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश भागी॥ =पुष्करद्वीपके बहुलबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें

वलय-वृत्त॥ मानुषोत्तर॥ नामशैल॥ =वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है

तस्मात्॥ प्राक्॥ एव॥ मनुष्याः॥ न॥ (१)वहिः॥ इति॥ =तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य हैं बाहिर नहीं हैं

तत॥ न॥ वहिः॥ पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभाग॥ अस्ति॥ =तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (वहिः) प्रथमवर्णित क्षेत्रों का विभाग नहीं है।

न॥ अस्मात्॥ उत्तरम्॥ कदाचित्॥ अपि॥ विद्याधराः॥ =न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)

ऋद्धिप्राप्ताः॥ अपि॥ मनुष्याः॥ गच्छन्ति॥ अन्यत्र॥ उपपाद-समुद्घाताभ्याम्॥ =ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोंसे अतिरिक्त, गमन करते हैं (भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढ़ाई द्वीपसे बाहिर जाते हैं विना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नहीं जाते हैं)

तत॥ अस्य॥ अन्वर्थ-सञ्ज्ञा॥ =तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है। इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक

एवम्॥ जम्बूद्वीपादिषु॥ अर्धतृतीयेषु॥ द्वयोः॥ च समुद्रयोः॥ मनुष्याः॥ =अढ़ाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोंमें मनुष्य

(१) दोनों आम्नायोंमें इस प्रकारका पाठ और अर्थ [illegible]

वेदितव्या ॥ ते द्विविधा ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्या । ते द्विविधा । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्या पञ्चविधा । क्षेत्रार्या जात्यार्या कर्मार्याश्चरित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्या सप्तविधा । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधा । अन्तर्द्वीपजा कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्याः। ते। द्विविधाः। =जानना चाहिये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्—'आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥=(मनुष्या) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूभाषा—मनुष्याः। आर्याः। म्लेच्छाः। च=भवन्ति। =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होवे हैं

गुणैः—गुणैः। गुणवद्भिः। वा=अर्यन्ते। इति=आर्याः। =गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवेजाय हैं ऐसे आर्या हैं

ते। द्विविधाः। ऋद्धिप्राप्त-आर्याः। च=अन्-ऋद्धिप्राप्त- =वे (आर्या) दो प्रकार हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनऋद्धिप्राप्त

आर्याः। इति=अनृद्धिप्राप्तार्याः। पञ्चविधाः। =आर्या। अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं।

क्षेत्र-आर्याः। जाति-आर्याः। कर्म आर्याः। चारित्रआर्याः। =क्षेत्र-आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन आर्याः। च=इति। ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः। =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं। ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्त-विधाः। बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात्। =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, हैं (इनके भेद, प्रभेदक वास्तेदेखो प०जय०धव० ३३१से३४०)

म्लेच्छाः। द्वि विधाः। अन्तर्द्वीपजाः। कर्मभूमिजाः। च=इति=म्लेच्छ (म्लेच्छ, म्लिक्ष) दो प्रकार हैं अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

तत्र=अन्तर्द्वीपजाः। लवणोदधेः। =तहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे। अष्टासु। दिक्षु। अष्टौ। =भीतर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत्य, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशायें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तत्-अन्तरेषु। च=अष्टौ। हिमवत्-शिखरिणोः। =तथा तिन (दिशाओं) के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप) और हिमवत् शिखरीपर्वत

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपा षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भा ।

उभयोः=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) च=और विजयार्द्धयोः=दोनों वैताढ्यों के (पूर्व और पश्चिम के) अन्तेषु=अन्तविषैं	अष्टौ=आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौवीस अंतर्द्वीप हैं)
तत्र=तहां दिक्षु=(आठ) दिशाविषैं द्वीपाः=अन्तर्द्वीप वेदिकायाः=(जम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक्=तिर्यक्	पञ्चयोजनशतानि=पांचसो योजन प्रविश्य=(समुद्र में) प्रवेश होते हैं भवन्ति=और च=(च)विदिशा
अन्तरेषु=अन्तराल में (आठ) द्वीपाः=अन्तर्द्वीप पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु=(जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन	गतेषु=परे (समुद्रमें) भवन्ति=हैं । शैल-अन्तेषु=पर्वतों के अन्त में (आठ) द्वीपाः=अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वदीसे)
षट्सु=छसो योजनशतेषु=योजन गतेषु=परे (=गतेषु) (समुद्र में) भवन्ति=हैं । दिक्षु=(आठ) दिशाओंमें	द्वीपाः=अन्तर्द्वीप शतयोजन-विस्ताराः=सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । विदिक्षु=बहुरि (=च) (आठ) विदिशाअंतरालमें
द्वीपाः=अन्तर्द्वीप तत् अर्ध-विष्कम्भा=उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आध अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं	

पूर्व आग्नेय दक्षिण नैऋत्य पश्चिम वायव्य उत्तर ईशान

(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई हैं और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सम्बन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसो योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि संसारमें चारदिशा पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिए पं० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य नैऋत आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषता यह कथन किया है कि "च्यारों दिशानि के (चार) द्वीप तौ जम्बूद्वीप की वेदी तें पांचसौ योजन परैं समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। बहुरि विदिशानि के (चार) द्वीप वेदीनितैं पांचसो पचास योजन परे हैं तिनका विस्तार पचापन पचापन (५५) योजन का है बहुरि [illegible] विदिशानिके अन्तरालके (आठ द्वीप वेदी तैं [illegible] के पचास योजन परै हैं। तिनिका विस्तार [illegible] योजनका है" ।

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा । तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुका । अपरस्यां दिशि लाङ्गूलिन उत्तरस्यां दिश्यभाषकाः । दक्षिणस्यां दिशि विषाणिन । विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

शैल—अन्तपु॥	=(हिमवान्-शिखिरी और दोनों विजयार्द्ध) पर्वतोंके (आठ) छोरोंमें या आठ प्रान्तों में (आठद्वीप)
पञ्चविंशतियोजन-विस्ताराः॥	=पचीस पचीस योजन विष्कम्भ के धारक हैं
तत्र॥ पूर्वस्याम्॥ दिशि॥ एक ऊरुकाः॥	=वहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक हैं अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते हैं
अपरस्याम्॥ दिशि॥ लाङ्गूलिनः॥	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम्॥ दिशि॥ अभाषकाः॥	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ विषाणिनः॥	=दक्षिण दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१)विदिक्षु॥	=(चार) विदिशाओं (ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्य-आग्नेय) में (जो अंतर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण—	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य हैं (शशक-खरहा-ससा एकार्थी हैं)
शष्कुलीकर्ण —	=शाकुली या शाकली कहिये मछली नालीके समान हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के मच्छ सदृश हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य होते हैं
(२)कर्ण प्रावरण—	=कान ही है ओढने और ढकने का दुपट्टा या उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले व मनुष्य जिनके चादरा या उससे और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान वह बिछा सकते हैं दूसरे को ओढ सकते हैं
लम्बकर्णाः॥	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु—इस शब्द को मुद्रणयन्त्र वालों ने तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य अरन सिंहमुखा इत्यादि से मिलाकर 'विदिक्ष्वश्वसिंहमुखा इत्यादि' लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर ।विदिक्षु। ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से संबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें हैं उनसे सम्बन्ध रखता है इसने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य नैर्ऋत्य आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) 'कर्ण प्रावरण' के स्थान में प्रावरण ऐसा सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें कर्ण-प्रावरण निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक तथा पं०पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ। तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति। विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति। शैलान्तेषु द्वीपा पट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति। दिक्षु द्वीपा शतयोजनविस्तारा। विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धनिष्कम्भा।

उभयोः पश्चिमयार्द्धयोः अन्तेषु अष्टौ	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनोंवैताढ्यों के(पूर्व और पश्चिम के)अन्तविषैं =आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौबीस अतर्द्वीपहैं)
तत्र दिक्षु द्वीपाः वेदिकायाः तिर्यक् पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति विदिक्षु च अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति	=वहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक् =पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च)विदिशा =अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन =परे (समुद्रमें) हैं।
शैल-अन्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति	पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वदीसे) =छहसो योजन परे (=गतेषु) (समुद्र में) हैं।
दिक्षु द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः	(आठ) दिशाओंमें =अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं।
विदिक्षु अन्तरेषु च द्वीपाः तद् अर्ध-निष्कम्भाः	बहुरि (=च)(आठ)विदिशाअंतरालमें =अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आध अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं

पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान

(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई हैं और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सम्बन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसो योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि संसारमें चारदिशा पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिये पं० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धि की वचनिकामें पूर्व उत्तर, पश्चिम दक्षिण चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषतः यह कथन किया है कि "तहां दिशानि के (चार) द्वीप तो जम्बूद्वीप की वेदी तैं पांचसौ योजन परैं समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। बहुरि विदिशानि मैं (चार) द्वीप वेदीतैं पांचसो पचास योजन परे हैं तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके (आठ द्वीप वेदी तैं पांच से पचास योजन परे हैं। तिनिका विस्तार पचास पचास योजनका है" ॥

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा । तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुका । अपरस्यां दिशि लांगूलिन उत्तरस्यां दिश्यभाषका । दक्षिणस्यां दिशि विषाणिन । विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णा

शैल—अन्तेषु॥	=(हिमवान्-शिखरी और दो विजयार्द्ध)पर्वतोंके(आठ)छोरों में वा आठ प्रान्तों में(आठद्वीप)
पञ्चविंशतियोजन-विस्तारा॥	=पचीस पचीस योजन विष्कम्भ के धारक हैं
तत्र॥पूर्वस्याम्॥दिशि॥एक ऊरुका॥	=वहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक हैं अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते हैं
अपरस्याम्॥दिशि॥लांगूलिन॥	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम्॥दिशि॥अभाषका॥	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणस्याम्॥दिशि॥विषाणिन॥	=दक्षिण दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१)विदिक्षु ॥	=(चार) विदिशाओं (ईशान-वायव्य-नैऋत्य-आग्नेय) में (जो अन्तर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण—	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य हैं (शशक-खरहा-ससा एकार्थी हैं)
शष्कुलीकर्ण —	=शष्कुल वा शष्कुली कहिये पक्षी नालीके समानहैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के मच्छ सदृश हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य होते हैं
(२)कर्ण प्रावरण—	=कान ही है ओढने और ढकने का दुपट्टा वा उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले व मनुष्य जिनके चादरा वा वसन और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान पर बिछा सकते हैं दूसरे को ओढ सकते हैं
लम्बकर्णा ॥	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु —इस शब्द को मुद्रणपत्र वालों न तथा लेखकोंने प्रमादवशासे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें ऊपर वाक्य प्रारम्भ सिद्दत्यमधि इत्यादि में मिलाकर "विदिक्षुशशकर्णशष्कुलमधि इत्यादि" लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर "।विदिक्षु। ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से संबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें हैं उनसे सम्बन्ध रखता है इसमें इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट हो जाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य नैऋत्य आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) कर्ण प्रावरण के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि इसमें हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्ण-प्रावरण' निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक, तथा पं॰ पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपा षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भा ।

रुभयोः च विजयार्द्धयोः अन्तेषु अष्टौ	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के (पूर्व और पश्चिम के) अन्तनिषैं =आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौबीस अन्तर्द्वीप हैं)
तत्र दिक्षु द्वीपाः वेदिकायाः तिर्यक्	=वहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति विदिक्षु च	=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च) विदिशा
अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु	=अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसौ पचास योजन
गतेषु भवन्ति । शैल-अन्तेषु द्वीपाः	=परे (समुद्रमें) हैं । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वदीसे)
षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु	=छहसौ योजन परे (=गतेषु) (समुद्र में) हैं । (आठ) दिशाओंमें
द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः विदिक्षु अन्तरेषु च	=अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । बहुरि (=च) (आठ) विदिशा अंतरालमें
द्वीपाः तद्-अर्ध-विष्कम्भाः	=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आध अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं

(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई है और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सम्बन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे है सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि संसारमें चारदिशा पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय प्रसिद्ध है इसलिये पं० जयचन्द्रजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य नैऋत आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषता यह कथन किया है कि "चारों दिशानि के (चार) द्वीप तौ जम्बूद्वीप की वेदी तें पांचसौ योजन परें समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। बहुरि विदिशानि के (चार) द्वीप वेदीतिसैं पांचसौ योजन परे हैं तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके (आठ) द्वीप वेदी सैं पांच सै पचास योजन परें हैं। तिनिका विस्तार पचास पचास योजनका है"

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा । तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुका । अपरस्यां दिशि लांगूलिन उत्तरस्यां दिश्यभाषका । दक्षिणस्यां दिशि विषाणिन । विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

शैल—अन्तेषु = (हिमवान् शिखरी और दोनों विजयार्द्ध) पर्वतोंके (आठ) छोरों में या आठ प्रान्तों में (आठद्वीप)
पञ्चविंशतियोजन विस्ताराः = पचीस पचीस योजन विष्कम्भ के धारक हैं
तत्र पूर्वस्याम् दिशि एक उरुकाः = वहाँ पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक हैं अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते हैं
अपरस्याम् दिशि लांगूलिनः = पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम् दिशि अभाषकाः = उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणस्याम् दिशि विषाणिनः = दक्षिण दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१)विदिक्षु ॥ = (चार) विदिशाओं (ईशान–वायव्य–नैर्ऋत्य आग्नेय) में (जो अन्तर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण— = खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य हैं (शशक-खरहा-ससा एकार्थी हैं)
शष्कुलीकर्ण — = शाकुल या शाकली कहिये पापड़ी नाली के समान हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के पक्ष सदृश हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य होते हैं
(२)कर्ण प्रावरण— = कान ही है ओढ़ने और ढकने का दुपट्टा या उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले व मनुष्य जिनके चादरा या उससे और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान पर बिछा सकते हैं दूसरे को ओढ़ सकते हैं
लम्बकर्णाः = (भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु —इस शब्द को मुद्रायण वालों न तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य "शश लिङ्गमधिश इत्यादि में मिलाकर 'विदिक्षशशलिङ्गमधिश इत्यादि' लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर ।विदिक्षु। ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से संबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें हैं उनसे सम्बन्ध रखता है हमने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य नैऋत्य आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) कर्ण-प्रावरण के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्णप्रावरण' मिला। दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक तथा पं० ... कर अनुवादित राजवार्तिक

रुमयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपा षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भा ।

रुमयोः च विजयार्द्धयोः अन्तेषु अष्टौ ।
तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकाया तिर्यक् पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्षु च अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैल-अन्तेषु द्वीपा षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः विदिक्षु अन्तरेषु च द्वीपा तद् अर्ध-विष्कम्भाः ।

=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के (पूर्व और पश्चिम के) अन्तविषैं
=आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौबीस अंतर्द्वीप हैं)
=तहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च) विदिशा
=अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसौ पचास योजन
=परे (समुद्रमें) हैं । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वेदीसे)
=छहसौ योजन परे (=गतेषु) (समुद्र में) हैं । (आठ) दिशाओंमें
=अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । बहुरि (=च) (आठ) विदिशा अंतरालमें
=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आध अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं

पूर्व आग्नेय दक्षिण नैऋत्य पश्चिम वायव्य उत्तर ईशान

(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई हैं और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके सम्बन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि संसारमें चारदिशा पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेय प्रसिद्ध है इसलिये पं० जयचन्द्रजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व उत्तर, पश्चिम दक्षिण चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य नैऋत्य आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषता यह कथन किया है कि 'तहां दिशानि के (चार) द्वीप तो जम्बूद्वीप की वेदी तें पांचसौ योजन परें समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है । बहुरि विदिशानि में (चार) द्वीप वेदीतैं पांचसौ पचास योजन परे हैं तिनका विस्तार पचापन पचापन (५५) योजन का है बहुरि तिन विदिशानिके अन्तरालके (आठ) द्वीप वेदी तैं पांच सै पचास योजन परें हैं । तिनिका विस्तार पचास पचासयोजनका है

मत्स्यमुखकालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा आदर्शमुखा उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयो । गोमुखमेषमुखा दक्षिणादिविजयार्धस्योभयोरन्तयो । एकोरुका मृदाहारा गुहावासिन शेषा पुष्पफलाहारा वृक्षवासिन सर्वे ते पल्योपमायुष ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधा ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्या ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या ॥

मत्स्य मुखाः॥काल-मुखा ॥ (१)	=मच्छ या मछलीके समान मुखवाले और काले या कालनील (=काक) मुखवाले
हिमवतः॥उभयोः॥अन्तयोः॥	=हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) हैं
हस्ति-मुखा॥आदर्श-मुखा॥	=हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पण समान मुखवाले (मनुष्य)
उत्तरविजयार्द्धस्य॥ उभयोः॥अन्तयो ॥	=उत्तर वैताढ्य पर्वतके दोनों (पूर्व पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
गो-मुखाः॥मेष-मुखा ॥	=गो सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेढा या भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)
दक्षिणदिविजयार्धस्य॥उभयोः॥अन्तयोः॥	=दक्षिण दिशाके वैताढ्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
एक-(२)ऊरुकाः॥मृद आहाराः॥गुह आवासिनः॥	=एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफाओंमें रहनेवाले हैं
शेषाः॥पुष्प-फल आहाराः॥वृक्ष-वासिनः॥	=अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फूल फलके आहारी हैं पेड़ोंके वासी हैं
सर्वे॥ते॥पल्योपम-आयुषः॥ । ते चतुर्विंशतिः॥	=ये समस्त पल्य प्रमाण आयुके या स्थितिके धारक हैं । ये चौबीसों
अपि॥द्वीपाः॥जल-तलात्॥एक-योजन उत्सेधाः॥	=ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं या जोजनके उचाई वाले हैं
लवण उदधेः॥बाह्य-पार्श्वे॥अपि॥एवम्॥	=लवण समुद्रके बाहिरी भाग या बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्वे) भी ऐसे
चतुर्विंशतिः॥द्वीपाः॥विज्ञातव्याः॥	=चौबीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिए अर्थात् चौबीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें हैं वे और चौबीस ये बाहिरी परिधिके सब ४८ भये ॥
तथा॥कालोदे॥अपि॥वेदितव्या ॥	=वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके हैं) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौबीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौबीस ही

(१) काल = काला कालानीलाभिधिन (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ जैनमहाशयका भाषापृष्ठ १८४) ॥ (२) ऊरु = जांघ, ऊरुक = जांघवाला जांघधारक

अन्तरेषु अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखा ॥ मेघविद्युन्मुखा शिखरिण उभयोरन्तयो

([१]अन्तरेषु।७।३।(विदिक्षु))	पूर्व उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चार दिशाओं तथा ईशान-वायव्य-नैऋत्य आग्नेय चार विदिशाओंके =अंतरालोंमें-अन्तर्दिशाओंमें अर्थात् चारदिशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(आठ)दिशाओंमें जो अंतर्द्वीप हैं उनमें रहनेवाले मनुष्य
अश्व-मुखा।१।३।सिंह-मुखा।१।३।श्व-मुखा।१।३।	=घोड़ा के सदृश मुखवाले, सिंह सरीखे मुखवाले, कुत्ता सम मुखवाले,
महिष-मुखा।१।३।वराह-मुखा।१।३।व्याघ्र-मुखा।१।३।	=भैंसा समान मुखवाले, सूकर सम मुखधारक, बघेराके सदृश मुखधारक
([२]काक-मुखा।१।३।कपि-मुखा।१।३। ॥	=काक समान मुखवाले वा कउआ सदृश मुखके धारक, बंदरके समान मुखवाले, होवे हैं॥
मेघ-मुखा।१।३।विद्यु-मुखा।१।३।शिखरिणः।६।१।	=मेघ मुखवाले और बिजलीके सदृश मुखवाले (मनुष्य) शिखरी पर्वतके
उभयोः।७।२।अन्तयोः।७।२।	=दोनों (पूर्व-पश्चिमके) अंतोंमें-छोरोंमें (दो अंतर्द्वीपों में बसने वाले) हैं

तथा दो हस्त लिखित ग्रन्थ प्रतिये जो हमको [illegible] मन्दिरोंसे प्राप्त हुई हैं उनमें ही 'कर्मभावरण' पाठ है। इसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है कि 'म्लेच्छ [illegible] इत्यादि से सर्वे ते पल्योपमायुषः पर्यन्त सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और राजवार्तिकका लेख समान एकही है॥ तीसरे यह कि 'आवरण' का अर्थ [illegible] है केवल'आवरण'का बिना कर्म शब्द लाये हुये कुछभी अर्थ नहीं होसकता है अत पाठ शुद्ध करके लिखा है॥

(१) अन्तरेषु शब्द के सम्बन्ध में हमारी वही टिप्पणी है जो हमने पृष्ठ ७७ में विदिक्षु शब्द के सम्बन्ध में दी है।

(२) काक' शब्दके पश्चात 'घूक' शब्द जो हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि वृत्तियोंसे मिलाया गया उनमें किसीमें नहीं है। 'घूक' का अर्थ घुग्घू या उल्लू है। पं० जयचन्द्रजीने 'श्वान के सदृश मुखवाले' वा श्वानमुखा अपनी वचनिकामें नहीं लिखा है परन्तु 'उलूकमुखा' काक मुखा लिखा है सम्भव है कि जिस प्रतिसे उनने वचनिका की हो उसमें "श्वमुखा" नहो और'काकघूकमुखा हो जैसा कि सर्वार्थ सिद्धि की दोनों मुद्रित आवृत्तियों से प्रगट है॥ राजवार्तिककी मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकारकी प्रतियों में "अश्व सिंह श्व महिष-वराह-व्याघ्र-उलूक कपिमुखा" ऐसा पाठ है अर्थात् "काकघूकमुखा" के स्थान में 'उलूकमुखा' शब्द है यदि हम यह मानलें कि मुद्रपाठ वाली सर्वार्थसिद्धिमें 'घूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुखा' के स्थान में'उलूक मुखा' रहजाता है॥ हमने एक बहुत प्राचीन हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिसे उपर का पाठ शुद्धकर लिया है उसमें 'घूक' शब्द नहीं है अतः घूक शब्द छोड़दिया है हमारे विचारसे [illegible] आठ अन्तर्दिशाओंमें भी [illegible] मुखवाले नहीं होसक्तेहैं। घूक दोनों पाठक [illegible] सूचित करें॥

मत्स्यमुखकालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा आदर्शमुखा उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयो । गोमुखमेषमुखा दक्षिणदिग्विजयार्धस्योभयोरन्तयो । एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः शेषा पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः ॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधा ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्या ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या ॥

मत्स्य-मुखा॰ काल-मुखा॰ (१) =मच्छ या मच्छलीके समान मुखवाले और काले या कालनील (=काल) मुखवाले
हिमवत॰ उभयो॰ अन्तयो॰ =हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) हैं
हस्ति-मुखा॰ आदर्श-मुखा॰ =हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पण समान मुखवाले (मनुष्य)
उत्तरविजयार्द्धस्य॰ उभयो॰ अन्तयो॰ =उत्तर वैताढ्य पर्वतके दोनों (पूर्व पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
गो-मुखा॰ मेष मुखा॰ =गो सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेढा या भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)
दक्षिणदिग्विजयार्धस्य॰ उभयो॰ अन्तयो॰ =दक्षिण दिशाके वैताढ्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
एक-(२)ऊरुका॰ मृद आहारा॰ गुह आवासिन॰ =एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफाओंमें रहनेवाले हैं
शेषा॰ पुष्प-फल आहारा॰ वृक्ष-वासिन॰ =अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फूल फलके आहारी हैं पेड़ोंके वासी हैं
सर्वे॰ ते॰ पल्योपम-आयुषः॰ । ते चतुर्विंशतिः॰ =वे समस्त पल्य प्रमाण आयुके या स्थितिके धारक हैं । वे चौबीसों
अपि॰द्वीपा॰ जल-तलात्॰ एक-योजन उत्सेधा॰ =ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊँचे हैं या योजनके उचाई वाले हैं
लवण उदधेः॰ बाह्य-पार्श्वे॰ अपि॰एवम्॰ =लवण समुद्रके बाहिरी पक्ष या बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्वे) भी ऐसे
चतुर्विंशतिः॰ द्वीपा॰ विज्ञातव्या॰ =चौबीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौबीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें हैं वे और चौबीस ये बाहिरी परिधिके सब ४८ भये ॥
तथा॰ कालोदे॰ अपि॰ वेदितव्या॰ =वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके हैं) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौबीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौबीस ही

(१) काल = काला कालानीलाभिधित (एको पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०९ जैनमहाशब्दका कोशपृष्ठ १८५) ॥ (२) ऊरु = जांघ, ऊरुक = जांघवाला जांघधारक

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी एस सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीप हुये । अब लवणोदधि औरकालोदधिके सब छ्यानवे अन्तर्द्वीप हुये॥

(१) हमारे यहां आचार्योंमें पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें छियानवे (अड़तालीस-लवणोदधि-सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप हैं राजवार्तिकके रचयिता श्रीमद्भट्ट अकलङ्कदेवके मतमें अड़तालीस (चौबीस लवणोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी)ऐसे केवल अड़तालीस अन्तर्द्वीप हैं । "अयधरराय जी ने अड़तालीसका उल्लेख किया है । पं० सदासुखजीने पं० गोपालदासजी ...रि ने छियानवे का ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में हिमवान् पर्वतके सम्बन्धी छप्पन अंतर्द्वीप माने हैं और 'इसी प्रकार (अन्तर्द्वीप शिखरी) पर्वत सम्बन्धी भी माने हैं ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो ॥

ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधा ॥ लवणोदधावुभयपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्याः ॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ २७७ और द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १२१ ॥ इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७६ ॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है ॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वितीय पक्षेऽपि उभयोस्तटयोश्चत्वारिंशद्द्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधा ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या" =ये चौबीस अन्तर्द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं । कालोदधिकेभी इतनेही जानना चाहिये । बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी (लवणोदधिके,दोनों भीतरी

"लवणोदस्य लवणोदस्योभयोरष्टचत्वारिंशत् तथा कालोदस्य इति पक्षान्तरे =यहां प्रथम कहे हुये तो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तर्द्वीप) हैं । और कालोदधिके इसप्रकार छियानवे हैं ॥ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३५७ ॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तर्द्वीप अड़तालीस हैं दोऊ तट सम्बन्धी, तैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियानवें अन्तर्द्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं ॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ २०८ ॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तर्द्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है । वहां मनुष्यही रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है ॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ १३४ ॥ ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः जलतलादेकयोजनोत्सेधा तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः ॥ मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५ ॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है =''बहुरि ये चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलके तलमें एक एक योजन ऊंचे हैं ॥ जैसे लवणोदधिके विषैं अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसही कालोदधिके विषैंभी जानना ॥ पं० पन्नालाल दूनीवाल भाषा पृष्ठ ==६ ॥

"बहुरि ए चौबीसही द्वीपजलके तलतैं एकएक योजन ऊंचेहैं । ऐसेही कालोद समुद्र विषैं जानना" पं०जयचन्द्रजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५१ हिमवान् पर्वत सम्बन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप समाप्त० (पृष्ठ ८६, ८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि "इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ८७ ॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसी ही है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०की चरणटिप्पणी– "यह अन्तरद्वीपका भाष्य माना गया है ... मुद्रितग्रन्थ ... अन्तरद्वीप भाष्यमें लिखतैंहैं किन्तु यह बनावें है क्योंकि आगे जीवाभिगमादि ५६की मिलता है । भाष्य ... पाठ ठीक नहीं है क्योंकि ... नहीं होना । इसलिये टीकाकार [illegible] भाष्यमें नह लिया है" ॥

त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छा कर्मभूमिजाश्चशकयवनशवरपुलिन्दादय ॥ का पुन कर्मभूमय इत्यत आह—

॥ भरतैरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

ते॥एते॥अन्तर्द्वीपजाः॥म्लेच्छाः॥कर्म भूमिजाः॥च❀	=ये इतने अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्नहुये म्लेच्छ हैं। और (=च) कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये
शक-यवन शबर पुलिन्द आदयः॥पुनः❀कर्म-	=शक-यवन शबर-पुलिन्द आदि (म्लेच्छ) हैं। (प्रश्न) पुनि कर्म
भूमयः॥काः॥इति❀अत❀आह।	=भूमियें क्या हैं। ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
(1)सूत्रम्—	=भरतैरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य (2)।
	=भरतैरावत विदेहा (पञ्च, पञ्च, पञ्च, एता) कर्मभूमय·
	भवन्ति,अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्य ,(पञ्च)उत्तरकुरुभ्य ।३७।
सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी)पांच देवकुरु(3) (जहां उत्तम भोग भूमि प्रवर्तती है और)
पञ्चउत्तरकुरुभ्यः॥अन्यत्र❀	=(पांचमेरु सम्बन्धी पांच उत्तर कुरु(3) (जहांभी उत्तम भोग भूमि वर्ते है)कोछोड़कर
पञ्च॥भरताः॥पञ्च॥ऐरावताः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेरु सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र
पञ्च॥विदेहाः॥	=(पांच मेरु सम्बन्धी सामान्यरूपसे) पांच (महा(4)) विदेह क्षेत्र
	(विशेषतासे प्रत्येक मेरुसम्बन्धी बत्तीस बत्तीस विदेह ऐसे एकसौ साठ विदेह)
एताः॥कर्मभूमयः॥भवन्ति॥	=ये कर्म भूमियें(5) हैं ॥ (इसकी विशेष टिप्पणी संख्या चारमें नीचे देखो)

(1) सभी सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (2) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुक्षेत्र ऐसे दश क्षेत्र हुये इसलिये सूत्रमें "देवकुरूत्तरकुरुभ्य पञ्चमी बहुवचन आये हैं यदि एक एक क्षेत्र होता तो पञ्चमी द्विवचन 'देवकुरूत्तरकुरुभ्याम्' ऐसा वाक्य आता।

(3) पांच मेरुसम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक क्षेत्र ये दश मध्यम भोगभूमियें और पांच मेरुसम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोगभूमियें अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवण समुद्र सम्बंधी और अड़तालीस कालोदधि सम्बंधी ये छियानवे जघन्य भोगभूमियें हुईं इस प्रकार देवकुरु उत्तरकुरु दश उत्कृष्ट दश मध्यम और दश जघन्य भोग भूमियें सर्व मिलकर एकसो छब्बीस हुईं

(4) पांच विदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहे हैं वास्तविक में पांच विदेह विशेषरूपसे एकसो साठ हैं। और प्रत्येक विदेहमें पांच म्लेच्छ खंड हैं और एक आर्य खण्ड है। और पांच मेरुसम्बन्धी पांच भरतक्षेत्र हैं। और पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं। और प्रत्येक भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमें पांच पांच म्लेच्छ खंड हैं और एक एक आर्य खंड हैं। इस प्रकार विदेह और भरत और ऐरावत समस्त क्षेत्रों में १७० आर्य खण्ड हैं। और ८५० म्लेच्छ खण्ड हैं विशेषरूपसे १७० कर्मभूमियें हैं। सामान्यरूप से १५ हैं अर्थात् १६० विदेहों का पांच महाविदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहते हैं ॥

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी ऐसे सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीप हुये। अतः लवणोदधि औरकालोदधिके सब छयानवे अन्तर्द्वीप हुये॥

(१) हमारे यहां आचार्योंमें पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें छियानवे (अड़तालीस-लवणोदधि-सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप हैं राजवार्तिकके रचयिता श्रीमद्भट्ट अकलङ्कदेवके मतमें अड़तालीस (चौबीस लवणोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी)ऐसे केवल अड़तालीस अन्तर्द्वीप हैं। "अयवरराय भी ने अड़तालीसका उल्लेख किया है। पं० सदासुखजीने पं० गोपालदासजी इत्यादि ने छियानवे का॥ श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में हिमवान् पर्वतके सम्बन्धी छप्पन अंतर्द्वीप माने हैं और "इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी माने हैं॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो॥

"ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः अन्तरबाह्येक योजनोत्सेधा॥ लवणाम्बुधावभ्यन्तरेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्याः॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १४७ और द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १३१॥ इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७१॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वितीय पक्षेपि उभयोस्तटयोश्चत्वारिंशद्वीपा अन्तरबाह्येक योजनो त्सेधा॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्या। =वे चौबीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी (लवणोदधिके,दोनों भीतरी बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप जलसे तलसे एक योजन ऊंचे हैं। कालोदधिकेभी इसीही जानना चाहिये।

"लवणाम्भस्तावच्चतुर्विंशत्योभयोस्तटयोरष्टचत्वारिंशत् तथा कालाब्धस्य इति पद्मवति =वहां प्रथम कहे हुये तो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तर्द्वीप) हैं। और कालोदधिके इसप्रकार छियानवे हैं॥ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५७॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तर्द्वीप अड़तालीस हैं इस तट सम्बन्धी वैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियानवें अन्तरद्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ १०८॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तद्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। वहां मनुष्योंकी रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ ११४॥ ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः अन्तरबाह्येकयोजनोत्सेधा तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः॥ मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है =चतुर्दिश वे चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलते तलतें एक एक योजन ऊंचे हैं॥ जैसे लवणोदधिके विर्षें अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसेही कालोदधिके विर्षेंभी जानना' ॥ पं० पन्नालाल दूनीवाला भाषा पृष्ठ ८८६॥

"चतुर्दिश ए चौबीसही द्वीपजलके तलतें एकएक योजन ऊंचेहैं। वैसेही कालोद समुद्र विर्षें जानना पं०जयचन्द्रजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ१५१ हिमवान् पर्वत संबन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप सभाष्य० (पृष्ठ ८६-८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि "इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पृष्ठ ८७॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसी दी है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य-की चरणटिप्पणी— "यह अन्तरद्वीपका भाष्य मात्र नव दीखता है यहाँ सूत्रिकृत्य बनानेमें अन्तरद्वीप आत्मके सिवायही भिन्न नव बनाये हैं क्योंकि आगे श्रीवमानादि ५५वीं मिलता है। बाकन बदलनेमें नव भेद नहीं हैं क्योंकि सूत्रका स्थान नहीं दीखता। इसलिये दयलिखतान आत्मनी नव लिया है"

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञायते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरकप्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मण

तत: एवम् प्रकर्ष = वहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एव) उत्कर्ष

गतिः विज्ञायते [1]प्रकर्षेण यत् कर्मणः = दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका

अधिष्ठानम् इति = आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन लोकही हैं तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तो तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)

तत्र अशुभ-कर्मणः तावत् सप्तम-नरक = वहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्)

प्रापणस्य भरतादिषु एव अर्जनम् = पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।

शुभस्य सर्वार्थसिद्धि-स्थान-विशेष-प्रापणस्य = (और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके

पुण्य-कर्मणः उपार्जनम् तत्र एव = पुण्यकर्मका उपार्जन है। वहां (कर्मभूमियोंमें) ही

[2]कृषि-आदि-लक्षणस्य षड्-विधस्य कर्मणः = खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'प्रकर्षेण' शब्दका पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ७५९ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानिस्यु प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपि विधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने ॥ वाणिज्यं वणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम् ॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एता कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्दे-वकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थं । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथं कर्मभूमित्वं ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्वं लोकत्रितय कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

---

शृपनुवादः–भरत ऐरावत-विदेहाः॥ पञ्च॥	=भरत, ऐरावत और विदेहक्षम पांच,
पञ्च॥ एताः॥ कर्मभूमयः॥ इति व्यपदिश्यन्ते॥	=पांच हैं। इतनी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं।
तत्र विदेह-ग्रहणात्॥ देवकुरु-उत्तरकुरु	=तहां(सूत्रमें)विदेहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके(जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमें हैं)
ग्रहणे॥ प्रसक्ते॥ तत्-प्रतिषेध-	=आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस(ग्रहण) के निराकरणके
अर्थम्॥ आह॥ अन्यत्र देवकुरु-उत्तरकुरुभ्य॥ इति	=लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)
अन्यत्र शब्दः॥ वर्जन-अर्थः॥ देवकुरवः॥	=(सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ॥ देवकुरुयें,
उत्तरकुरवः॥ हैमवतः॥ हरिवर्षः॥ रम्यकः॥ हैरण्यवतः॥	=उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और
अन्तर्द्वीपाः॥ भोगभूमयः॥ इति व्यपदिश्यन्ते॥	=अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ॥ भावार्थ यह है कि पांच विदेह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छयानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हैं। तिन सबको सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें भोगभूमियें कही हैं ॥
अथ कथं कर्म भूमित्वं॥ ?	=आगे (=अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे है ॥
शुभ-अशुभ-लक्षणस्य॥ कर्मणः॥ अधिष्ठानत्वात्॥	=(उत्तर)शुभ और अशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे(पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपना है)
ननु सर्वम्॥ लोक-त्रितयम्॥ कर्मणः॥ अधिष्ठानम्॥ एव	=शंका (=ननु) सबहीसों (=त्रितय) लोक (तथा) कर्मके आधारही हैं ॥

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरक-प्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जन, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मण

ततः एवम् प्रकर्ष	=यहां (कर्मभूमियें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष
गतिः विज्ञास्यते [1] प्रकर्षेण यत् कर्मणः	=दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका
अधिष्ठानम् इति	=आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन लोकही हैं तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तो तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)
तत्र अशुभ-कर्मणः तावत् सप्तम-नरक	=वहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्)
प्रापणस्य भरतादिषु एव अर्जनम्	=पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।
शुभस्य सर्वार्थसिद्धि-स्थान विशेष प्रापणस्य	=(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि(आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके
पुन्य-कर्मणः उपार्जनम् तत्र एव	=पुण्यकर्मका उपार्जन है। यहां (कर्मभूमियोंमें) ही
[2] कृषि आदि-लक्षणस्य षट्-विधस्य कर्मणः	=खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुंलिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'प्रकर्षेण' शब्दका पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्य कोश पृष्ठ ५९५ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षडिमानि स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) असिकर्म सेवायां मषिर्लिपि विधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने ॥ २ ॥ वाणिज्यं वणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम् ॥ ३ ॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एता कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्दे-वकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थ । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथ कर्मभूमित्व ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्व लोक-त्रितय कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

पृथ्वनुवाद—भरत ऐरावत-विदेहाः=च=पञ्च	=भरत, ऐरावत और विदहक्षेत्र पांच,
पञ्च=एताः=कर्मभूमयः=इति=व्यपदिश्यन्ते	=पांच हैं। इनकी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं।
तत्र=विदेह-ग्रहणात्=देवकुरु-उत्तरकुरु	=वहां(सूत्रमें)विदहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके(जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमेंहैं)
ग्रहणे=प्रसक्ते=तत्-प्रतिषेध	=आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस(ग्रहण) के निराकरणके
अर्थम्=आह=अन्यत्र=देवकुरु-उत्तरकुरुभ्यः=इति	=लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)
अन्यत्र=शब्दः=वर्जन-अर्थः=देवकुरव	=(सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ॥ देवकुरुयें,
उत्तरकुरवः=हैमवत=हरिवर्ष=रम्यक=हैरण्यवत	=उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और
अन्तर्द्वीपाः=भोगभूमयः=इति=व्यपदिश्यन्ते	=अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ॥ भावार्थ यह है कि

पांच विदह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छयानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हैं। तिन सबको सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें भोगभूमियें कही हैं ॥

अथ=कथं=कर्म भूमित्वं ?	=आगे (अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे हैं ॥
शुभ-अशुभ-लक्षणस्य=कर्मणः=अधिष्ठानत्वात्	=(उत्तर)शुभ और अशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे(पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपनाहै)
ननु=सर्वं=लोक-त्रितयं=कर्मणः=अधिष्ठानम्=एव	=यहां शंका (ननु) सबतीनों (त्रितय) लोक (सर्व) कर्मके आधारही हैं ॥

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरकप्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिद्ध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मण

तत ◌एवम्◌प्रकर्ष गतिः॥ विज्ञायते 'प्रकर्षेण◌यत् ॥ कर्मण ॥ अधिष्ठानम्॥ इति◌

=यहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष =त्रया (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका =आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन लोकही हैं तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तो तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकारि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)

तत्र◌अशुभ कर्मणः॥ तावत्◌सप्तम-नरक प्रापणस्य॥ भरतादिषु॥ एव◌अर्जनम्॥ शुभस्य॥ सर्वार्थसिद्धि-स्थान विशेष प्रापणस्य॥ पुन्य-कर्मणः॥ उपार्जनम्॥ तत्र◌एव◌ कृषि-आदि-लक्षणस्य॥ षड् विधस्य॥ कर्मणः॥

=यहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्) =पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है। =(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि (आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके =पुण्यकर्मका उपार्जन है। यहां (कर्मभूमियोंमें) ही =खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। अब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'प्रकर्ष' शब्दका पञ्चकोशमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ५५१ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षडविधानिस्यु प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) असासिकर्म सपार्यां मषिर्लिपि लिपी स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥ वाणिज्यं वणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम् ॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्य ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान आदि-सहितस्य॥ तत्र-एव॥ आरम्भात्॥ कर्म भूमि-व्यपदेशः॥ वेदितव्य॥ इतरासु॥	=प्रशस्त दानादिक (शुभकर्मों) सहित वहांही प्रारम्भ होने (के निमित्त) से =(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये । अन्य वा दूसरों (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छपानवें कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम,मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्॥ भोगभूमयः॥ इति॥ व्यपदिश्यन्ते॥	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु॥ भूमिषु॥ स्थिति-परिच्छेद अर्थम्॥ आह॥	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके(=परिच्छेद) लिय कहते हैं कि

असि॥ मषि॥ कृषि॥ विद्या॥ वाणिज्य॥ शिल्प॥ इति॥ षट्॥	=असि मषि खेती, विद्या वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि॥ षड्विधानि॥ स्युः॥ प्रजा-जीवनहेतवः॥ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥
तत्र असि कर्म॥ सेवायाम्॥ मषि॥ लिपि-विधौ॥	=वहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषै (और) मषी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृता॥ । कृषि॥	=स्मरण किया जाता है । (खेती)कृषि
भू कर्षणे॥ प्रोक्ता॥ विद्या॥ शास्त्र उपजीवने॥ ॥२॥	=भूमिके जोतनमें निरूपितहै (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी आजीवनमें वा धंधेमें है
वाणिज्य॥ वणिजां॥ कर्म॥ शिल्प॥ स्यात्॥ कर	=वाणिज्यकर्म बनियों अथवा व्यापारियों का काम है । शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम्॥	=निपुणता चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममें चतुराई है
तत्॥ च॥ चित्र	=और (=च) वह (शिल्पकर्म) चित्र निर्माण अर्थात् बहुतसी मूर्तियोंकानाना(चित्र)
कला-पत्र	=चौसठ प्रकारका नाना बजाना आदि (=कला,पत्र अथवा कागदका
च्छेद आदि॥ बहुधा॥ स्मृतम्॥	=छेदना काटना बनाना इत्यादि बहुप्रकार,की निपुणता) स्मरण कीजाती है(१)

(१) देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः । दान चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा॥ गुरू-उपास्ति॥ स्वाध्याय॥ संयमः॥ तपः॥	=देवकी पूजा गुरुकी उपासना अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रकाअध्ययन संयम तप
दानम्॥ च॥ इति॥ गृहस्थानाम्॥ षट् कर्माणि॥ दिने॥ दिने॥	=और दान इस प्रकार गृहस्थीके षट् कर्म प्रतिदिन दिनमें(दिनेदिने) होते हैं ।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्ता॥ यथासंख्येन सम्बन्ध ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे(१)त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ-नृ-स्थिती॥परा-अपरे॥त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते॥ यथासंख्यम्॥ =मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त =अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद हैं।

वृत्त्यनुवादः—त्रीणि॥पल्योपमानि॥यस्याः॥सा॥ त्रि-पल्योपमा॥अन्तर्गतः॥मुहूर्तः॥यस्याः॥ =तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो =त्रिपल्योपमा है। भीतर या अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त या दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी

सा॥अन्तर्मुहूर्ता॥यथासंख्येन॥ =सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)

सम्बन्धः॥ =सम्बन्ध है (अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है और अपराके साथ अन्तर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)

मनुष्याणाम्॥परा॥उत्कृष्टा॥स्थितिः॥त्रि-पल्योपमा॥ =मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है॥
अपरा॥जघन्या॥अन्तर्मुहूर्ता॥मध्ये॥अनेक-विकल्पा॥ =सबसे थोड़ी (आयुवा) जघन्य (आयु) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं
तत्र॥पल्यम्॥त्रिविधम्॥व्यवहारपल्यम्॥ =तहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्॥अद्धापल्यम्॥इति॥ =उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे, परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब पाठ्य ठीक हैं॥ कोई भी पाठ नृस्थिती पाठ्य के पश्चात् लिया जासका है॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्य ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान-आदि-सहितस्य॥ तत्र-एव-आरम्भात्॥	=प्रशस्त दानादिक (सत्कर्मों) सहित यहांही आरम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म भूमि-व्यपदेश वेदितव्य इतरासु॥	=(तिन क्षेत्रोंको) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरों (शेष अर्थात् उपर्युक्त छयानवें कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम, मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्॥ भोगभूमयः॥ इति॥ व्यपदिश्यन्ते॥	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु॥ भूमिषु॥ स्थिति-परिच्छेद अर्थम्॥ आह॥	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके (=परिच्छेद) लिये कहते हैं कि

असि॥ मसि॥ कृषि॥ विद्या॥ वाणिज्यं॥ शिल्पं॥ इति॥ अपि॥	=असि मसि खेती विद्या वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि॥ षड्विधानि॥ स्युः॥ प्रजा जीवनहेतवः॥ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥
तत्र असि कर्म॥ सेवायाम्॥ मषि॥ लिपि-विधौ॥	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषै (और) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृतम्॥ । कृषि॥	=स्मरण किया जाता है। (खेती)कृषि
भू कर्षणे॥ प्रोक्ता॥ विद्या॥ शास्त्र उपजीवने॥ ॥२॥	=भूमिके जोतनेमें कियाजाता है (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीविकामें वा पढ़नेमें है
वाणिज्यं॥ वणिजां॥ कर्म॥ शिल्पं॥ स्यात्॥ कर	=वाणिज्यकर्म बनियों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम्॥	=निपुणता चतुरता वा प्रवीणताई अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममें चतुराईहै
तत्॥ च॥ चित्र	=और(=च)वह(शिल्पकर्म)चित्र चित्रित अर्थात् चतुरकी मूर्तियां बनाना(चित्र)
कला-पत्र	=चौंसठ प्रकारका बाजा बजाना आदि (=कला),पत्र अथवा कागजका
छेद-आदि॥ बहुधा स्मृतम्॥ ॥३॥	=कतरना काटना बनाना इत्यादि बहुप्रकार,की निपुणता) स्मरण कीजातीहै(३)

(१) देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा॥ गुरु-उपास्ति॥ स्वाध्याय॥ संयमः॥ तपः॥	=देवकी पूजा गुरुकी उपासना अर्थात् सेवा(उपासित) शास्त्रका अध्ययन संयम तप
दानम्॥ च॥ इति॥ गृहस्थानाम्॥ षट्कर्माणि॥ दिने दिने	=बहुरि दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनेदिने) होते हैं।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासख्येन सम्बन्ध ॥ मनुष्याणा परा उत्कृष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता । मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्य त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति ।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे(१)त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते (यथासख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती॥परा-अपरे॥त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते॥ यथासंख्यम्॥ =मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त =अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद हैं।

वृत्त्यनुवाद—त्रीणि॥पल्योपमानि॥यस्या॥सा॥ =तीन पल्य प्रमाण हैं जिसकी सो

त्रि-पल्योपमा॥अन्तर्गत॥मुहूर्त॥यस्या॥ =त्रिपल्योपमा है। भीतर या अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त या दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी

सा॥अन्तर्मुहूर्ता॥यथासख्येन॥ =सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा सख्याके क्रमसे (इन परा अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)

सम्बन्ध॥ =सम्बन्ध है(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाता है और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)

मनुष्याणाम्॥परा॥उत्कृष्टा॥स्थिति॥त्रि-पल्योपमा॥ =मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है ॥

अपरा॥जघन्या॥अन्तर्मुहूर्ता॥मध्ये॥अनेक-विकल्पा॥ =सबसेघाटि(आयुषा)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं

तत्र॥पल्यम्॥त्रिविधम्॥व्यवहारपल्यम्॥ =तहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,

उद्धारपल्यम्॥अद्धापल्यम्॥इति॥ =उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब पाठ ठीक हैं ॥ कोई भी पाठ मुद्रितपाठ के पश्चात लिखा जासकता है ॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्य ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्ष-कल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥ उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान आदि-सहितस्य॥ तत्र-एव॥ आरम्भात्॥	=प्रशस्त दानादिक (शुभकर्मों) सहित वहांही आरम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म भूमि-व्यपदेशः॥ वेदितव्य॥ इतरासु॥	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरों (शेष अर्थात् उपर्युक्त छयानवें कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम, मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन	=दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्॥ भोगभूमय॥ इति॥ व्यपदिश्यन्ते॥	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु॥ भूमिषु॥ स्थिति-परिच्छेद अर्थम्॥ आह॥	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके (=परिच्छेद) लिये कहते हैं कि

असि॥ मषि॥ कृषि॥ विद्या॥ वाणिज्य॥ शिल्प॥ इति॥ अपि॥	=असि मषि खेती, विद्या वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि॥ षड्विधानि॥ स्युः॥ प्रजा-जीवनहेतवः॥ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥
तत्र॥ असि कर्म॥ सेवायाम्॥ मषि॥ लिपि-विधौ॥	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषै (और) मषी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृताः॥ । कृषि॥	=स्मरण किया जाता है। (खेती)कृषि
भू कर्षणे॥ प्रोक्ता॥ विद्या॥ शास्त्र उपजीवनम्॥ ॥२॥	=भूमिके जोतनमें विवक्षित है (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीविकामें या पंथेमें है
वाणिज्यम्॥ वणिजां॥ कर्म॥ शिल्पम्॥ स्यात्॥ कर	=वाणिज्यकर्म वणिकों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम्॥	=निपुणता चतुरता या प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममें चतुराईहै
तत्॥ च॥ चित्र	=और(=च) वह(शिल्पकर्म)चित्र खिचित्र अर्थात् वस्तुकी मूर्तियांबनाना(चित्र)
कला-पत्र	=बीसठ प्रकारका नाना बजाना आदि (=कला) पत्रों अथवा कागदका
छेद आदि॥ बहुधा स्मृतम्॥	=छेदना काटना बनाना इत्यादि बहुप्रकार की निपुणता) स्मरण कीजाती है(१)

(१) देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा॥ गुरु-उपास्ति॥ स्वाध्याय॥ संयम॥ तप॥	=देवकी पूजा गुरुकी उपासना अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रकाअध्ययन संयम तप
दानम्॥ च॥ इति॥ गृहस्थानाम्॥ षट् कर्माणि॥ दिने दिने॥	=और दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनोंदिन) होते हैं।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्ता॥ यथासख्येन सम्बन्ध ॥ मनुष्याणा परा उत्कृष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्य त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे[1] त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती॥ परा-अपरे॥ त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते॥ यथासंख्यम्॥	=मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त =अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद हैं।
वृत्यनुवाद—त्रीणि॥ पल्योपमानि॥ यस्या॥ सा॥ त्रि-पल्योपमा॥ अन्तर्गत॥ मुहूर्त॥ यस्या॥	=तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो =त्रिपल्योपमा है। भीतर या अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त या दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ यथासख्येन॥	=सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा सख्याके क्रमसे (इन-परा अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्बन्ध॥	=सम्बन्ध है(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जावाहै और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्॥ परा॥ उत्कृष्टा॥ स्थिति॥ त्रि-पल्योपमा॥	=मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है॥
अपरा॥ जघन्या॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ मध्ये॥ अनेक-विकल्पा॥	=सबसेथोडि(आयुषा)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषै अनेक भेद हैं
तत्र॥ पल्यम्॥ त्रिविधम्॥ व्यवहारपल्यम्॥	=तहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्॥ अद्धापल्यम्॥ इति॥	=उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे, परा ऽपरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब पाठ ठीक हैं। कहीं भी पाठ नृस्थिती पाठ के पश्चात् किया आसक्ता है॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्य ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान आदि-सहितस्य॥ तत्र-एवहि-आरम्भात्॥	=प्रशस्त दानादिक (सत्कर्मों) सहित वहांही आरम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म भूमि-व्यपदेशः॥ वेदितव्य॥ इतरासु॥	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये । अन्य वा दूसरों (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छपानवें कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम,मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात्॥ भोगभूमयः॥ इति॥ व्यपदिश्यन्ते॥	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहलाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु॥ भूमिषु॥ स्थिति-परिच्छेद-अर्थम्॥ आह॥	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके(=परिच्छेद) लिये कहते हैं कि

असि॥ मषि॥ कृषि॥ विद्या॥ वाणिज्यं॥ शिल्पं॥ इति॥ अपि॥	=असि मषि खेती, विद्या वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि॥ षड्विधानि॥ स्युः॥ प्रजा जीवनहेतवः॥ ॥ १ ॥	=छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (=जीवन) के कारण होवे हैं ॥ १ ॥
तत्र॥ असि कर्म॥ सेवायाम्॥ मषि॥ लिपि-विधौ॥	=यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषै (और) मषी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृता॥ । कृषि॥	=स्मरण किया जाता है । (खेती)कृषि
भू कर्षणे॥ प्रोक्ता॥ विद्या॥ शास्त्र उपजीवने॥ ॥२॥	=भूमिके जोतनेमें कहिजिये है (और)विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीविकामें वा धंधेमें है
वाणिज्यं॥ वणिजां॥ कर्म॥ शिल्पं॥ स्यात्॥ कर	=वाणिज्यकर्म बनियों अथवा व्यापारियों का काम है । शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम्॥	=निपुणता चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके कामोंमें चतुराई है
तत्॥ च॥ चित्र	=और(=च)वह(शिल्पकर्म)।चित्र विचित्र अर्थात् चतुरकी मूर्तियों बनाना(चित्र)
कला-पत्र	=चौसठ प्रकारका गाना बजाना आदि (=कला)पत्र अथवा कागदका
च्छेदादि॥ बहुधा॥ स्मृतम्॥	=छेदना काटना बनाना इत्यादि बहुप्रकार,की निपुणता) स्मरण कीजाती है(३)

(१) देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः । दान चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा॥ गुरु-उपास्ति॥ स्वाध्याय॥ संयम॥ तप॥	=देवकी पूजा गुरुकी उपासना अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रका अध्ययन संयम तप
दानम्॥ च॥ इति॥ गृहस्थानाम्॥ षट्-कर्माणि॥ दिने॥ दिने॥	=चहुरि दान इस प्रकार गृहस्थीके यह छह कर्म प्रतिदिन [illegible](दिनेदिने) होते हैं ।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्या सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्या सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासंख्येन सम्बन्ध ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थिति त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे[1]त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती॥ परा-अपरे॥ त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते॥ यथासंख्यम्॥ =मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त =अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद हैं।

वृत्त्यनुवाद—त्रीणि॥ पल्योपमानि॥ यस्याः॥ सा॥ =तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो
त्रि-पल्योपमा॥ अन्तर्गतः॥ मुहूर्तः॥ यस्याः॥ =त्रिपल्योपमा है। भीतर वा अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ यथासंख्येन॥ =सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्बन्धः॥ =सम्बन्ध है (अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जावाहै और अपराके साथ अन्तर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्॥ परा॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ त्रि-पल्योपमा॥ =मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है॥
अपरा॥ जघन्या॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ मध्ये॥ अनेक-विकल्पा॥ =सबसे थोड़ी (आयुवा) जघन्य (आयु) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं
तत्र॥ पल्यम्॥ त्रिविधम्॥ व्यवहारपल्यम्॥ =वहां पल्य तीन प्रकार है। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्॥ अद्धापल्यम्॥ इति॥ =उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

(१) परापरे, परावरे, परावरे अथवा परावरे सब पाठ ठीक हैं॥ —है भी पाठ नृस्थिती पाठ के [illegible] लिखा जासक्ता है॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः सख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थ ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणाङ्गुल

अ न्वर्थ-संज्ञाः॥ एताः॥

आद्यम्॥ व्यवहारपल्यम्॥ इति॥ उच्यते॥ उत्तर पल्य-द्वयस्य॥ व्यवहार-बीजत्वात्॥

न॥ अनेन॥ किञ्चित्॥ परिच्छेद्यम्॥ अस्ति इति॥

द्वितीयम्॥ उद्धारपल्यम्॥ ततः॥ उद्धृतैः॥ लोमकच्छेदैः॥ द्वीप-समुद्राः॥ सख्यायन्ते॥ इति॥ तृतीयम्॥ अद्धापल्यम्॥ अद्धा-काल-स्थितिः॥ इति॥ अर्थः॥

तत्र॥ आद्यस्य॥ प्रमाणम्॥ कथ्यते॥ तद्यथा॥ प्रमाण-अङ्गुल

=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।

=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम =दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा) के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।

=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहीं आवी है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अङ्क प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनि देय"

=दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकच्छेद निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धृतैः) =द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य =बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।

=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे

=प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, मध्यस्थित- अंगुल अथवा आठ जोके मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) जहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। जो इन्द्रियकरि ग्रहा नहीं जाता है। जिसमें एक रस एक वर्ण एक गन्ध दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिलें तब एक संज्ञासंज्ञ (वा सन्नासन्न) होता है। आठ सन्नासन्न मिलें तब एक त्रुटरेणु होता है। आठ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरेन) और आठ त्रसरेन का एक रथरेन (रथरेणु) होय आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थ । एकादिसप्तान्ताहोरात्रजाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीय कर्तरिच्छेद नाप्नुवन्ति,

परिमित-योजन-विष्कम्भ आयाम अवगाहानि॥१॥ त्रीणि॥१॥ पल्यानि॥१॥	=प्रमाण करि अथवा नापे हुये योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ)लम्बाई(=आयाम)और
कुसूलाः॥ इति॥ अर्थः॥	=गहराईवाले (गोल होलके आकार) तीनि खाड़े वा गड़े (=पल्यानि)
	=मड़ोखे वा खत्ते (कुसूला=कुसूला) है ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
एक-आदि-सप्त-अन्त अहोरात्र जात-अवि	=एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा वा मेढ़ (=अवि)के
वाल-अग्राणि॥ तावत्॥ छिन्नानि॥ यावत्॥	=केशोंका(वाल=वाल) अग्रभाग तब तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
द्वितीय॥ कर्तरि-च्छेदं॥ न आप्नुवन्ति॥	=दूसरे (लघु) खंड कतर्नी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्तिनहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गढ़ाहा)

तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीख(=लीक)हो आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं) अथवा तिलहो। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य का एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अंगुलका एक प्रमाण अंगुल होताहै। सो यह प्रमाण अंगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अंगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अंगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण होता है। अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अंगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अंगुल इसको आत्म अंगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव नगर, भवन छत्र रथ कुम्भ आसन धनुष आदि का प्रमाण होता है। प्रमाण अंगुलसे द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी नदी पर्वत विमान, नरकके प्रस्तार, जैनधाम आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार आयाम-आदि मापे जाते हैं। छह अंगुल का एक पाद बारह अंगुल का एक वितस्ति (विलाद विलस्ति) दो विलांद का एक हाथ दो हाथ का एक इषु अथवा गज, दो गजका एक धनुष दो सहस्र धनुषका एक कोश चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के कोश दो सहस्र हो तब एक प्रमाण योजन होता है॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्रा सङ्ख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थ ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणाङ्गुल

अ नर्थ-संज्ञाः ॥ एताः ॥ =ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।

आद्यम् ॥ व्यवहारपल्यम् ॥ इति॥ उच्यते। उत्तर =प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम

पल्य-द्वयस्य ॥ व्यवहार-बीजत्वात् ॥ =दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा) के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।

न॥ अनेन ॥ किञ्चित्॥ परिच्छेद्यम् ॥ अस्ति इति॥ =न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"

द्वितीयम् ॥ उद्धारपल्यम् ॥ ततः॥ उद्धृतैः ॥ लोमकच्छेदैः ॥ =दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकच्छेद निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धृतैः)

द्वीप-समुद्राः ॥ सङ्ख्यायन्ते। इति॥ तृतीयम् ॥ अद्धापल्यम् ॥ =द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य

अद्धा-काल-स्थितिः ॥ इति॥ अर्थः ॥ =बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।

तत्र॥ आद्यस्य ॥ प्रमाणम् ॥ कथ्यते। तद्यथा॥ =तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे

प्रमाण अंगुल =प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, प्रचलित अंगुल अथवा आठ ओंके मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) जहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। सो इन्द्रियकरि ग्रहण नहीं आता है। जिसमें एक रस एक वर्ण एक गन्ध दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिले तब एक संज्ञासंज्ञ(वा सन्नासन्न)होता है। आठ सन्नासन्न मिले तब एक त्रुटरेणु होता है। आठ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरैन) और आठ त्रसरैन का एक रथरैन (रथरेणु) होय आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः । एकादिसप्तान्ताहोरात्रजाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति,

परिमित-योजन विष्कम्भ आयाम	=प्रमाण करि अथवा नापे हुए योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ) लम्बाई (=आयाम) और
अवगाहानि पीठानि पल्यानि	=गहराईवाले (गोल ढोलके आकार) तीनि खाड़े या गड्ढे (=पल्यानि)
कुसूलाः इति अर्थः	=कोठे या खत्ते (कुसूला=कुशूला) हैं ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
एक-आदि-सप्त-अन्त-अहोरात्र-जात-अवि	=एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा या मेढ़ (=अवि)के
बाल अग्राणि तावत् छिन्नानि यावत्	=केशोंका(बाल=बाल) अग्रभाग तब तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
द्वितीयं कर्तरि-च्छेदं न आप्नुवन्ति	=दूसरे (लघु) छोट कतनी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्ति नहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गड्ढा)

तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है॥ आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीख(=लीख)हो आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं) अथवा तिलहा। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य का एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अंगुलका एक प्रमाण अंगुल होता है॥ सो यह प्रमाण अंगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अंगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अंगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण होता है। अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अंगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अंगुल इसको आत्म अंगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव नगर, भवन यन्त्र रथ छत्र आसन पुआ आदि का प्रमाण होता है॥ प्रमाण अंगुलसे द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी नदी पर्वत विमान नरकके प्रस्तार, जैनधाम आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार आयाम-आदि नापे जाते हैं। छह अंगुल का एक पाद बारह अंगुल का एक वितस्ति (विलांद वितस्ति) दो विलांद का एक हाथ दो हाथ का एक इषु अथवा गज दो गजका एक धनुष दो सहस्र धनुषका एक कोश चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के कोस दो सहस्र हो तब एक प्रमाण योजन होता है॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एता ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः सङ्ख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थः ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणाङ्गुल

अन्वर्थ-संज्ञाः॥ एताः॥	=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।
आद्यम्॥ व्यवहारपल्यम्॥ इति॥ उच्यते॥ उत्तर पल्य-द्वयस्य॥ व्यवहार-बीजत्वात्॥	=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम =दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।
न॥ अनेन॥ किञ्चित्॥ परिच्छेद्यम्॥ अस्ति इति॥	=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अङ्क प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"
द्वितीयम्॥ उद्धारपल्यम्॥ ततः॥ उद्धृतैः॥ लोमकच्छेदैः॥ द्वीप-समुद्राः॥ सङ्ख्यायन्ते॥ इति॥ तृतीयम्॥ अद्धापल्यम्॥ अद्धा-काल-स्थितिः॥ इति॥ अर्थः॥	=दूसरी उद्धारपल्य है जहांसे लायकर्त्तव निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धृते) =द्वीप और समुद्र गिन जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिनैं"। तीसरी अद्धापल्य =बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।
तत्र॥ आद्यस्य॥ प्रमाणम्॥ कथ्यते॥ तद्यथा॥ प्रमाण अङ्गुल	=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे =प्रमाण अङ्गुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, अपवित्त अंगुल अथवा आठ जोक मध्यभागोंके प्रमाणसे पांचसौगुणा है तिसके

(१) जहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। जो इन्द्रियकरि ग्रहण नहीं आता है। जिसमें एक रस एक वर्ण एक गन्ध दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिले तब एक संज्ञासंज्ञ(वा सन्नासन्न)होता है। आठ सन्नासन्न मिले तब एक त्रुटरेणु होता है। आठ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरेन) और आठ त्रसरेन का एक रथरेन (रथरेणु) होय, आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलें तब एक मध्यमभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यमभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलें

तत क्रमेण शवदि।। जहां (उस कूप से) सौ (सौ) बरसमें

```
                    ८०५३०६३६८००००००
                    ८०५३०६३६८००००००
                    ----------------
                    ००००   ०००००००००००
                   ०००००००००००००००
                  ०००००००००००००००
                 ०००००००००००००००
                ०००००००००००००००
               ०००००००००००००००
              ६४४२४५०९४४००००००
             ४८३१८३८२०८०००००००
            २४१५९१९१०४००००००००
           ४८३१८३८२०८०००००००००
          ०००००००००००००००
         ४०२६५३१८४००००००००००००
        २४१५९१९१०४०००००००००००
       ०००००००००००००००
      ६४४२४५०९४४००००००००००००००
---------------------------------------
      ६४८५१८३४६३४१३५१४२४०००००००००००००
```

इस चार प्रमाण योजन क्षेत्रके रोमच्छेदोंको गहराई(के रोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन या घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैंतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त गड्ढा अथवा कूप की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके रोमच्छेद ८०५३०६३६८०००००० हैं। गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

तादृशैः ।३। लोमच्छेदैः ।३। परिपूर्णम् ।१। घनीभूतम् ।१। व्यवहार-पल्यम् ।१। इति ।०। उच्यते ।०।	=वैसे ही (=तादृशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण) =ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूत) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौड़े और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड्ढाके लोमच्छेदोंकी संख्या गुणन और विस्तार रूपसे कहते हैं। उतनाही लम्बा उतनाही चौड़ा उतनाही गहरा अथवा ऊंचेको घनाकार कहते हैं। इस टिप्पणीका प्रमाण अंगुलको टिप्पणी पढ़कर और समझ कर पढ़ना चाहिये। एक घनाकार प्रमाण योजन का गढ़ा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढ़ेसे पांचसौ गुणा लम्बा पांचसौ गुणा चौड़ा और पांचसौ गुणा गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होता है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़ा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौड़ा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नक्षेत्र पाठकोंकी सुगमताके लिये हैं॥

घनसम क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग गघ घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० धनुष ८००० हाथ ८००० × २४ = १९२००० उत्सेध अंगुल हुवे इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्र कोसके १९२००० × २००० = ३८४०००००० उत्सेध अंगुल हुवे = कख = खग = गघ = घक = चज व्यासके। ३८४०००००० × ८ = ३०७२०००००० जाड़े ओके समान हुवे ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६०००००० तिल हुवे २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० और १९६६०८००० ००० × ८ = १५७२८६४०००००० कर्मभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग हुवे। १५७२८६४०००००० × ८ = १२५८२९१२०००००० जघन्य भोग भूमि के मनुष्य के बाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ००० × ८ = १००६६३२९६००० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८००००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई चज रेखाके लोमच्छेद हुवे इस संख्या का इसी संख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कख रेखा चज रेखा के बराबर है) सर्व घनाकार क्षेत्रके [illegible] आते हैं। अर्थात् सर्व प्रमाण योजनके [illegible]

तत्‌क्षेत्रं शतेन॥॥ त्वार्थ (उस कूप से) सौ (सौ) बरसमें

```
                ८०५३०१३१८००००००
                ८०५३०१३१८००००००
        --------------------------
                ०००००००००००००००
               ०००००००००००००००
              ०००००००००००००००
             ०००००००००००००००
            ०००००००००००००००
           ०००००००००००००००
          ६४४२४५०६४४००००००
         ४८३१८१८३०८००००००
        २४१५६१६१०४००००००
       ४८३१८१८३०८००००००
       ०००००००००००००००
      २४१५६१६१०४०००००००
     ४०२६५१८४०००००००
     ०००००००००००००००
    ६४४२४५०६४४००००००
----------------------------------------
    ६४८५१८३४६३४१३५१४२४०००००००००००००
```

इस वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके रोमखण्डोंको गहराई(के रोमखण्डों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन या घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैंतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं ॥ क्योंकि पूर्वोक्त गढ्ढा अथवा कोठर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके रोमच्छेद ८०५३०१३१८०००००० हैं ॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अन्तमें

ताद्दशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

ताद्दशैः।लोमच्छेदैः।परिपूर्णम्।।। =वैसे ही (=ताद्दशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण)

घनीभूतम्।।व्यवहार-पल्यम्।।इतिउच्यते। =ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूतं) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौड़े और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड्ढाके लोमच्छेदोंकी संख्या सुगम और विस्तार रूपसे कहते हैं। उतनाही लम्बा उतनाही चौड़ा उतनाही गहरा अथवा ऊंचेको घनाकार कहते हैं। इस टिप्पणीका प्रमाणअंगुलकी टिप्पणी पढ़कर और समझ कर पढ़ना चाहिये। एक घनाकार प्रमाण योजन का गढ़ा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढ़ेसे पांचसौ गुना लम्बा पांचसौ गुना चौड़ा और पांचसौ गुना गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होता है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़ा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौड़ा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नोक्त पाठकोंकी सुगमताके लिये है॥

क्षमाप क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग गघ घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० चाप ८००० हाथ ८०००×२४=१९२००० अंगुल प्रमाण हुये इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्रकोसके १९२०००×२००० = ३८४०००००० उत्सेध अंगुल हुये = कख = खग = गघ = घक = कग व्यासके ३८४०००००० × ८ = ३०७२०००००० जौके समान हुये ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६०००००० लीख हुये २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० लीख १९६६०८० ० ००० × ८ = १५७२८६४०००००० कर्मभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग हुये। १५७२८६४ ००००० × ८ = १२५८२९१२०००००० जघन्यभोग भूमि के मनुष्य के बाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ० ० × ८ = १००६६३२९६० ० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८००००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई कग रेखाके लोमच्छेद हुये इस संख्या को इसी संख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कग रेखा कग रेखा के बराबर है) सर्व घनाकार योजनके, घेराके रोम कैद जाते हैं। अर्थात् सर्व प्रमाण योजनके लोमच्छेद निकलते हैं॥

आती है उनमें वृत्तका घनफल आदे रूपसे गणितके इस नियमसे सिखाया आता है कि किसभि वृत्तके आधे व्यासके वर्गको ₹ से गुणा करना गुणनफल ही उस वृत्तके क्षेत्रका प्रमाण होगा। वस्तुतः समभग एक ही प्रमाण होगा क्योंकि यहांपर एक व्यास माना है आधेका वर्ग ¼ होगा और ¼ मध्ये रूपमें १०८ वर्गमूलका परिमाणहै। और ॥ इन सूक्ष्म रूपमे परिणाम है इसमें ¼म आधे व्यासको गणा करना पड़ताहै उनमें १¼से गुणा करना पड़ता है ॥ ऐसी परिपक्व सूक्ष्मरूपमें १०को मापके अकाराोके गण्योमें समझमायाहै(इसी अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ १४ पर देखो)गहराई एकयोजन प्रमाण है इसलिए इस घनरूपक्षेत्र अथवा एक योजन कूपका घनरूप क्षेत्रफल गहराईस बया करनेस निकलता है अर्थात् $\frac{19}{24}\times1=\frac{19}{24}$ घन रूप है। घन रूपके पैतालीस अंकरूपी संख्याको सुगमताकलिये घनसंख्या मानो और वाञ्छित निकलनेवाली संख्याको फल मानो तो इसप्रकार त्रैराशिक हुई कि १ का $\frac{19}{24}$ स यही सम्बन्ध है जो घनसंख्याको फलसंख्यास है अर्थात् $1:\frac{19}{24}::$घनसंख्या फलसंख्या। इसलिये फलसंख्या=फलसंख्या$\times1=\frac{19}{24}\times$घन संख्या=$\frac{19}{24}\times$ घन संख्या ॥ प्रथम १९ से गुणाकरके पश्चात् भाग २४ का घन सख्यामें दूने अर्थात् =$\frac{19}{24}\times$घन सख्या ॥

४१२२५५६५४०७१५१६८० ४७१०१८०१२०००० ०००० ०००००००० मानो हुई घन सख्या। इसको उन्नीस से गुणा किया तो गुणनफल

=९९९२८६११८७१९१=७११५५९=२९२१०८००००० ०० ०००००००००

२४)९९९२८११८७१९१=७१२१५९=२९२१०८०० ००००००००००००००००(४१३४५२६३१०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००

भाग

९१
१२
२४
८२
७२
१०८
९१
१२१
१२०
९१
४८
१५१
१४४
७२
७२

७१
७२
१६१
१६२
४८
४८
७६
७२
४२
२४
१८१
१६८
१८५
१६८

१७४
१६८
११८
९६
२२८
२१६
१२२
१२०
२६
२४
५२
४८
४२
२४

२२०
२१६
४८
४८

इस प्रकार व्यवहार पल्यके समस्त रोम खंडोंकी सख्या निम्न ४५ अंक प्रमाण हुई
४१३४५२६३१०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०० ०००००००००० ००००

अंकनाम गाथा — गाथाका अभिप्राय। इस अंकके सब अंक और शून्य क्रमसे एक दूसरेके ऊपर होंगे

चो इक तिय चउ पंच दोय पट तीन हैं — =चार(ऊपर)एक(ऐसेही)तीन चार पांच,दो छह,तीन

नभ तिय नभ वसु दो नभ तिय इक सीन है — =शून्य(=नभ) तीन बिंदु आठ, दो बिंदु तीन एक

सत सत सत चौ नौ पन इक दो इक कहे — =सात सात, सात चार, नौ पांच एक दो, एक

नौ दो आगे ठारै सुन सरव लहै (कवि द्यानतराय) =नव दोय (फिर एकदूसरेके ऊपर)सब अठारह शून्य या पश्चात पैतालीस अंक निकल आते हैं।

जो शून्य हो उनको शेष अंकोंके साथ गुणा करनेके पश्चात् गुणनफलके अंतमें उतनेही शून्य लगाओ तो ठीक गुणनफल वैसाही निकल आता है जैसा ऊपर की क्रिया से निकला है॥ जैसे ५० गुण्य है और ३० गुणक है तो ५ और ३ के गुणनफल १५ के अन्त में दो शून्य रखने से भी १५०० हो आते हैं और ५० / ३० / ०० / १५० / १५०० इस रीति से भी १५०० आते हैं सगमता के लिये हमने नीचे यही विधि ग्रहण की है॥

१४८५१८३४१३४१३५१४२४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० को

८०५३०१३१८ ० ० ० ० ० ० से गुणा करना है॥

तो निम्न लिखित अंकोंको गुणाकरके गुणनफलके अन्तमें १० शून्य रक्खो।

```
          १४८५१८३४१३४१३५१४२४
                    ८०५३०१३१८
        ---------------------------
          ५१८८१४१७७०७३०८११३९२
         १८९१११००७८०४८१०८५४४
        १९४५५५५०१९०२४०५०२७२
       १८९१११००७८०४८१०८५४४
      ००००००००००००००००००००
     १९४५५५५०१९०२४०५४२७२
    ३२४२५९१७३१७०१७५७१२०
   ००००००००००००००००००००
  ५१८८१४१७००७१०८१११९२
---------------------------
  ५०२२५५९५४०७१५१९८०३४७१०१८०१ २००००००००००००००००००००००
```

हमारा यहां व्यवहार पल्यका गोलकूपके आकार है। जैसाकि वृत्ताकार जो वर्गाकार क्षेत्रके भीतर पूर्ण रूपसे है उससे प्रगट है कि चौकोर क्षेत्रकी एक(योजन)मानी है। जिसका वर्ग १ हुवा जिसको दशसे गुणाकरि वर्गमूल निकालनेसे वृत्तकी परिधि आती है अर्थात् १×१×१०=१०=१०(वर्गमूल) बहुरि विष्कम्भके चौथाईसे गुणा करनेसे अर्थात् ३ से गुणा बोधफल ×३=३१ भया। आजकल पाश्चात्योंमें आपसकावल पसमें हो

पूर्णमद्धापल्यम् ॥ तत समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्य ॥ एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोट्य एकमद्धासागरोपमम् ॥ दशाद्धासागरोपमकोटीकोट्य एकावसर्पिणी ॥ तावत्यैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनीना देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायु स्थिति कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या ॥

पूर्णम् अद्धापल्यम्	=पूर्ण अद्धापल्य होती है अर्थात् उपर्युक्त उद्धारपल्यके एक एक रोम के इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने सौ बरसके समय होते हैं तब अद्धापल्यके रोमोंका प्रमाण होता है ॥
ततः समये समये एक एकस्मिन्	=वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त खंड किये हुये)
रोमच्छेदे अपकृष्यमाणे यावता कालेन	=रोमच्छेद निकालनेमें जिस कालकरि
तद्-रिक्तं भवति तावान् कालः अद्धा-पल्योपम	=वह खाली होजाता है। उतना काल अद्धापल्योपम (के नाम) से
आख्यः दशकोटीकोट्यः एषां अद्धा-पल्यानां	=प्रसिद्ध है। दश कोड़ा कोड़ी इन अद्धापल्योंका
एकं अद्धासागरोपमम् दश-अद्धासागरोपम-कोटी-कोट्यः	=एक अद्धासागरोपम है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा-सागरोपमका
एक अव-सर्पिणी तावत् एव	=एक अवसर्पिणीकाल है॥ तितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्धापल्योपमका)
उत्सर्पिणी । अनेन अद्धा-पल्येन	=उत्सर्पिणी काल है। इस अद्धापल्यकरि
नारक-तैर्यग्योनीनाम् देव-मनुष्याणाम् च	=नारकियों और तिर्यंचोंकी और (=च) देव मनुष्योंकी
कर्मस्थितिः भवस्थितिः	=कर्मस्थितिः भवस्थितिः अर्थात् एक भवकी स्थिति
आयुःस्थितिः कायस्थितिः च परिच्छेत्तव्याः	=आयु स्थिति और (=च) कायस्थिति जानना चाहिये।

(१) एक कायमें अनेक भव धारण करै तिसको कायस्थिति कहते हैं। जैसे पृथिवी अप् तेज वायुकायिक जीवोंके कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। तिनहीमें उपजबो करै तो एताकालताई उपज्यो करै। बहुरि वनस्पतिकायका अनन्तकाल है सो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र है। बहुरि विकलत्रयका असंख्यात सहस्र बरस है। पंचेंद्रियनिकी तिर्यंच मनुष्यनिकी पृथक्त्व कोटि पूर्व अधिक तीनि पल्य है। बहुरि अग्रस्य कायस्थिति इन सबोंकी अंतर्मुहूर्तमात्र है। बहुरि देवनारकीनिकी भवस्थिति है सोही काय स्थिति है। देवस देव नहीं होता नारकीसे नारकी नहीं होता यह नियम है।

एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्रिक्तं भवेत्तावान्कालो व्यवहारपल्योपमाख्य ॥ तैरेव लोमच्छेदैः प्रत्येकमसंख्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिन्नैस्तत्पूर्णमुद्धारपल्यम् ॥ तत समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्काल उद्धारपल्योपमाख्य ॥ तेषामुद्धारपल्यानां दशकोटीकोट्य एकमुद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमानां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्रा ॥ पुनरुद्धारपल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतसमयमात्रच्छिन्नै

एक-एक-लोम अपकर्षण-विधिना॰ यावता॰	=एक एक रोम निकालकरि (=अपकर्षणविधिना) जिस
कालेन॰ तद्-रिक्तम्॰ भवेत्॰ तावान्॰ काल॰	=कालकरि वह (कूप) खाली होवे उतना काल
व्यवहार-पल्योपम-आख्य॰ तैः॰ एव॰ लोमच्छेदैः॰	=व्यवहार पल्य (के नामसे) प्रसिद्ध है । तिनही लोमच्छेदोंसे
प्रत्येकम्॰ असंख्येय-वर्ष-कोटी-समय	=एक एकके असंख्यात करोड़ वरसोंके समयके
मात्र-च्छिन्नैः॰ तत्॰ पूर्णम्॰ उद्धार-पल्यम्॰ ॥	=समान अथवा बराबर (=मात्र) खंडोंसे वह पूर्ण उद्धारपल्य होती है । अर्थात्
	पूर्वोक्त पैंतालीस अंक प्रमाण व्यवहारपल्यके पृथक् पृथक् रोमके इतने इतने खंड
किये जांय कि जितने जितने असंख्यात करोड़ वरसके समय होते हैं तब उद्धारपल्यके रोमोंका प्रमाण होता है और	
ततः॰ समये॰ समये॰ एक-एकस्मिन्॰ रोमच्छेदे॰	=तहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक प्रत्येक समयमें एक एक(पूर्वविभाजित)लोमच्छेद
अपकृष्यमाणे॰ यावता॰ कालेन॰ तद् रिक्तम्॰ भवति	=निकालनमें जिस कालकरि वह रीता होजाता है ॥
तावान्॰ काल॰ उद्धार-पल्योपम आख्य॰	=वह काल उद्धारपल्योपम(केनाम)से प्रसिद्ध है । उतना समस्तकाल उद्धारपल्यका है ।
तेषाम्॰ उद्धार-पल्यानाम्॰ दश-कोटीकोट्य॰ एकम्॰	=दश कोड़ाकोड़ी तिन उद्धारपल्योंका एक
उद्धारसागरोपमम्॰ ॥ अर्धतृतीया-	=उद्धारसागरोपम है । अढाई उद्धार
उद्धारसागरोपमानाम्॰ यावन्तः॰ रोमच्छेदाः॰	=सागर प्रमाणके जितने लोमच्छेद हैं
तावन्तः॰ द्वीप-समुद्राः॰ पुनर्॰ उद्धार	=तितने द्वीप तथा समुद्र (इस एक राजूवाले तिर्यग्लोकमें) हैं बहुरि उद्धार
पल्य रोमच्छेदैः॰ वर्ष-शत-समय-मात्र च्छिन्नैः॰	=पल्यके रोमच्छेदोंसे (एक एकके) सौवरसके समयोंके बराबर (मात्र)खंडोंसे

(१) अर्धतृतीया = अढ़ाई यह अर्थ है जिसमें अर्धआग तीसरी संख्या का आधा हो और तीसरी संख्याका आधा भाग अढाई रेखा अर्थ हुआ ॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनि । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजाः । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

पृथग्नुवाद - तिरश्चाम् योनि तिर्यग्योनि	=तिर्यचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है
तिर्यग्-गति-नामकर्म उदय-आपादितम्	=तिर्यचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)
जन्म इति अर्थः तिर्यग्योनौ जाताः	=जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है । तिर्यच योनि में उत्पन्न हुये
तिर्यग्योनिजाः तेषाम् तिर्यग्योनिजानाम्	=ते तिर्यच योनिज हैं । तिन तिर्यच योनिमें उत्पन्न हुओंकी
उत्कृष्टा भवस्थितिः त्रिपल्योपमा जघन्या	=उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य
अन्तर्मुहूर्ता मध्ये अनेक-विकल्पा	=अंतर्मुहूर्त है मध्यनिमें नानाभेद हैं ।

भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसर सरिताम्॥माननृणां चभेद स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये

भू-बिल-	=(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)
लेश्या आदि	=(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणामवाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)
आयुस्	=(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)
द्वीप उदधि	=द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)
वास्य	=(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र तक सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)
गिरि	=(हिमवान् से शिखरी तक छह) पर्वत(उनका विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

उक्ता च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव सम्मुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता॥ च॥ संग्रह-गाथा॥ =बहुरि (पल्यकी कथनकी) संग्रहकी हुई।
अथवा एकत्र कीहुई गाथा छन्दोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है

ववहार-उद्धार-द्धा-पल्ला॥(व्यवहार उद्धार अद्धा-पल्यानि॥)	=व्यवहार उद्धार अद्धा पल्यें
तिण्णेव-होंति-बोद्धव्वा॥(=त्रीणि॥ एव॥ भवन्ति॥ बोद्धव्यानि॥)	=तीनही हैं सो जानना
संखा-दीव-सम्मुद्दा॥ (=संख्या द्वीप-समुद्राः॥)	=संख्या द्वीप समुद्र
कम्म-ट्ठिदि-वण्णिदा-तदिये (=कर्म-स्थिति वर्णिता॥ तृतीये)	=(और) कर्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ
परिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात्
यह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जावे हैं और
अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा॥ एव॥ एते॥ उत्कृष्टजघन्ये॥ स्थिती॥ नृणां॥ तथा॥ एव॥ =जैसेही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी है तैसेही

(१)सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥ =तिर्यग्योनिजानां च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवत

सूत्रार्थ—तिर्यक्-योनिजानाम्॥ च॥ =तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (च)
परा॥ स्थिति॥ त्रि-पल्योपमा॥ भवति॥ =उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण
अपरा॥ स्थिति॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ भवति॥ =(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) मध्यप्रान्तमें "तिर्यग्योनीनां" ऐसा पाठ है। इसके [illegible] "तिर्यग्योनिजानां" ऐसा भी पाठ है) [illegible] "तिर्यग्योनि" [illegible] "तिर्यग्योनिजानां" [illegible] "तिर्यग्योनीनां" है।

सर्वार्थ ६४

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनि । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थ । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजा । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

---

शब्दानुवाद:—तिरश्चाम् । योनि । तिर्यग्योनि । तिर्यग्-गति-नामकर्म उदय आपादितम् । जन्म । इति अर्थः । तिर्यग्योनौ । जाता । तिर्यग्योनिजा । तेषाम् । तिर्यग्योनिजानाम् । उत्कृष्टा । भवस्थिति । त्रिपल्योपमा । जघन्या । अन्तर्मुहूर्ता । मध्ये । अनेक-विकल्पा ॥

=तिर्यचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है
=तिर्यचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)
=जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है। तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुये
=वे तिर्यच योनिज हैं। तिन तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुओंकी
=उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य
=अंतर्मुहूर्त है मध्यनिमें नानाभेद हैं।

भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसर सरिताम् ॥ माननृणां चभेदं स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये

भू-बिल =(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)

लेश्या-आदि =(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणाम वाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)

आयुष् =(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)

द्वीप उदधि =द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)

वास्य =(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)

गिरि =(हिमवान् से शिखिरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

सिद्धि ६५

उक्ता च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव समुद्दा कम्मठिदि वण्णिदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता॥ संग्रह-गाथा॥	=बहुरि (पल्यकी कथनकी) संग्रहकी हुई। अथवा एकत्र कीहुई आर्या छंदोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है
ववहारुद्धार द्धा-पल्ला॥(व्यवहार-उद्धार-अद्धा-पल्यानि॥)	=व्यवहार उद्धार अद्धा पल्य
तिण्णेव होंति-बोद्धव्वा॥(=त्रीणि॥ एव भवन्ति बोद्धव्यानि॥)	=तीनही हैं सो जानना
संखा-दीव-समुद्दा॥ (=संख्या द्वीप-समुद्राः॥)	=संख्या द्वीप समुद्र
कम्म-ट्ठिदि-वण्णिदा-तदिये(=कर्म स्थिति-वर्णिता॥ तृतीये)	=(और)कर्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ पहिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात्

यह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं और अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा॥ एव॥ एते॥ उत्कृष्टजघन्ये॥ स्थिती॥ नृणां॥ तथा॥ एव॥ =जैसे ही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी है तैसेही

[1]सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥ =तिर्यग्योनिजाना च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवत

सूत्रार्थ—तिर्यक्-योनिजानाम्॥ च॥	=तिर्यंच योनिसे उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (=च)
परा॥ स्थिति॥ त्रि-पल्योपमा॥ भवति॥	=उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण
अपरा॥ स्थितिः॥ अन्तर्मुहूर्ता॥ भवति॥	=(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) ममाप्रतमें तिर्यग्योनीनां च' ऐसा पाठ है। उसमें "तिर्यग्योनिजानां चेत्यपि पाठ" (=तिर्यग्योनिजानां च ऐसा भी पाठ है) यह वाक्य टिप्पणी रूप ग्रन्थ में दी है तिर्यग्योनिज" शब्दकी यही बहुवचन नपुंसकलिंग तिर्यग्योनिजानां वाक्य है और तिर्यग्योनि (=तिर्यंचयोनीवाले) की यही बहुवचन स्त्रीलिंग "तिर्यग्योनीनां" है॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनि । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादित जन्मेत्यर्थ । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजा । तेपां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

शब्दानुवाद -तिरश्चाम्॥योनि ॥तिर्यग्योनि॥ =तिर्यचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है
तिर्यग्-गति-नामकर्म उदय-आपादितम्॥ =तिर्यचगतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)
जन्म॥इति॥अर्थ॥तिर्यग्योनौ॥जाता॥ =जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है। तिर्यच योनि में उत्पन्न हुये
तिर्यग्योनिजा॥तेषाम्॥तिर्यग्योनिजानाम्॥ =वे तिर्यच योनिज हैं। तिन तिर्यच योनिमें उत्पन्न हुओंकी
उत्कृष्टा॥भवस्थितिः॥त्रिपल्योपमा॥जघन्या॥ =उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य
अन्तर्मुहूर्ता॥मध्ये॥अनेक विकल्पा॥ =अंतर्मुहूर्त है मध्यविषैं नानाभेद हैं।

भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसर सरिताम्॥माननृणांचभेद स्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये

भू-बिल =(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)
लेश्या-आदि =(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणाम वाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)
आयुर् =(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)
द्वीप उदधि =द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)
वास्य =(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)
गिरि =(हिमवान् से शिखरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

एटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विषयस्पर्शसहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद अध्याय ३ समाप्त

सर सरिताम् ॥ मान नृणा च भेद स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस	=(पद्मसे पुण्डरीकतकों उन छह पर्वतोंके ऊपर) सरोवर, उन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देवियां) (सूत्र १४, १५, १६, १७, १८, १९
सरिताम्॥	=चौदह नदियें (उनके बहनेकी दिशायें, और उनकी परिवारकी नदियें छोटीछोटी) (देखो सूत्र २०, २१, २२, २३)
मानं	=(क्षेत्र तथा पर्वतोंके) माप, वा नाप (देखो सूत्र २४, २५, २६, ३२)
मानं	=समयकी क्रिया(पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २६५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह समय अथवा कालोंकी वृद्धि ह्रासरूप क्रिया (देखो सूत्र २७, २८)
मानं	=परिमाण अर्थात् भरतक्षेत्र,कुलाचल,पर्वत,द्रह,आदि(देखो सूत्र३३, ३४,३५)कोंका जम्बूद्वीपसे धातुकीखंड और पुष्करार्धमें दूना दूना परिमाण है। और मनुष्योंका परिमाणादि वे पुष्करद्वीपके आध भागके इधर हैं(देखो सूत्र ३५)
नृणाम्॥ च भेदः॥	=अहुरि (=च) मनुष्योंका भेद (देखो सूत्र ३६)
(नृणाम्) स्थितिः॥	=मनुष्यों की स्थिति अर्थात् जीवन काल (देखो सूत्र २९, ३०, ३१, ३८)
तिरश्चाम् अपि-(स्थितिः॥)	=तिर्यचोंकी स्थिति या आयु (देखो सूत्र ३९) (ये सर्व ही)
तृतीय-अध्याये॥	=तीसरे अध्याय में (वर्णन किये गये) हैं

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौसर्वार्थसिद्धि-=ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि सञ्ज्ञिकाया तृतीयःअध्यायः॥ =नामाग्रन्थमें तीसरा अध्याय (समाप्त)